पाठ्यक्रम - १

१.अ अष्ट द्रव्य से पूजनीय- हमारे नवदेवता

पूज्य पुरुषों की वंदना - स्तुति हमें पूज्य बनने की प्रेरणा देती है। इतना ही नहीं उनके द्वारा बताये जाने वाले मार्ग पर चलकर हम उन जैसा भी बन सकते हैं। हमारे आराध्य पूज्य नवदेवता हैं-

१. अरिहन्त जी	२. सिद्ध जी	३. आचार्य जी
४. उपाध्याय जी	५. साधु जी	६. जिन धर्म
७. जिन आगम	८. जिन चैत्य	९. जिन चैत्यालय

''व्यस्त रहो तो मन स्वस्थ, आत्मस्थ वरना त्रस्त''

''अच्छी किताब अच्छा मित्र समझो सदा साथ दे''

परमेष्ठी का स्वरूप -

धर्म स्थान में जिनका पद महान होता है, जो गुणों में सर्वश्रेष्ठ होते हैं तथा चक्रवर्ती, राजा, इन्द्र एवं देव आदि भी जिनके चरणों की वन्दना करते हैं उन्हें परमेष्ठी कहते हैं।

जीव जिस पद में स्थित होकर आत्म - साधना करते हुए अन्ततः मोक्ष-सुख को प्राप्त करते हैं उस पद को परम पद अथवा श्रेष्ठ पद कहा जाता है।

परमेष्ठी पाँच होते हैं - अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी।

अरिहन्त परमेष्ठी का स्वरूप -

जिन्होंने चार घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अंतराय) को नष्ट कर दिया है तथा जो अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य और अनंत सुख रूप अनंत चतुष्टय से युक्त हैं। समवशरण में विराजमान होकर दिव्यध्वनि के द्वारा सब जीवों को कल्याणकारी उपदेश देते हैं, वे अरिहंत परमेष्ठी कहलाते हैं।

नवदेव स्तवन

जय जय जय अरिहंत देव, जो कर्म घातिया नाश किया।
जय जय जय श्री सिद्ध प्रभु जी, सिद्ध शिला पर वास किया।।
जय जय जय आचार्य हमारे, दीक्षा दे जग तार दिया।
जय जय जय श्री उपाध्याय जी, ज्ञानदीप जो जला दिया।।
जय जय जय श्री साधु सहारे, ज्ञान, ध्यान, तप धार लिया।
जय जय जय जिनधर्म देव जी, सच्चा शिव पथ बता दिया।।
जय जय जय पूजित जिन आगम, मोह महातम भगा दिया।
जय जय जय जिनवर की प्रतिमा, सम्यक् श्रद्धा जगा दिया।।
जय जय जय श्री जिन चैत्यालय, जिनशासन की जो गाथा।
जय जय जय जो निश-दिन करता, वंदन शिवसुख वो पाता।।

सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप -

जो ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित हैं एवं क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक वीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व और अव्याबाधत्व इन आठ गुणों से युक्त हैं। शरीर रहित सिद्ध परमेष्ठी कहलाते हैं।

आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप -

जो दीक्षा-शिक्षा एवं प्रायश्चित्त आदि देकर भव्य जीवों को मोक्षमार्ग में लगाते हैं, संघ के संग्रह (एकत्रित करना), निग्रह (नियंत्रण करना, कंट्रोल) में कुशल होते हैं आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप -

जो मुनि शिष्यों एवं भव्य जीवों को निरन्तर दया, धर्म का उपदेश देते हैं तथा सिद्धान्त आदि ग्रन्थों का ज्ञान करवाते हैं, उन्हें उपाध्याय परमेष्ठी कहते हैं।

साधु परमेष्ठी का स्वरूप -

जो ज्ञान, ध्यान, तप में लीन रहते हैं, आरंभ परिग्रह से रहित पूर्ण दिगम्बर मुद्राधारी साधु परमेष्ठी कहलाते हैं।

जिन धर्म का स्वरूप-

जो संसार के दुखों से छुड़ाकर उत्तम सुख मोक्ष मे पहुंचा देता है वह जिनेन्द्र देव द्वारा कहा हुआ जिनधर्म है। वह उत्तम क्षमादि रूप, अहिंसादि रूप, वस्तु के स्वभावरूप एवं रत्नत्रय रूप है।

जिनागम का स्वरूप-

जिनेन्द्र प्रभु द्वारा कथित वीतराग वाणी को जिनागम कहते है जिनागम वस्तु स्वरूप का पूर्ण ज्ञान प्रतिपादित करता है इसे जिनवाणी, सच्चा शास्त्र, श्रुत देव, जैन सिद्धान्त ग्रन्थ भी कहते हैं।

जिन चैत्य का स्वरूप-

साक्षात् तीर्थंकर, केवली भगवान के अभाव में धातु पाषाण आदि से तद्रूप जो रचना की जाती है उसे चैत्य कहते हैं। जिन चैत्य को जिन बिम्ब अथवा जिन प्रतिमा भी कहते हैं।

जिन चैत्यालय का स्वरूप-

जिन चैत्य जहाँ विराजमान होते हैं उसे चैत्यालय कहते हैं। जिन चैत्यालय को समवशरण, मंदिर, जिनगृह, देवालय इत्यादि अनेक शुभ नामों से जाना जाता है।

जिन चैत्य-चैत्यालय मनुष्य एवं देवों द्वारा निर्मित (कृत्रिम) तथा किसी के द्वारा नहीं बनाए गए (अकृत्रिम) दोनों प्रकार के होते हैं। नन्दीश्वर द्वीप आदि अनेक स्थानों पर अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय हैं।

ओंकार की रचना :-

पाँचों परमेष्ठियों के प्रतीक प्रथम अक्षर जोड़ने से ओम् बनता है।

अरिहंत का 'अ' = अ
सिद्ध (अशरीरी) का 'अ' = अ + अ = आ
आचार्य का 'आ' = आ + आ = आ
उपाध्याय का 'उ' = आ + उ = ओ
साधु (मुनि) का 'म' = ओ + म्
= ओम्, = ॐ

अरिहंत से बड़े सिद्ध परमेष्ठी होते हैं फिर भी अरिहंतों के द्वारा हमें धर्म का उपदेश मिलता है एवं सिद्ध भगवान के स्वरूप का ज्ञान कराने वाले अरिहंत भगवान ही हैं। इसीलिए णमोकार मंत्र में सिद्धों से पहले अरिहंतो को नमस्कार किया गया है।

● सुनना भार बढ़ाने के लिए नहीं हल्के/निर्भार बनने के लिए'। जो सुनते हैं उसे जीवन में घोल दें तो भार नहीं बढ़ेगा और आचरण भी सुस्वादु हो जाएगा। जैसे पानी में शक्कर।

जिनवाणी स्तुति

**मिथ्यातम नासवे को, ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा पर भासवे को, भानु सी बखानी है॥
छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध-विधि भानवे को।
स्वपर पिछानवे को, परम प्रमानी है॥
अनुभव बतायवे को, जीव के जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है॥
जहाँ-तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को, ऐसी जिनवाणी है॥
हे जिनवाणी भारती, तोहि जपूँ दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहै, सो पावे सुख चैन॥
जिनवाणी की यह थुति, अल्पबुद्धि परमान।
'पन्नालाल' विनती करै, दे माता मोहि ज्ञान॥
जा वाणी के ज्ञानतैं, सूझे लोकालोक।
सो वानी मस्तक चढ़ो, सदा देत हों धोक॥**

महात्मा गाँधी पर जैनधर्म का प्रभाव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में जिन्होंने सत्य और अहिंसा के बल पर भारत को सैकड़ों वर्षों की अंग्रेजों की गुलामी से स्वतंत्र कराया , ऐसे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जीवन जैन संस्कारों से प्रभावित था। जब मोहनदास करमचंद गाँधी ने अपनी माता पुतलीबाई से विदेश जाने की अनुमति माँगी तब उनकी माँ ने अनुमति प्रदान नहीं की, क्योंकि माँ को शंका थी, कि यह विदेश जाकर माँस आदि का भक्षण करने न लग जाए। उस समय एक जैन मुनि बेचरजी स्वामी के समक्ष गाँधी के द्वारा तीन प्रतिज्ञा (माँस, मदिरा व परस्त्री सेवन का त्याग) लेने पर माँ ने विदेश जाने की अनुमति दी। इस तथ्य को गाँधी ने अपनी आत्मकथा सत्य के प्रयोग , पृ. ३२ पर लिखा है।

पाँचों परमेष्ठियों के मूलगुण क्रमशः ४६, ८, ३६, २५, व २८ होते हैं। उनका कुल योग ४६ + ८ + ३६ + २५ + २८ = १४३ होता हैं।

तीर्थंकर केवली और सामान्य केवली में निम्न अंतर पाया जाता है –

तीर्थंकर केवली	सामान्य केवली
१. तीर्थंकरों के कल्याणक होते हैं।	१. कल्याणक नहीं होते हैं।
२. केवल ज्ञान होने के पश्चात् नियम से समवशरण की रचना होती है।	२. केवल ज्ञान होने के पश्चात् अनियम (जरूरी नहीं) से गंधकुटी की रचना होती है।
३. तीर्थंकरों के नियम से गणधर होते हैं और दिव्य ध्वनि खिरती है।	३. सामान्य केवलियों की दिव्य ध्वनि एवं गणधरों का नियम नहीं।
४. एक उत्सर्पिणी अथवा अवसर्पिणी काल में चौबीस ही तीर्थंकर होते हैं।	४. संख्या निश्चित नहीं।
५. तीर्थंकरों के चिह्न होते हैं।	५. चिह्न नहीं होते हैं।

**जैसा का तैसा,
दर्पण दिखाता है,
सुधारता ना ।**

उपदेश का प्रभाव

एक सेठ जी की पुत्री मुनि महाराजजी के दर्शन करने गई। मुनि महाराज पाँच पापों पर धर्मोपदेश दे रहे थे, वह पुत्री भी पाँच पापों का वर्णन सुन रही थी, तभी मन पवित्र कर उसने उन पाँचों पापों का त्याग कर दिया और पाँच अणुव्रत लेकर घर गई। घर आकर व्रत लेने की बात अपने पिता जी से कह सुनाई। पिता जी नाराज हो गए और कहा कि मेरी आज्ञा के बिना मेरी पुत्री को व्रत देने वाले मुनि कौन होते हैं? और अपनी पुत्री से व्रत छोड़ने की बात कही पर वह नहीं मानी तब दोनों मुनि महाराज जी के पास जाते हैं तब देखते हैं कि –

रास्ते में एक व्यक्ति को सूली पर चढ़ाया जा रहा था। पुत्री ने उसे देखकर पिता से पूछा पिता जी इसे सूली पर क्यों चढ़ाया जा रहा है, पिता ने कहा इसने अपने एक साथी की हत्या की है अतः इसे फाँसी दी जा रही है। पुत्री ने कहा जो हिंसा इस लोक में सूली और दुःख देने वाली है और परलोक में नरकगति का कारण है अतः हिंसा नहीं करना चाहिए, पिताजी यह व्रत तो बहुत अच्छा है, मैंने हिंसा पाप छोड़ दिया तो क्या बुरा किया ? पिता ने कहा, अच्छा बेटी यह व्रत रख ले। किन्तु शेष चार को छोड़ दे। कुछ आगे और चले तो देखा कि एक पुरुष की जीभ काटी जा रही थी। बेटी ने पूछा पिताजी इसकी जीभ क्यों काटी जा रही है? पिताजी ने कहा बेटी इसने झूठ बोला था उसी कारण उसे सजा दी जा रही है। बेटी ने कहा झूठ बोलने वाले का कोई विश्वास नहीं करता और राजा भी दंड देता है परलोक में भी दुर्गति होती है अतः झूठ बोलने से बचना चाहिए पिताजी यह व्रत लेकर मैंने क्या बुरा किया? पिता ने कहा अच्छा यह भी रख लो किन्तु शेष तीन छोड़ दे। कुछ और आगे चलकर देखा कि एक पुरुष को पुलिस वाले हाथ में हथकड़ी बांधे ले जा रहे हैं। बेटी ने पिताजी से पूछा–इसने क्या किया है? पिता ने कहा इसने चोरी की है यह चोर है इसलिए इसके हाथ काटने को पुलिस इसे ले जा रही है। बेटी ने कहा देखो तो चोरी छोड़ना तो मेरा तीसरा व्रत है। पिताजी अच्छा इसे भी रख ले। दो मुनि महाराज जी को वापस कर देना और आगे चलकर देखा तो एक पुरुष के हाथ–पैर काठ में फँसाए जा रहे हैं। बेटी ने पूछा इसने क्या किया, पिताजी ने कहा इसने पर स्त्री सेवन किया उसी अपराध में यह सजा दी जा रही है। बेटी ने कहा जिस कुशील पाप से व्यभिचारी का मन सदा भ्रान्त रहता है लोगों को दुर्गति का दंड भोगना पड़ता है वह तो छोड़ना ही चाहिए, पिताजी ने कहा यह व्रत भी रख ले, बाकी अब एक तो वापस कर देना। आगे देखा कि पुलिस वाला एक पुरुष को पकड़े लिए जा रहा है बेटी ने पूछा इसे क्यों पकड़े हुए हैं पिता ने कहा इसने अत्यधिक धन एकत्रित किया है। बेटी ने कहा धन कमाने जोड़ने रखवाली करने में कष्ट है तृष्णा बढ़ती है, लोभी कहलाता है अतः दुःख उठाता रहता है और अधिक परिग्रह नरक आयु के बंध का कारण है अतः ऐसे परिग्रह पाप को मैंने त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? पिता ने कहा ठीक है यह व्रत भी रख लो। इस तरह हिंसादि पापों की बुराई का विचार करते रहना चाहिए। उसके पिता ने भी मुनिराज के समक्ष पापों को बुरा जानकर मुनिव्रत धारण कर आत्म कल्याण किया इसी तरह हम सभी को आत्म कल्याण के मार्ग पर बढ़ना चाहिए।

शिक्षा– नियम की नियम से परीक्षा होती है, अतः लिए हुए नियमों का दृढ़ता से पालन करना चाहिए।

१.ब जैन श्रावक का प्रथम कर्त्तव्य - देवदर्शन

देव - दर्शन का स्वरूप -

जिनेन्द्र देव का दर्शन श्रावकों का प्रथम एवं प्रमुख कर्त्तव्य कहा गया है। साक्षात् जिनेन्द्र देव का अभाव होने पर उनकी वीतराग प्रतिमा या जिनबिम्ब में उनके गुणों का आरोपण करके श्रद्धा पूर्वक अरिहन्त, सिद्ध या जिनदेव मानकर, निर्मल परिणामों से उनके जैसे गुणों की प्राप्ति की भावना से नमस्कार करना देव-दर्शन कहलाता है।

देव - दर्शन का फल -

देव-दर्शन से पूर्व जन्म में संचित पाप-समूह नष्ट हो जाता है, जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोग मिट जाता है एवं स्वर्ग सुख तथा सहज मोक्षसुख की भी उपलब्धि देव-दर्शन से सहज हो जाती है।

देव - प्रतिमा का रूप -

जिनेन्द्र देव की प्रतिमा समचतुरस्र संस्थान वाली खड्गासन अथवा पद्मासन में होती है। प्रतिमा के लटकते हुए दोनों हाथ अथवा हाथ पर हाथ धरी हुई मुद्रा कृतकृत्यता का प्रतीक है। अर्थात् सभी करने योग्य कार्य वे कर चुके, अब कुछ भी करना शेष नहीं रहा। अर्धोन्मीलित नेत्र अन्तर्दृष्टि का प्रतीक है अर्थात् जिन्होंने पर पदार्थों की ओर से दृष्टि को हटाकर अपने आत्म तत्त्व की ओर कर दी है। उनकी वीतराग मुख मुद्रा समत्व परिणति का प्रतीक है अर्थात् वे कभी प्रसन्न अथवा उदास नहीं होते हैं।

देव प्रतिमा

देव प्रतिमा का प्रभाव -

जिनेन्द्र प्रतिमा जहाँ विराजित होती है, उसे जिनालय, जिनमंदिर अथवा चैत्यालय कहते हैं। जिनेन्द्र प्रतिमा एक आदर्श (दर्पण) के समान है, जिसे देखकर हमें अपने मूल स्वरूप का ज्ञान होता है। जैसे दर्पण में अपना चेहरा (मुख) देखने पर, चेहरे पर लगे दाग-धब्बे हम देख पाते हैं, उसी प्रकार वीतराग भगवान का दर्शन हमें अपने भीतर के राग-द्वेष, विषय-कषाय, अज्ञान रूपी धब्बों के देखने में निमित्त बनता है।

जिस प्रकार किसी पहलवान को देखने से पहलवान बनने के, डॉक्टर को देखने से डॉक्टर बनने के भाव मन में उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार वीतरागता से सहित, सौम्य मुद्राधारी जिनेन्द्र भगवान के बिम्ब के दर्शन से हमारे भाव भी वीतरागी बनने के होते हैं/ होना चाहिए।

देव प्रतिमा की महिमा -

जिनबिम्ब के दर्शन से मनुष्य एवं तिर्यञ्चों को सम्यग्दर्शन तक प्राप्त हो जाता है, पूर्व में बाँधे हुए निधत्ति, निकाचित कर्म भी क्षय को प्राप्त हो जाते हैं।

जल्दी-जल्दी में, शब्द-अर्थ में छुपा आनन्द कहाँ?

शब्द अर्थ में, छुपा आनन्द मिले, धीरे पढ़ो तो ।

जिन प्रतिमा मंदिर की आवश्यकता -

जिन्होने घर गृहस्थी सम्बन्धी सभी कार्य, पाँच पाप छोड़ दिये हैं ऐसे साधक तो अपने मन में ही परमात्मा की वंदना, पूजन कर सकते हैं। किन्तु गृहस्थ श्रावक के लिए सर्वत्र राग-द्वेष मय वातावरण ही मिलता है वह पाँच पापों में लिप्त रहता है।

अपेक्षा रखो, उपेक्षा मिले तब, क्रोध तो आवे ।

कर्त्तव्य करो, अपेक्षा रहित हो, क्रोध क्यों आवे ।

उसके लिए ऐसा कोई स्थान चाहिए जहाँ वह कुछ समय पापों से दूर रहकर परमात्मा का दर्शन, पूजन, ध्यान कर सके, जीवन संसार के सत्य को जान सके, जहाँ का वातावरण राग-द्वेष, विषय कषायों से दूर हो अत: ऐसा स्थान मंदिर ही हो सकता है। इसलिए अकृत्रिम जिनालयों के अनुरूप बड़े - बड़े राजाओं ने, सेठों ने एवं सुधी श्रावकों ने भव्य जिन मंदिरों का निर्माण कराया, उनमें जिनबिम्ब प्रतिष्ठित कराया और आवश्यकतानुसार आज भी कर रहे हैं। अत: गृहस्थ के लिए जिनालय की नितांत आवश्यकता है।

जिन मंदिर/देव दर्शन की विधि -

देव दर्शन हेतु प्रात:काल स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर शुद्ध धुले हुए साफ वस्त्र (धोती दुपट्टा अथवा कुर्ता पायजामा) पहनकर तथा हाथ में धुली हुई स्वच्छ अष्ट द्रव्य लेकर मन में प्रभु दर्शन की तीव्र भावना से युक्त, नङ्गे पैर नीचे देखकर जीवों को बचाते हुए घर से निकलकर मंदिर की ओर जाना चाहिए। रास्ते में अन्य किसी कार्य का विकल्प नहीं करना चाहिए। दूर से ही मंदिर जी का शिखर दिखने पर सिर झुकाकर जिन मंदिर को नमस्कार करना चाहिए, फिर मन्दिर के द्वार पर पहुँचकर शुद्ध छने जल से दोनों पैर धोना चाहिए।

अर्घ चढ़ाते समय की भावना -

मंदिर के दरवाजे में प्रवेश करते ही ॐ जय जय जय, निस्सही निस्सही निस्सही नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु बोलना चाहिए फिर मंदिर जी में लगे घण्टे को बजाना चाहिए।

इसके पश्चात् भगवान के सामने जाते ही हाथ जोड़कर सिर झुकावें, णमोकार मंत्र पढ़कर कोई स्तुति स्तोत्र पाठ पढ़कर "भगवान की मूर्ति को एक टक होकर देखें भावना करें जैसी आपकी छवि हैं वैसी ही वीतरागता मुझें प्राप्त होवे जैसे आप सिंहासन आदि अष्ट प्रातिहार्यो से निर्लिप्त हैं वैसे ही मैं भी संसार में निर्लिप्त रहूं" साथ में लाए पुंज बंधी मुट्ठी से अँगूठा भीतर करके अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ऐसे पाँच पुंज चढ़ावे।

फिर जमीन पर गवासन से बैठकर, जुड़े हुए हाथों को तथा मस्तक को जमीन से लगावें तीन बार धोक देवें तत्पश्चात् हाथ जोड़कर खड़े हो जावें और मधुर स्वर में स्पष्ट उच्चारण के साथ स्तुति आदि पढ़ते हुए अपनी बाँयी ओर से चलकर वेदी की तीन परिक्रमा करें।

तदनन्तर स्तोत्र पूरा होने पर फिर बैठकर नमस्कार करें।

परिक्रमा देते समय ख्याल रखें कोई धोक दे रहा हो तो उसके आगे से न निकलकर, पीछे की ओर से निकले। दर्शन करने इस तरह खड़े हो तथा पाठ करे जिससे अन्य किसी को बाधा न हो।

गन्धोदक लेने की विधि -

दर्शन कर लेने के बाद अपने दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों को गन्धोदक के पास रखे अन्य जल में डुबोकर शुद्ध कर लेने पर अंगुलियों से गन्धोदक लेकर उत्तमांग पर लगाएँ फिर गंधोदक वाली अंगुलियों को पास में रखे जल में धो लेवें। गन्धोदक लेते समय निम्न पंक्तियाँ बोलें -

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशनम्। जिन गन्धोदकं वंदे, अष्ट कर्म विनाशकम्॥

इसके पश्चात् नौ बार णमोकार मंत्र पढ़ते हुए कायोत्सर्ग करें। फिर जिनवाणी के समक्ष 'प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नम:' ऐसा बोलते हुए क्रम से चार पुंज लाइन से चढ़ावें तथा गुरु के समक्ष 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्रेभ्यो नम:' ऐसा बोलकर क्रम से तीन पुंज लाइन से चढ़ावें। कायोत्सर्ग करें, फिर भगवान को पीठ न पड़े ऐसा विनय पूर्वक दरवाजे से बाहर अस्सहि, अस्सहि, अस्सहि बोलते हुए निकलें।

दर्शन करते समय चढ़ाने योग्य सामग्री -

मंदिर जाते समय प्रभु चरणों में चढ़ाने हेतु अपनी सामर्थ्य के अनुसार उत्कृष्ट, जीव जन्तु रहित, स्वच्छ सामग्री ले जाना चाहिए। स्वर्ग के देव दिव्य पुष्प, दिव्य फलादि सामग्री ले जाते हैं। चक्रवर्ती आदि राजा महाराजा हीरे मोती जवाहारात आदि भगवान के चरणों में चढ़ाने के लिए ले जाते हैं। मनोवती कन्या का दृष्टान्त आगम में आता है उसने गज मोती चढ़ाकर ही भगवान के दर्शन करने के पश्चात् ही भोजन करने का नियम लिया था।

सामान्य श्रावक श्रीफल, अक्षत, बादाम आदि फल लेकर भगवान के चरणों में जाता है। अत: भगवान के पास क्या लेकर जाएँ इसका कोई विशेष नियम नहीं है, सामान्य रूप से सभी अखंड चावल लेकर देव दर्शन हेतु जाते हैं पर अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य बहुमूल्य श्रेष्ठ वस्तु भी चढ़ा सकते हैं। वह सामग्री हमारे राग भाव की कमी, त्याग का प्रतीक है। अनेक क्षेत्रों में जहाँ जैसी सामग्री उपलब्ध हो अखरोट, बादाम, काजू, किसमिस, नारियल आदि भी ले जा सकते हैं।

द्रव्य ले जाने का कारण -

चावल आदि सामग्री ले जाने के कारण हमें रास्ते में ध्यान रहता है कि हम कहाँ जा रहे हैं ? मंदिर जा रहे हैं। बाजार से गुजरते हुए भी मन बाजार में नहीं भटकता। दूसरा कारण जब लौकिक व्यवहार में साधारण से सम्राट आदि से मिलने जाते समय, रिश्तेदारों के यहाँ जाते समय कुछ न कुछ भेंट लेकर अवश्य जाते हैं खाली हाथ नहीं जाते। तब तीन लोक के नाथ अकारण बन्धु जहाँ विराजमान हैं ऐसे मंदिर में खाली हाथ कैसे जा सकते हैं अत: भगवान के पास नियम से कुछ न कुछ लेकर अवश्य जाना चाहिए।

संस्मरण - भव जल का तीर

जल में जलचर जीवों के अलावा अन्य जीवों का ज्यादा देर तक आवास मौत का कारण बनता है। परन्तु यदि कोई अपने प्रयास से उसमें ठहरता है तो समझिएगा कि वह भव-जल से पार होकर किनारा अवश्य पाने वाला होगा। इस प्रयास में अभ्यास परम अनिवार्य है।

सदलगा में बालक विद्या के घर के पास एक बावड़ी बनी थी। उस बावड़ी में आसपास के बच्चे आदि नहाया करते थे। उसमें विद्या कभी पद्मासन लगाकर, कभी चित्त तैरकर, अपने को स्थिर करके ध्यान लगाया करते थे। आसपास के लोग समझते थे, विद्या पानी मचा देता है इसलिए एक दिन श्रीमंती से मुहल्ले वालों ने शिकायत कर दी कि आपका बेटा आज फिर बावड़ी में ऊधम कर रहा है, पानी मचा रहा है। जब विद्या अपने घर वापस आए तो माँ बोली-क्यों रे! तुझे हजारों बार समझाया कि बावड़ी में मत नहाया कर, पर तू मानता क्यों नहीं ? बावड़ी में नहाने से आँखें लाल हो जाती हैं, सर्दी बनी रहती है, बुखार भी आ जाता है और बीमार अलग बना रहता है। क्यों रे! बोल तू कब सुधरेगा ? क्यों करता है हम लोगों को परेशान ? कब आएगी तुझे अकल ? विद्या शान्त रहे शायद बावड़ी के शान्त जल की तरह। न हिले, न डुले, परन्तु जब माँ ने डाँट रूपी हवा चलायी तो विद्या रूपी जल तरंगित हो उठा. एवं जवाब में बोले-मैं पानी नहीं मचाता हूँ मैं तो ध्यान लगाता हूँ। अब क्या कहती, माँ भी हो गयी शान्त सरोवर के नीर की भाँति। पर वो क्या समझे कि आज बावड़ी में ध्यान लगाने वाला कल को भव-जल में ध्यान लगाकर किनारे जाने वाला है।

वास्तव में आत्मा में ध्यान लगाने वाले परम साधक ही मूल्यवान रत्नों की प्राप्ति के अधिकारी होते हैं। आज जगत् पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जब चर्या करते हैं तो मूलाचार का पालन एवं ध्यान लगाते तो समयसार की साधना करते हैं। इस विधि से भव जल से पार पाया जा सकता है, यह उपदेशों में बताते हैं।

● विपदा भली, अपने पराये का, बोध कराती ।●

अशरीरी सिद्ध भगवान

अशरीरी सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।
सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुख वेदन।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे।। अशरीरी...।।
रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल।
कुल गोत्र रहित निश्कुल, मायादि रहित निश्छल।
रहते निज में निश्चल, निष्कर्म साध्य मेरे ।। अशरीरी...।।
रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हो।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म विलासी हो।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे ।। अशरीरी...।।
भविजन तुम सम निज-रूप, ध्याकर तुम सम होते।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते।
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे।।
अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्ही मेरे।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे।।

ज्ञान दान सर्वश्रेष्ठ है

आहार दान	:	कुछ घंटे निराकुल करता है
औषधि दान	:	कुछ काल के लिए निराकुल करता है
ज्ञान दान	:	यह हमेशा के लिए निराकुल बना देता है क्योंकि ज्ञान दान ही केवल ज्ञान का कारण बनता है।
अभय दान	:	उस भव के लिए निराकुल करता है।

१.स | एक आदर्श बेटी - मैना सुन्दरी एवं राजा श्रीपाल

चम्पापुर के राजा का नाम अरिदमन और रानी का नाम कुन्दप्रभा था। रानी कुन्दप्रभा, कुन्दपुष्प के समान लावण्यमयी, गुण और शील में अद्वितीय थी। रानी कुन्दप्रभा के अत्यन्त धीर-वीर, उदारवेत्ता, दीनवत्सल, धर्मप्रिय पुत्र रत्न हुआ।

उस बालक का नाम श्रीपाल रख दिया। राज्य संचालन में दत्तचित, कामदेव के समान श्रीपाल को एवं अन्य ७०० वीरों को अचानक एक साथ महाभयानक कुष्ठ रोग हो गया, जिससे इन लोगों का शरीर गलने लगा एवं खून बहने लगा।

इन लोगों की दयनीय दशा को देखकर प्रजाजन अत्यन्त क्षुब्ध एवं दु:खी रहते थे। जब रोग की दुर्गन्ध के कारण वातावरण बिगड़ने लगा, तब वीरदमन चाचा जी के कहने पर श्रीपाल ७०० वीरों के साथ नगर से बहुत दूर उद्यान में जाकर निवास करने लगे।

एक उज्जयनी नामक ऐश्वर्यपूर्ण नगरी थी। जिसके राजा का नाम पुहुपाल था। उसकी अनेक रानियाँ थी। उनमें से पद्मरानी के गर्भ से सुरसुन्दरी एवं मैनासुन्दरी नाम की दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। उनमें से सुरसुन्दरी शैव गुरु से एवं मैनासुन्दरी ने आर्यिका से धार्मिक अध्ययन किया था। पिता के पूछने पर सुरसुन्दरी ने अपनी स्वेच्छानुसार हरिवाहन से विवाह स्वीकार कर लिया,परन्तु मैनासुन्दरी ने कहा है कि पिता जी, कुलीन एवं शीलवती कन्यायें अपने मुख से किसी अभीष्ट वर की याचना कदापि नहीं करती हैं। मैनासुन्दरी की विद्वत्तापूर्ण वार्ता को सुनकर राजा पुहुपाल तिलमिला गये और उन्होंने क्रोध में आकर कोढ़ी राजा श्रीपाल से विवाह कर दिया।

राजा श्रीपाल के कुष्ठ रोग को दूर करने के लिए मैनासुन्दरी ने गुरु के आशीर्वाद एवं विधि के अनुसार अष्टाह्निका पर्व में सिद्धचक्र महामण्डल विधान का आयोजन किया, जिसके प्रभाव से श्रीपाल के साथ ७०० वीरों का भी कुष्ठरोग ठीक हो गया।

कुछ समय बाद श्री पाल मैनासुन्दरी के साथ चम्पापुरी वापस आ गये। एक दिन श्रीपाल अपने महल के छत पर बैठे हुये थे। आकाश में बिजली चमकी, जिसे देखकर उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने पुत्र धनपाल को राज्य सौंपकर वन की ओर चले गए। उनके साथ ८००० रानियाँ तथा माता कुन्दप्रभा भी वन को प्रस्थान कर गई।

श्रीपाल ने मुनीश्वर के पास जाकर जिनदीक्षा धारण कर ली। उनके साथ ७०० वीरों ने भी दीक्षा ले ली, माता कुन्दप्रभा व अन्य रानियों ने भी आर्यिका के व्रत ग्रहण किए। कठोर तपस्या करते हुए अल्पसमय में ही घातिया कर्मों को नष्टकर केवलज्ञान प्राप्त किया और फिर शेष कर्मों को नष्टकर मोक्षधाम को प्राप्त हुये।

केशरिया - केशरिया , आज हमारो मन केशरिया -२
चतुर्मुखी भगवान केशरिया, वीतराग भगवान केशरिया।
सारा मुनिसंघ है केशरिया, भक्तों के हैं भाव केशरिया।।
अष्ट द्रव्य का थाल केशरिया, तिलक लगाया भाल केशरिया।
जल चंदन अक्षत केशरिया, फूल चरूऔ दीप केशरिया।।
धूप केशरिया फल केशरिया, अर्घ बनाया है केशरिया।
भक्ति के हैं भाव केशरिया, मंदिर का कलशा केशरिया।।
मंदिर का झंडा केशरिया, आज धरा हो गई केशरिया।
केशरिया-२ आज हमारो मन केशरिया।।

सारे जहाँ से न्यारा

सारे जहाँ से न्यारा, विद्या गुरु हमारा।
हम वंदना करेंगे, वो देवता हमारा।।
हैं आँधियाँ और तूफाँ, छाया घना अँधेरा।।
दिखती नहीं है मंजिल, बस तू ही है सहारा।। १।।
सासों में गूँजती है, गुरु वाणी गीत धारा।
जीवन किया हवाले, तू आसरा हमारा ।।सारे।। २।।
नयनों से बह रही है, करुणा दया की धारा।
जो भी शरण में आया, भव का मिला किनारा।। सारे।। ३।।

● जब मन को विश्वास होता है कि किसी अवस्था या व्यवस्था में परिवर्तन के लिए कोई गुंजाइश नहीं है तो वह धीरे-धीरे उस अवस्था या व्यवस्था को स्वीकार कर लेता है।

प्रत्येक कार्य समय पर होता है इसलिए उतावली नहीं करना चाहिए
जिस प्रकार वृक्ष में चाहे जितना भी पानी डाला जाए पर वह समय पर ही फल देता है
समय एवं धैर्य हमारी समस्याओं को स्वयमेव सुलझा देते हैं।

१.द | शान्तिनाथ स्तवन

समग्रतत्त्वदर्पणम् विमुक्तिमार्गघोषकम्।
कषायमोहमोचकं नमामि शान्तिजिनवरम्।।१ ।।

अर्थ : (**समग्रतत्त्वदर्पणम्**) सम्पूर्ण पदार्थों को प्रकाशित करने में दर्पण के समान (**विमुक्तिमार्गघोषकम्**) मोक्षमार्ग का उद्घोष/उपदेश करने वाले (**कषायमोहमोचकं**) कषाय एवं मोह को छोड़ने वाले (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

त्रिलोकवन्द्यभूषणं, भवाब्धिनीरशोषणं।
जितेन्द्रियम् अजं जिनं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।२ ।।

अर्थ : (**त्रिलोकवन्द्यभूषणं**) तीनों लोकों में पूज्य आभूषणरूप (**भवाब्धिनीरशोषणं**) संसाररूपी सागर के जल को सुखाने वाले (**जितेन्द्रियम्**) इन्द्रियविजयी (**अजं**) जन्म से रहित उन (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

अखण्डखण्डगुणधरं, प्रचण्डकामखण्डनम्।
सुभव्यपद्मदिनकरं नमामि शान्तिजिनवरम्।।३ ।।

अर्थ : (**अखण्डखण्डगुणधरं**) प्रमाण की अपेक्षा से अखण्ड/एक और निश्चय-व्यवहाररूप नयों की अपेक्षा से खण्ड/ अनेक गुणों के धारक (**प्रचण्डकाम-खण्डनम्**) भीषण/उग्र काम को नाश करने वाले तथा (**सुभव्यपद्मदिनकरं**) भव्यजीवरूपी कमलों को विकसित करने में सूर्य स्वरूप (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

एकान्तवादमतहरं, सुस्याद्वादकौशलं।
मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।४ ।।

अर्थ : (**एकान्तवादमतहरं**) एकान्तवादरूपी मिथ्यामतों के नाशक (**सुस्याद्वादकौशलं**) स्याद्वाद में कुशलता को धारण करने वाले (**मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं**) गणधर मुनियों के समूह से सेवित/पूजित (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

नृपेन्द्रचक्रमण्डनं प्रकर्मचक्रचूरणं।
सुधर्मचक्रचालकं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।५ ।।

अर्थ : (**नृपेन्द्रचक्रमण्डनं**) प्रधान राजाओं के समूह में शोभास्वरूप (**प्रकर्म-चक्रचूरणं**) प्रचण्ड कर्मों के समूह को नष्ट करने वाले और (**सुधर्म-चक्रचालकं**) समीचीन धर्मचक्र के संचालक उन (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

अग्रन्थनग्नकेवलं, सुमोक्षधामकेतनं।
अनिष्टघनप्रभञ्जनं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।६ ।।

अर्थ : (**अग्रन्थनग्नकेवलं**) परिग्रह से रहित नग्नता मात्र को धारण करने वाले (**सुमोक्षधाम-केतनं**) सुन्दर मोक्षमहल के ध्वजास्वरूप (**अनिष्ट-घनप्रभञ्जनं**) अनिष्ट पापरूपी मेघों के लिए प्रचण्ड पवन समान (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

महाश्रमणमकिञ्चनं, अकामकामपदधरं।
सुतीर्थ कर्तृषोडशं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।७ ।।

अर्थ : (**महाश्रमणं**) जो श्रमणों में महान (**अकिञ्चनं**) सम्पूर्ण परिग्रह से रहित (**अकामकामपदधरं**) कामना रहित कामदेव पद के धारण करने वाले (**सुतीर्थकर्तृषोडशं**) रत्नत्रय व आगमरूप सच्चे धर्मतीर्थ को करने वाले सोलहवें तीर्थङ्कर (**शान्तिजिनवरम्**) श्री शान्तिनाथ जिनवर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

महाव्रतन्धरं वरं दयाक्षमागुणाकरं।
सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।८ ।।

अर्थ : (**वरं**) श्रेष्ठ (**महाव्रतन्धरं**) महाव्रतधारी (**दयाक्षमागुणाकरं**) दया-क्षमा आदि गुणों के भण्डार तथा (**सुदृष्टिज्ञानव्रतधरं**) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के धारक (**शान्तिजिनवरम्**) भगवान् शान्तिनाथ तीर्थङ्कर को (**नमामि**) मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रेम से लोगों को जीतना
अधिकार दिखाकर जीतने से
कहीं अधिक आसान है।

जैसे स्वप्न में काटे गए सिर का दुःख
बिना जागे दूर नहीं होता, उसी प्रकार संसार का दुःख
बिना आत्मज्ञान हुए दूर नहीं होता।

पाठ्यक्रम - २

२.अ सर्व कल्याणकारी महामंत्र- णमोकार

''णमोकार महामंत्र'' (प्राकृत भाषा) **नमस्कार महामंत्र (हिन्दी भाषा)**

णमो अरिहंताणं	अरिहंतों को नमस्कार
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को नमस्कार
णमो आइरियाणं	आचार्यों को नमस्कार
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को नमस्कार
णमो लोए सव्व साहूणं	लोक में (स्थित) सभी साधुओं को नमस्कार

''संघर्षमय जीवन का उपसंहार वह नियमरूप से हर्षमय होता है, धन्य!''

णमोकार मंत्र की महिमा

''एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं॥''

यह पंचनमस्कार मंत्र सभी पापों का नाश करने वाला है तथा सभी मंगलों में प्रथम (श्रेष्ठ) मंगल है।

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

णमोकार मंत्र का स्वरूप -

अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, एवं साधु इन पाँच परमेष्ठियों को जिस मंत्र में नमस्कार किया गया है उसे णमोकार मंत्र कहते है। णमोकार मंत्र सभी मंत्रों में श्रेष्ठ अर्थात प्रधान है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष को नमस्कार नहीं किया गया है अपितु शास्त्रों में कहे गए विशिष्ट गुणों से सहित परम-आत्माओं को नमस्कार किया गया है।

णमोकार मंत्र के अन्य नाम -

इस मंत्र के अन्य नाम भी कहे जाते हैं, जैसे महामंत्र, मूलमंत्र, मंत्रराज, मृत्युञ्जयी मंत्र, अपराजित मंत्र, पंच नमस्कार मंत्र, अनादि-अनिधन मंत्र, सर्वकालिक मंत्र, त्रैकालिक मंत्र, मंगल मंत्र इत्यादि।

णमोकार मंत्र का इतिहास -

पंच-परमेष्ठी अनादिकाल से होते आ रहे हैं तथा आगे भी अनंतकाल तक होते रहेंगे, इस अपेक्षा से यह मंत्र अनादि-अनिधन है इसका कोई रचयिता नहीं है। लगभग २००० वर्ष पूर्व प्रथम शताब्दी में आचार्य पुष्पदन्त एवं आचार्य भूतबली मुनिराज द्वारा रचित सिद्धांत ग्रन्थ षट्खण्डागम जी में मंगलाचरण के रूप में पूर्ण एवं शुद्ध णमोकार मंत्र को सर्वप्रथम लिपिबद्ध किया गया।

णमोकार मंत्र में पदादि -

यह मंत्र प्राकृत भाषा में आर्या छंद के रूप में लिखा गया है। इस मंत्र का निरन्तर स्मरण करने वाले साधक का चित्त प्रसन्नता और निर्मलता का अनुभव करता है। इसमें ५ पद, ३५ अक्षर तथा ५८ मात्राएँ हैं।

संसार परिभ्रमण का कारण

हमने अनंतकाल तक अनंत पदार्थों की चर्चा की उन्हीं का परिचय प्राप्त किया पर उस सच्चिदानंद आत्मा की न चर्चा की और न उस आत्मतत्त्व का चिंतन ही नहीं किया जिससे अनंत पदार्थों में हमारी गहरी आसक्ति रही, उन्हीं से जुड़ते व टूटते रहे और अपने अनंत वैभव से युक्त आत्मा को भूल गए। पर पदार्थों में ही सुख का अन्वेषण करते रहे।

'सकलज्ञेय ज्ञायक' विनती में भी जीव की ६ भूल का दिग्दर्शन करते हुए प्रथम भूल यही बताई कि जीव अपने को भूलकर संसार में परिभ्रमण करता रहा।

णमोकार मंत्र की महिमा -

इस मंत्र के स्मरण और चिन्तन-मनन से समस्त बाधाएं दूर हो जाती हैं।मरणोन्मुख कुत्ते को जीवन्धर कुमार ने णमोकार मंत्र सुनाया था, जिसके प्रभाव से वह पाप पङ्क से लिप्त श्वान मरणोपरान्त स्वर्ग में देव हो गया था। अत: सिद्ध है कि यह मंत्र आत्म विशुद्धि का बहुत बड़ा कारण है।

णमोकार मंत्र और जाप -

जो मन को एकाग्र, शांत कर दे अर्थात मंत्रित, नियन्त्रित कर दे उसे मन्त्र कहते हैं।

मन को एकाग्र करने हेतु यथा - तथानुपूर्वी मन्त्र का जाप, पाठ कर सकते हैं जैसे णमो आइरियाणं से शुरू करना इत्यादि। यह मन्त्र १८४३२ प्रकार से बोला जा सकता है। मन्त्र को पवित्र अथवा अपवित्र किसी भी दशा में पढ़ सकते हैं। विशेष इतना है कि पवित्र द्रव्य, क्षेत्र, काल में ही मुख से उच्चारण करें अन्यथा मन में ही मनन, चिन्तन करना चाहिए।

णमोकार मंत्र के जाप की विधियाँ

१. बैखरी - उच्चारण पूर्वक लय से णमोकार मन्त्र का शुद्ध पाठ/ उच्चारण करना।

२. उपांशु - उच्चारण जिसमें ओष्ठ एवं जिह्वा हिलती है मगर आवाज बाहर नहीं आती।

३. पश्य - मन ही मन णमोकार मंत्र का जाप जिसमें न ओष्ठ हिलते हैं और न ही जिह्वा।

४. परा - णमोकार मन्त्र के जाप में पञ्च परमेष्ठियों के मूलगुण एवं स्वरूप में काय का ममत्व छोड़कर लीन हो जाना।

णमोकार मंत्र और जाप

जाप पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर मुख करके खड्गासन, पद्मासन, सुखासन अथवा अर्धपद्मासन में स्थित होकर देना चाहिए।

आचार्य श्री ने मूकमाटी में नौ की संख्या को अक्षय स्वभाव वाली, अजर, अमर, अविनाशी, आत्म तत्त्व की उद्बोधिनी माना है। नौ के अंक की यह विशेषता है कि इसमें २, ३ आदि संख्याओं का गुणा करने तथा गुणनफल को जोड़ने पर नौ (९) ही शेष बचता है। जैसे -

९ × २ = १८   १+८ = ९

९ × ३ = २७   २+७ = ९

९ × ९ = ८१   ८+१ = ९

अत: कम से कम नौ बार णमोकार मन्त्र का जाप अवश्य करना चाहिए।

णमोकार मंत्र को तीन श्वासोच्छवास में पढ़ना चाहिए। पहली श्वास (ग्रहण करते समय में णमो अरिहंताणं, उच्छवास (छोड़ते समय) में णमो सिद्धाणं, दूसरी श्वास में णमो आइरियाणं उच्छवास में णमो उवज्झायाणं और तीसरी श्वास में णमो लोए और उच्छवास में सव्व साहूणं बोलना चाहिए। १०८ बार के जाप में कुल ३२४ श्वासोच्छवास होते हैं।

णमोकार के पदों का ध्यान क्रमश: सफेद, लाल, पीला, नीला और काले रंग में करना चाहिए अर्थात श्वांस की तूलिका से शून्य की (आकाश की) पाटी पर क्रमश: इन रंगो से पाँच पदों को लिखते जाएँ। ये रंग क्रमश: ज्ञान, दर्शन, विशुद्धि, आनन्द और शक्ति के केन्द्र माने गए हैं।

णमोकार मय मेरा जीवन बना दो।
चरणों की रज से मेरा मन सजा दो।।
मैं हूँ फूल छोटा तुम्हारे चमन का।
कहीं हर न ले जाए झोंका पवन का।।
चरणों की छाया में मुझको बिठा लो।
अरिहंत निज गाँव मुझको बुला लो।।
णमोकार मय ....

रहें देह में पर विदेही बने हों।
बंधन में रहकर भी बंध न सके हों।।
मैं बंधता रहा झूठे जग बंधनों में।
निराकार मुझको स्वयं में मिला लो।।
णमोकार मय ....

गहन तम है छाया जो विषयों में भूले।
कहाँ खो गया क्षण जो आतम को छू ले।।
हो सूरज धरा के उजाले दिखा दो।
हे आचार्य! मेरे दु:खों से बचा लो।।
णमोकार मय ....

अज्ञानता से भरी मेरी गागर।
तुम ज्ञान के वो असीमित हो सागर।।
आगम का अमृत हमें भी पिला दो।
उपाध्याय गुरुवर सत् पथ दिखा दो।।
णमोकार मय ....

हृदय के कमल में हे साधु विराजो।
आतम के अनुभव से परिचय करा दो।।
नमन है मेरा जग के सब साधुओं को।
नमन है नमन है नमनमय बना दो।।
णमोकार मय ....

२.ब सृष्टि का सनातन धर्म- जैन धर्म

जिन शब्द का विश्लेषण

'जिन' के द्वारा कहा गया धर्म अर्थात् जिन ने जिस धर्म का कथन किया, उपदेश दिया वह धर्म है, जैन धर्म। 'जिन' ईश्वरीय अवतार नहीं होते, वे स्वयं अपने पौरुष के बल पर स्वयं के काम - क्रोधादि विकारों को जीतकर जिन बनते हैं, 'जिन' शब्द का अर्थ होता है जीतने वाला। जो जिन बनते हैं, वे हम प्राणियों में से ही बनते हैं। प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा बन सकता हैं जैसे दूध में घी शक्ति के रूप में विद्यमान हैं उसी प्रकार आत्मा में 'जिन' बनने की शक्ति विद्यमान है। विशेष साधना के बल से कर्मों को आत्मा से पृथक कर सभी जीव भगवान बन सकते हैं।

जैन धर्म और तीर्थंकर -

जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और आगे भी अनंतकाल तक चलेगा। यह धर्म किसी विशेष महापुरुष के द्वारा प्रवर्तित धर्म नहीं हैं अत: भगवान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक मानना ठीक नहीं है। समय-समय पर आत्म साधना के द्वारा जिन्होंने जिनत्व को प्राप्त किया है ऐसे सर्वज्ञ भगवान द्वारा जिन धर्म का उपदेश दिया जाता रहा है।

उसी परम्परा के प्रत्येक काल में चौबीस - चौबीस तीर्थंकर एवं अनेक केवली भगवान द्वारा जिन धर्म को आगे बढ़ाया गया। भगवान महावीर इस युग के चौबीसवें तीर्थंकर थे। इन्होंने जिन धर्म की स्थापना नहीं की अपितु जिन धर्म का प्रवर्तन किया, उसके सिद्धान्तों से जन- जन को परिचित कराया।

जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त -

१. अहिंसा, २. प्राणी स्वातन्त्र्य, ३. ईश्वर कर्त्ता नहीं,
४. अवतार वाद नहीं, ५. अनेकान्त और स्याद्वाद, ६. अपरिग्रहवाद।

अहिंसा -

सृष्टि के सभी प्राणी हमारे जैसे सुख-दु:ख का वेदन करने वाले हैं, वे दु:खों से बचना चाहते हैं और सुख पाना चाहते हैं। अत: किसी भी प्राणी को मन वचन और काय से कष्ट नहीं पहुचाना ही श्रेष्ठ अहिंसा है।

अहिंसा शब्द हिंसा के अभाव को प्रदर्शित करता है। अत: हम हिंसा को समझ लें, द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा के भेद से हिंसा दो प्रकार की है। अपने परिणामों में दूसरों को कष्ट पहुँचाने, मारने का भाव होना, क्रोधादि कषाय की तीव्रता होना भाव हिंसा है। भाव हिंसा होने पर अन्य का घात होना, पीड़ा पहुँचना द्रव्य हिंसा है।

हिंसा के चार भेद कहे हैं :-

१. संकल्पी हिंसा २. आरंभी हिंसा
३. उद्योगी हिंसा ४. विरोधी हिंसा

''...जीवन का आस्था से वास्ता होने पर रास्ता स्वयं, शास्ता हो कर सम्बोधित करता साधक को साथी बन, साथ देता है।''

''मैं अमुक जीव को मारूँगा'' ऐसा संकल्प करना संकल्पी हिंसा है। गृहस्थी संबंधी कार्यों में होने वाली हिंसा आरंभी हिंसा है। व्यापार, खेती आदि कार्यो में होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। अपने देश, धर्म, परिवार की रक्षा के उद्देश्य से हुई हिंसा विरोधी हिंसा है। हिंसा कर्म का त्याग ही अहिंसा धर्म है। अहिंसा कायरता नहीं, अपितु मानव में मानवता को प्रतिष्ठित करने का अनुष्ठान है।

प्राणी स्वातंत्र्य -

इस सृष्टि में रहने वाले प्रत्येक प्राणी में/आत्मा में भगवान/परमात्मा बनने की क्षमता है, चाहे वह एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिक अथवा वनस्पतिकायिक आदि जीव ही क्यों न हो। जैसे कि स्वर्ण प्राप्ति हेतु (भूगर्भ से) उसके ऊपर पड़ी मिट्टी को हटाना(खोदना) पड़ता है, उसी प्रकार आत्मा पर पड़े कर्म रूप आवरण को हटाने पर परमात्मा दशा प्राप्त हो सकती है।

ईश्वर अकर्तृत्व -

इस सृष्टि को, सृष्टि में रहने वाले प्राणियों को, पर्वतों को, नदियों को करने वाला (बनाने वाला) कोई ईश्वर या ब्रह्मा नहीं है। यदि यह कहा जाए कि इन्हें ईश्वर ने बनाया तो फिर ईश्वर को किसने बनाया यह प्रश्न उठेगा। जिसका समाधान नहीं हैं, अत: यह सृष्टि और उसमें रहने वाले प्राणी सभी अनादि काल से हैं तथा भविष्य में अनंतकाल तक रहेंगे, इनका कोई स्रष्टा व विध्वंसक ईश्वर नहीं है।

प्राणियों की सुखी-दु:खी, अमीर-गरीब, जीवन-मरण, रोगी-निरोगी इत्यादि विभिन्न दशाओं को करने वाला कोई ईश्वर नहीं है वह तो उदासीन रूप से सब पदार्थों को जानने-देखने वाला मात्र है।

प्राणी जैसा अच्छा या बुरा कार्य/कर्म करता हैं उसी के अनुसार पुण्य, पाप कर्म प्रकृतियों का बंध होता है उन बंधी हुई कर्म प्रकृतियों के उदय आने पर सुख-दुख, जीवन-मरण आदि जीव की विभिन्न दशाएं होती हैं।

अवतारवाद नहीं -

भगवान धरती पर पुन: जन्म नहीं लेते। जिन्होंने कर्म रूपी शत्रुओं को जीतकर भगवत् दशा प्राप्त की है ऐसे जीव पुन: धरती के प्राणियों के उद्धार, कल्याण हेतु धरती पर जन्म नहीं लेते। जैसे दूध से घी बन जाने पर पुन: दूध रूप में परिवर्तन संभव नहीं हो सकता वैसे ही कर्म बंध के कारणों का अभाव होने पर भगवान का पुन: मनुष्य बनना संभव नहीं। पूर्व भव में जिन्होंने विशेष पुण्य किया था ऐसे संसारी जीव ही महापुरुष के रूप में धरती पर जन्म लेकर तीन लोक के जीवों का उपकार करते हैं जैसे तीर्थंकर ऋषभदेव, तीर्थंकर महावीर, बलभद्रश्रीराम, कामदेव हनुमान, चक्रवर्ती भरत, नारायण श्री कृष्ण आदि।

अनेकान्त और स्याद्वाद -

एक ही वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक गुणधर्म पाए जाते हैं जैसे वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है, एक भी अनेक भी, सत् भी असत् भी आदि। इस बात को स्वीकारना अनेकान्त है। अत: वस्तु अनेकान्त रूप है।

अनेकान्तात्मक वस्तु के स्वरूप को कथन करने वाली शैली स्याद्वाद कहलाती है। इसका अर्थ कथंचित् किसी दृष्टि से, किसी अपेक्षा से वस्तु के स्वरूप का कथन करना जैसे वस्तु कथंचित् नित्य है कथंचित् अनित्य है।

अपरिग्रहवाद -

परिग्रह का अभाव (त्याग) सो अपरिग्रह है। मूर्च्छा भाव, आसक्ति भाव, पर पदार्थों का ममत्व मूलक संग्रह करना परिग्रह कहलाता है।

खेत, मकान, सोना, चाँदी, गाय आदि धन, गेहूँ आदि धान्य, दासी-दास, वस्त्रादि कुप्य और बर्तनादि भांड की अपेक्षा से परिग्रह के दस भेद कहे हैं। परिग्रह ही दु:ख का मूल स्रोत/कारण है। अत: दु:ख से बचने हेतु परिग्रह का त्याग करना चाहिए। इस ही का नाम अपरिग्रहवाद हैं। अपरिग्रहवाद ही सुख प्राप्ति का अचूक साधन है।

विशेष ध्यान रखने योग्य -

जैन धर्म हिन्दू धर्म नहीं है और ना ही हिन्दू धर्म की शाखा है। जैन धर्म एक स्वतंत्र धर्म है एवं सबसे प्राचीन धर्म है। जैनधर्म और हिन्दूधर्म में मूलभूत अंतर निम्न हैं -

जैन धर्म	हिन्दू धर्म
१. जिनेन्द्र द्वारा उपदिष्ट द्वादशांग रूपी श्रुतज्ञान ही प्रमाण भूत, सत्य हैं।	१. वेद, स्मृतिग्रन्थ, ब्राह्मणों के अन्य प्रमाण भूत एवं अपौरुषेय ग्रंथ प्रमाण हैं।
२. धार्मिक तत्त्व और सारणी स्पष्ट और निश्चित हैं।	२. परस्पर विरोधी अनेक सिद्धान्त हैं।
३. यह जगत् अनादि अनिधन है इसका कोई स्रष्टा नहीं है।	३. जगत का स्रष्टा ईश्वर हैं और यह जगत नष्ट भी हो जाता हैं।
४. प्रत्येक काल में (उ.अ.) में तीर्थंकर होते हैं, वे सत्य धर्म का उपदेश देते हैं।	४. सनातन धर्म ईश्वर की प्रेरणा से बह्मा ने प्रकट किया है।

५. मनुष्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकता है देवता नहीं।
६. कर्म सूक्ष्म पौद्‌गलिक तत्त्व हैं जो आत्मा के साथ बंधते हैं एवं स्वयं फल देते हैं।
७. मुक्त जीव लोक के अग्रभाग पर स्थित रहते हैं।
८. अवतारवाद नहीं मानते हैं।
९. अपने शुभ कर्मों से सुख मिलता है।

५. देवता मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं।
६. कर्म एक अदृष्ट सत्ता है, जो ईश्वर के इशारे पर फल देता है।
७. मुक्त जीव बैकुण्ठ में अनंत काल तक सुख भोगता हैं।
८. अवतारवाद मानते हैं।
९. ईश्वर की कृपा से सुख मिलता है।

● हमारी मानसिक शक्तियाँ हमारे आत्मविश्वास और धैर्य पर अवलम्बित रहती हैं।
● हारना, लेकिन हार न मानना ही जिन्दगी का दूसरा नाम है।

जैन धर्म भारत का प्राचीन धर्म है, कुछ प्रमुख बिन्दु

१. मोहन जोदड़ों की खुदाई से प्राप्त मुहर पर भगवान ऋषभदेव का चिह्न अंकित है। यह सभ्यता ५००० वर्ष प्राचीन है।
२. हड़प्पा की खुदाई में एक नग्न मानव धड़ मिला है। नग्न मुद्रा कायोत्सर्ग मुद्रा है यह जैन मूर्ति है। यह सभ्यता भी लगभग ५००० वर्ष प्राचीन है।
३. कलिंगाधिपति सम्राट खारबेल द्वारा उदयगिरी खंडगिरी के हाथी गुफा में लिखाए गए लेख का प्रारंभ ''णमो अरहंतानं, णमो सव्व सिद्धानं'' से किया गया है। यह राजवंश ईसा से ४५० वर्ष पूर्व तक था।
४. मथुरा के कंकाली टीले में महत्त्वपूर्ण जैन पुरातत्व, ११० शिलालेख, एवं अन्य अनेक सामग्री प्राप्त हुई है जो जैन धर्म की प्राचीनता के अकाट्य प्रमाण उपस्थित करती है। इसका निर्माण ईसा के पूर्व ८०० वर्ष का माना जाता है।
५. वैदिक साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर ऋषभदेव का, वातरशना केशी आदि मुनियों का वर्णन मिलता है। इन मुनियों का संबंध जैन श्रमणों से ही है। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में प्रयुक्त ''अर्हन्'' शब्द भी जैन संस्कृति के पुरातन होने का परिचय देता है।
6. वेदों के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत, मार्कण्डेय पुराण, कूर्म पुराण, वायु पुराण, अग्नि पुराण, ब्रह्मांड पुराण, बराह पुराण, विष्णु पुराण, स्कंध पुराण एवं बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद, मंजुश्री मूलकल्प, न्याय बिन्दु, धर्मोत्तर प्रदीप में भी ऋषभदेव की स्तुति के साथ उनके परिजन एवं जीवन की घटनाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है।

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी॥ टेक॥
मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा पराया भासा, हो भानु के समानी॥ 1॥
षट् द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी॥ 2॥
रिपु चार मेरे मग में, जंजीर डाले पग में।
ठाडे हैं मोक्ष मग में, तकरार मोसों ठानी॥ 3॥
दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहीं जग में तेला सानी ॥ 4॥

मेरे गुरुवर के लिए

गुरु ने जहाँ - जहाँ भी जोत जलाई है।
काले - काले बादलों में रोशनी-सी छाई है।
अखियों को खोल जरा ज्ञान के उजाले में।
रख विश्वास पूरा जग रखवाले में।
कितनी ही बार मैंने तुझे समझाई है।
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी .... ।
मुक्ति के बंधनों को बाँध पक्की डोर से,
आंधियाँ चलेंगी इन सब पर बड़ी जोर से।
क्योंकि इस रास्ते पर बड़ी कठिनाई है,
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ...
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
एक बार सोच ले तू जीवन के अंधियारे में,
गुरु ही सहारा है इस जीवन के चौराहे में,
कितनी ही बार मैंने ठोकरें तो खाई हैं,
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
तन मन में वैराग्य जिन के समाया है
शाश्वत सुख पाने छोड़ी जग माया है,
निर्मोही गुरुवर पर जनता रिझाई है
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....
संकटों से भरा गुरु मुक्ति पथ हमारा है
बीच भँवर में नैया तू ही तो सहारा है,
हँसी-खुशी आगे बढ़ो गुरु ने सिखाई है
गुरु के सिवा हर चीज पराई है ....
गुरु ने जहाँ-जहाँ भी ....

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की स्तुति

(मुनि नियमसागर)

विद्यासागर-विश्व-वन्द्य- श्रमणं, भक्त्या सदा संस्तुवे।
सर्वोच्चं यमिनं विनम्य परमं, सर्वार्थसिद्धिप्रदम्।।
ज्ञानध्यानतपोभिरक्त- मुनिपं, विश्वस्य विश्वाश्रियं।
साकारं श्रमणं विशाल-हृदयं, सत्यं शिवं सुन्दरम्।।

अर्थः (विद्यासागर-विश्व-वन्द्य-श्रमणं) जो परमागम ज्ञान के ज्ञाता होने से ज्ञान के सागर हैं व विद्या के सागर होने से विश्ववंदनीय हैं तथा जो रत्नत्रय की साधना में श्रम करने वाले होने से श्रमण हैं। (परमं यमिनं) संयम में सर्वश्रेष्ठता होने से (सर्वोच्चं) सर्वोच्च हैं, (सर्वार्थसिद्धिप्रदं) परमार्थादि अर्थ सिद्धि के जो प्रदाता हैं अर्थात् रत्नत्रय के दाता हैं। (ज्ञानध्यानतपोभिरक्त) जो स्वयं ज्ञान में अर्थात् परमागम के श्रुताभ्यास में शुद्धोपयोग रूप आत्मा के ध्यान में, तप में अर्थात् अंतरंग व बहिरंग रूप बारह प्रकार से तपाराधना में तल्लीन रहते हैं व मुनि संघ के अधिनायक होकर मुनियों के आगमानुसार परिपालक हैं। (विश्वस्य विश्वाश्रियं) तथा जो विश्व अर्थात् लोक में रहकर लोक के आश्रय स्वरूप उपकारी गुरु हैं। (साकारं श्रमणं) रत्नत्रयादि समस्त परमार्थ के श्रेष्ठतम गुणों की साधना में सदा श्रमशील होने से साक्षात् श्रमण हैं। (विशालहृदयं) अध्यात्म तत्त्व के पारगामी होने से जो सदा विशाल हृदयी हैं। (सत्यं साकारं) इन सकल गुणों के आचरण करने वाले होने से साक्षात् सत्य के मूर्तिस्वरूप हैं। (शिवं साकारं) इस प्रकार साक्षात् सत्य की मूर्तिस्वरूप होने से जो स्वयं कल्याण के मूर्तिस्वरूप हैं। (सुन्दरम् साकारं) सत्य व शिव (आत्मकल्याण) इन दोनों का जिनमें एक साथ सद्भाव होने से बाह्य एवं अभ्यंतर सुन्दरता के मूर्ति रूप हैं, (विश्व-वन्द्य-श्रमणं) विश्ववन्द्य श्रमणस्वरूप आचार्य परमेष्ठी श्री विद्यासागर जी महाराज को (भक्त्या सदा) मैं हमेशा भक्ति (सिद्ध-श्रुत-आचार्य) के साथ (विनम्य)नमस्कार करके(संस्तुवे) उनके समस्त सद्गुणों का गुणोत्कीर्तन करता हूँ अर्थात् मैं रोमांचित होकर उनके उन सद्गुणों की स्तुति करता हूँ।

शिवभूति मुनिराज

किसी ग्राम में संसार, शरीर, भोगों से भयभीत एक शिवभूति नाम का पुरुष रहा करता था। नगर के निकट ही मुनि संघ को आया सुन वह उनके दर्शनार्थ पहुँचा। दर्शन के पश्चात् उसने आचार्य श्री से दुःखों से मुक्ति का उपाय पूछा- तब आचार्य श्री बोले हे भव्य प्राणी यदि तुम दुःखों से मुक्त होना चाहते हो तो श्रमणत्व / मुनित्व को अंगीकार करो। परम वैराग्य युक्त हो उसने मुनि दीक्षा ग्रहण की।

ज्ञान का क्षयोपशम कम होने के कारण गुरु जो भी पढ़ाते थे वह शीघ्र ही भूल जाते थे। अतः गुरु ने तुष मास भिन्नं इन अक्षरों का ही पाठ करने का उपदेश दिया। जिसे वे शिवभूति मुनिराज दिन-रात रटते थे। वे आत्मा को शरीर तथा कर्मों के समूह से भिन्न जानते। किन्तु शब्द ज्ञान उनके पास नहीं था। एक दिवस वे आहारचर्या को निकले किन्तु रास्ते में गुरु वाक्य भूल गए तथा देखा कि एक महिला दाल रूप परिणत उड़दों को पानी में डुबा कर तुसों (छिलकों) को पृथक् कर रही है। देखकर उन्होंने पूछा आप यह क्या कर रही हों? उन्होंने बताया मैं दाल और छिलकों को पृथक् कर रही हूँ क्योंकि दाल पृथक् है और छिलका पृथक् है। इतना सुनते ही बोध हो गया। इसी प्रकार मेरी आत्मा पृथक् है और शरीर पृथक् है। वे वापस अपने स्थान में लौट आए और आत्मध्यान में लीन हो गए। कुछ ही क्षणों में उन्हें केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। गुरु से पहले ही भावों की निर्मलता से शिष्य ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। केवलज्ञानी हो अनेक भव्य जीवों को धर्म का उपदेश प्रदान कर मोक्ष चले गए।

सारांश : चारित्र के प्रति सच्ची आस्था होने पर निश्चित सुख की उपलब्धि होती है। भले ही ज्ञान कम हो। आचार्य श्री कहते हैं - चारित्र में निर्मलता होने पर ज्ञान स्वयमेव प्रकट हो जाता है।

।। दर्शन पाठ ।।

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम्।। १।।

अर्थ : (देव देवस्य) देवों के भी देव देवाधिदेव का **(दर्शनं)** दर्शन/अवलोकन **(पाप-नाशनम्)** पापों का नाश करने वाला, **(दर्शनं)** दर्शन **(स्वर्ग-सोपानं)** स्वर्ग की सीढ़ी और **(दर्शनं)** दर्शन **(मोक्ष-साधनम्)** मोक्ष का साधन है।

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।। २।।

अर्थ : (जिनेन्द्राणां) जिनेन्द्रदेव के **(दर्शनेन)** दर्शन से **(च)** और **(साधूनां)** साधुओं की **(वन्दनेन)** वंदना से **(पापं)** पाप **(चिरं)** अधिक समय तक **(छिद्रहस्ते)** छिद्र सहित हाथों में **(उदकम्)** जल ज्यादा देर तक नहीं ठहरता अर्थात् नष्ट हो जाता है।

वीतराग-मुखं दृष्ट्वा, पद्म-राग-समप्रभम्।
जन्म-जन्म-कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति।। ३।।

अर्थ : (पद्मरागसमप्रभम्) पद्मराग मणि के समान प्रभायुक्त **(वीतराग मुखं)** वीतराग भगवान् के मुख को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(जन्म-जन्मकृतं)** जन्म-जन्मान्तर में किए **(पापं)** पाप **(दर्शनेन)** दर्शन करने से **(विनश्यति)** नष्ट हो जाते हैं।

दर्शनं जिनसूर्यस्य, संसारध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चित्तपद्मस्य, समस्तार्थ-प्रकाशनम्।। ४।।

अर्थ : (जिनसूर्यस्य) जिनेन्द्ररूपी सूर्य का **(दर्शनं)** दर्शन **(संसारध्वान्त-नाशनम्)** संसार सम्बन्धी अंधकार का नाश करने वाला, **(चित्तपद्मस्य बोधनं)** मनरूपी कमल का विकासक तथा **(समस्तार्थप्रकाशनम्)** समस्त पदार्थों का प्रकाशक है।

दर्शनं जिनचन्द्रस्य, सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्मदाह-विनाशाय, वर्धनं सुखवारिधेः।।५।।

अर्थ : (जिनचन्द्रस्य) जिनेन्द्ररूपी चन्द्रमा का **(दर्शनं)** दर्शन **(जन्मदाह-विनाशाय)** जन्मरूपी ताप को नाश करने के लिए **(सुखवारिधेः)** सुखरूपी समुद्र की **(वर्धनम्)** वृद्धि करने वाला और **(सद्धर्मामृतवर्षणम्)** समीचीन-धर्मरूपी अमृत की वर्षा करने वाला है।

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय, सम्यक्त्वमुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय।। ६।।

अर्थ : (जीवादितत्त्व-प्रतिपादकाय) जीवादि सात तत्त्वों के प्रतिपादक **(सम्यक्त्वमुख्याष्टगुणार्णवाय)** सम्यक्त्वादि आठ मुख्य गुणों के समुद्र **(प्रशान्तरूपाय)** प्रशान्तरूप **(दिगम्बराय)** दिगम्बर **(देवाधिदेवाय)** देवाधि अर्हन्त प्रभु **(जिनाय)** जिनेन्द्रदेव के लिए **(नमः)** नमस्कार हो।

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः।।७।।

अर्थ : (चिदानन्दैक-रूपाय) आत्मानन्द स्वरूप **(जिनाय)** कर्मों को जीतने, वाले जिनेन्द्र **(परमात्मन)** उत्कृष्ट आत्मा **(परमात्म प्रकाशाय)** परम आत्म तत्त्व के प्रकाशक **(सिद्धात्मने)** सिद्ध आत्मा के लिए **(नित्यं)** हमेशा **(नमः)** नमस्कार हो।

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर!।।८।।

अर्थ : (अन्यथा) आपके सिवाय अन्य कोई **(शरणं नास्ति)** शरण नहीं है **(त्वम् एव)** आप ही **(मम शरणं)** मेरे लिए शरण हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(कारुण्यभावेन)** दया भाव से **(मम रक्ष रक्ष जिनेश्वर)** हे जिनेन्द्र देव! मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो।

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति।।९।।

अर्थ : (जगत्त्रये) तीन लोक में **(वीतरागत्परः देवः)** वीतराग अर्हन्त देव के सिवाय और कोई **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न हि त्राता)** रक्षा करने वाला नहीं है **(न भूतो)** न भूतकाल में हुआ **(न भविष्यति)** और न आगे होगा।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्दिने दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।।१०।।

अर्थ : (दिने दिने भवे भव) प्रतिदिन भव-भव में **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे **(मे जिने भक्तिः)** मेरी जिनेन्द्र भगवान् में भक्ति **(सदा मेऽस्तु)** सदा होवे।

जिनधर्मविनिर्मुक्तो, मा भवेच्-चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानुवासितः।।११।।

अर्थ : (जिनधर्म-विनिर्मुक्तः) जिनधर्म से रहित **(चक्रवर्त्यपि)** चक्रवर्ती भी **(मा भवेत्)** नहीं होऊँ **(स्यात् चेटोऽपि)** भले ही दास भी हो जाऊँ **(दरिद्रोऽपि)** दरिद्र/गरीब भी हो जाऊँ, किन्तु मेरा जीवन **(जिनधर्मानु-वासितः)** जिनधर्म से सुवासित हो।

जन्म-जन्मकृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगो, हन्यते जिनदर्शनात्।।१२।।

अर्थ : (जिनदर्शनात्) जिनेन्द्र भगवान् का दर्शन **(जन्म-जन्म कृतम्)** जन्म-जन्मान्तर में किए गए **(जन्मकोटि-मुपार्जितम्)** करोड़ों जन्मों में उपार्जित **(पापम्)** पाप और **(जन्म-मृत्यु-जरारोग)** जन्म-मरण-बुढ़ापारूपी रोग को **(हन्यते)** नष्ट करता है।

अद्याभवत् सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणः।।१३।।

अर्थ : (देव!) हे जिनदेव! **(त्वदीय)** आपके **(चरणाम्बुजवीक्षणेन)** चरण कमल के देखने से **(अद्य)** आज **(मे नयनद्वयस्य)** मेरे दोनों नयन की **(सफलता अभवत्)** सफलता हुई **(त्रिलोक-तिलक)** हे तीन लोक के तिलक स्वरूप! **(अद्य मे)** आज मेरा **(अयं)** यह **(संसारवारिधिः)** संसाररूपी समुद्र **(चुलुकप्रमाणः)** चुल्लू प्रमाण **(प्रतिभासते)** लगता है/प्रतिभासित होता है।

शिक्षाप्रद दोहावली

सागर का जल क्षार क्यों, सरिता मीठी सार।
बिन श्रम संग्रह अरुचि है, रुचिकर श्रम उपकार ॥ 1 ॥
उन्नत बनने नत बनो, लघु से राघव होय।
कर्ण बिना भी धर्म से, विजयी पाण्डव होय ॥ 2 ॥
नहीं सर्वथा व्यर्थ है, गिरना ही परमार्थ।
देख गिरे को हम जगे, सही करे पुरुषार्थ ॥ 3 ॥
कौरव रव-रव में गए, पाण्डव क्यों शिवधाम।
स्वार्थ और परमार्थ का, और कौन परिणाम ॥ 4 ॥
भूल नहीं पर भूलना, शिवपथ में वरदान।
भूल नदी गिरि को करे, सागर का संधान ॥ 5 ॥
दूर दुराशय से रहो, सदा सदाशय पूर।
आश्रय दो धन अभय दो, आश्रय से जो दूर ॥ 6 ॥
सूरज दूरज हो भले, भरी गगन में धूल।
पर सर में नीरज खिले, धीरज हो भरपूर ॥ 7 ॥
ईश दूर पर मैं सुखी, आस्था लिए अभंग।
ससूत्र बालक खुश रहे, नभ में उड़े पतंग ॥ 8 ॥
प्रभु दर्शन फिर गुरु कृपा, तदनुसार पुरुषार्थ।
दुर्लभ जग में तीन ये, मिले सार परमार्थ ॥ 9 ॥
अन्त किसी का कब हुआ, अनंत सब हे सन्त।
पर सब मिटता सा लगे, पतझड़ पुनः वसन्त ॥ 10 ॥
ज्ञायक बन गायक नहीं, पाना है विश्राम।
लायक बन नायक नहीं, जाना है शिवधाम ॥ 11 ॥
सूक्ष्म वस्तु यदि न दिखे, उनका नहीं अभाव।
तारा राजी रात में, दिनमें नहीं दिखाव ॥ 12 ॥
लघु कंकर भी डूबता, तिरे काष्ठ स्थूल।
क्यों मत पूछो तर्क से, स्वभाव रहता दूर ॥ 13 ॥
कल्प काल से चल रहे, विकल्प ये संकल्प।
अल्प काल भी मौन ले, चलता अन्तर्जल्प ॥ 14 ॥
सुचिर काल से सो रहा, तन का करता राग।
ऊषा सम नरजन्म है, जाग सके तो जाग ॥ 15 ॥
दिन का हो या रात का, सपना सपना होय।
सपना अपना सा लगे, किन्तु न अपना होय ॥ 16 ॥
दोष रहित आचरण से, चरण पूज्य बन जाए।
चरण धूल तक सर चढ़े, मरण पूज्य बन जाये ॥ 17 ॥
एक साथ दो बैल तो, मिलकर खाते घास।
लोकतंत्र पा क्यों लड़ो, क्यों आपस में त्रास ॥ 18 ॥
बूँद-बूँद के मिलन से, जल में गति आ जाये
सरिता बन सागर मिले, सागर बूँद समाय ॥ 19 ॥

अम्मा-अम्मा

अम्मा, अम्मा मुझको, मुझको ।
एक छोटा-सा कलश दिला दो ना
कलश भरुंगा, अभिषेक करूंगा ।।१।।
अम्मा, अम्मा ...
एक छोटी-सी पुस्तक दिला दो न ।
पुस्तक पढूंगा, स्वाध्याय करूंगा ।।२।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटी-सी थाली दिला दो न
थाली सजाऊंगा, पूजा रचाऊंगा ।।३।।
अम्मा अम्मा ...
इक छोटी-सी आरती दिला दो न
आरती करूंगा, भक्ति रचूंगा ।।४।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटी-सी माला दिला दो ना
जाप करुंगा, पुण्य बढ़ाऊंगा ।।५।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटी-सी सायकिल दिला दो न
सायकिल चलाऊँगा, पाठशाला जाऊँगा ।।६।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटी-सी कटोरी दिला दो न
चन्दन रखूँगा, तिलक लगाऊँगा ।।७।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटी-सी पिच्छी दिला दो न
पिच्छी लेकर दीक्षा लूँगा, साधना करूँगा ।।८।।
अम्मा, अम्मा ...
इक छोटा-सा कमण्डलू दिला दो न
कमण्डलू भरूँगा, चर्या करूँगा ।।१०।।
अम्मा, अम्मा ...

पाठ्यक्रम - ३

३.अ | जिन-धर्म तीर्थ प्रवर्तक-तीर्थङ्कर

तीर्थंकर

तीर्थंकर का स्वरूप -

धर्म का प्रवर्तन कराने वाले महापुरुष तीर्थंकर कहलाते हैं। तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, तप, केवल ज्ञान और निर्वाण ये पाँच कल्याणक होते हैं। इन्द्रों के द्वारा किये जाने वाले महोत्सव विशेष को कल्याणक कहते हैं।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध -

तीर्थंकर बनने के संस्कार सोलह कारण रूप अत्यन्त विशुद्ध भावनाओं द्वारा उत्पन्न होते हैं, उसे तीर्थंकर प्रकृति का बंधना कहते हैं। ऐसे परिणाम केवल मनुष्य भव में और वहाँ भी किसी तीर्थंकर व केवली के पादमूल में ही होने से सम्भव हैं।

चौबीस तीर्थंकर -

चौबीस तीर्थंकरों के क्रम, नाम, चिह्न निम्नलिखित हैं :-

१.	ऋषभनाथ जी	-	बैल
२.	अजितनाथ जी	-	हाथी
३.	संभवनाथ जी	-	घोड़ा
४.	अभिनन्दन नाथ जी	-	बंदर
५.	सुमति नाथ जी	-	चकवा
६.	पद्म प्रभ जी	-	लाल कमल
७.	सुपार्श्व नाथ जी	-	साथियाँ
८.	चन्द्रप्रभ जी	-	चन्द्रमा
९.	पुष्पदंत जी	-	मगर
१०.	शीतल नाथ जी	-	कल्पवृक्ष
११.	श्रेयांस नाथ जी	-	गेंडा
१२.	वासुपूज्य जी	-	भैंसा
१३.	विमलनाथ जी	-	सूकर
१४.	अनन्तनाथ जी	-	सेही
१५.	धर्मनाथ जी	-	वज्रदण्ड
१६.	शान्तिनाथ जी	-	हिरण
१७.	कुन्थु नाथ जी	-	बकरा
१८.	अरनाथ जी	-	मत्स्य
१९.	मल्लिनाथ जी	-	कलश
२०.	मुनिसुव्रत जी	-	कछुवा
२०.	नमिनाथ जी	-	नील कमल
२२.	नेमिनाथ जी	-	शंख

पञ्च परमेष्ठी स्तवन

अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
इन्द्र, नरेन्द्र यक्ष सुर किन्नर पंडित बुधजन सारे,
भवतम भंजन शीश नमावत रक्षक तुम ही हमारे,
जब शुभ मन से ध्यावे, तब शुभ आशीष पावे,
हे सद्बुद्धि प्रदाता।।
भव दुःख बाधा हरो हमारी तुम्हे नमावत माथा,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
चारों गति में भ्रमत फिरे हैं कष्ट अनेक उठाये,
ज्ञान नयन जब खुले हमारे तब तुम दर्शन पाये,
सुख की आश लगाये, हम सब तुम ढिग आये,
जहाँ मिले सुखसाता।।
नाथ तुम्हारे दर्शन से तो मुक्ति पथ मिल जाता,
जय हे जय हे जय हे जय जय जय जय हे,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।
अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय सर्व साधु सुख दाता,
परमेष्ठी पंच सुखदाता।।

- **स्वस्थ, मस्त और प्रसन्न रहना हो तो वास्तविकता को स्वीकार करके ही जीवन बिताना चाहिए।**
- **प्रत्येक अरुचिकर प्रसंग को नजर अंदाज करके झुकते जाओ और झुक-झुक कर सबको संभालते रहो।**

सहिष्णुता ही नाश्ता, मोक्षमार्ग का, सदा साथ हो ।

अपना भाग्य, अपने साथ पर की, अपेक्षा क्यों ?

२३. पार्श्वनाथ जी - सर्प २४. महावीर जी - सिंह

● श्री वासुपूज्य, श्री मल्लिनाथ, श्री नेमिनाथ, श्री पार्श्वनाथ और श्री महावीर ये पाँच तीर्थंकर बाल ब्रह्मचारी थे अर्थात् इन्होनें विवाह नहीं कराया एवं राज-पाट भोगे बिना कुमार अवस्था में ही दीक्षा धारण की।

● एक से अधिक नाम वाले तीन तीर्थंकर हैं :-

श्री ऋषभ नाथ जी - आदिनाथ जी श्री पुष्पदन्त जी - सुविधिनाथ जी

श्री महावीर जी - वीर, अतिवीर, वर्द्धमान, सन्मति

● आदिनाथ भगवान - कैलाश पर्वत से, वासुपूज्य भगवान - चंपापुर से, नेमिनाथ भगवान - गिरनार पर्वत से, महावीर भगवान - पावापुर से व शेष बीस तीर्थंकर श्री सम्मेदशिखर जी से मोक्ष गये।

● शांतिनाथ जी, कुन्थुनाथ जी व अरनाथ जी एक साथ तीन पद तीर्थंकर, चक्रवर्ती और कामदेव पद के धारी थे।

● तीर्थंकरों के पांच वर्ण प्रसिद्ध हैं - जिसमें चन्द्रप्रभ व पुष्पदन्त जी का गौर वर्ण, मुनिसुव्रत व नेमिनाथ जी का साँवला वर्ण, सुपार्श्वनाथ एवं पार्श्वनाथ जी का हरा वर्ण, पद्मप्रभ एवं वासुपूज्य जी का लाल वर्ण तथा शेष सोलह तीर्थंकरों का स्वर्ण वर्ण था।

● मल, मूत्र आदि अशुद्ध पदार्थ तीर्थंकरों के शरीर में नहीं होते। इनके शरीर के खून का रंग दूध जैसा सफेद होता है। जिस प्रकार पुत्र के प्रति वात्सल्य भाव होने से माता के द्वारा किया हुआ भोजन का कुछ अंश दूध के रूप में परिणत हो जाता है उसी प्रकार तीर्थंकर का तीनों लोकों के प्राणियों के प्रति वात्सल्य भाव होने से उनके खून का रंग दुध के समान श्वेत होता है।

● तीर्थंकरों के दाढ़ी मूँछ नहीं होती। परन्तु सिर पर बाल होते हैं।

● तीर्थंकर स्वयं दीक्षित होते हैं, दीक्षा लेते ही उन्हें मन: पर्यय ज्ञान प्रकट हो जाता हैं।

● सभी तीर्थंकर चतुर्थकाल में ही जन्म लेते हैं एवं उसी काल में निर्वाण को प्राप्त होते हैं किन्तु हुण्डा अवसर्पिणी काल दोष से आदिनाथ भगवान तृतीय काल में ही जन्म लेकर निर्वाण को प्राप्त हुए अर्थात् मोक्ष गये।

● वृषभनाथ, वासुपूज्य और नेमिनाथ (१,१२, २२) तो पद्मासन एवं शेष सभी तीर्थङ्कर कायोत्सर्गासन (खड्गासन) से मोक्ष पधारे थे, किन्तु समवसरण में सभी तीर्थङ्कर पद्मासन से ही विराजमान होते हैं।

● जीवन भर (दीक्षा के पूर्व) देवों के द्वारा दिया गया ही भोजन एवं वस्त्राभूषण ग्रहण करते हैं। तीर्थङ्कर स्वयं दीक्षा लेते हैं।

● तीर्थङ्कर मात्र सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। अत: ''नम: सिद्धेभ्य:'' बोलते हैं।

● जब सौधर्म इन्द्र तीर्थङ्कर बालक का पाण्डुकशिला पर जन्माभिषेक करता है। उस समय तीर्थङ्कर के दाहिने पैर के अँगूठे पर जो चिह्न दिखता है, इन्द्र वही चिह्न तीर्थङ्कर का निश्चित कर देता है।

व्रत उपवास की जरूरत क्यों ?

जैसे जो गाय चरने के लिए सीधी जंगल जाती है और सीधी अपने घर वापस आ जाती है तो उसे खोड़ा लटकाने की जरूरत नहीं होती। पर जो गाय चंचल होती है इधर-उधर मुँह मारती है तो उसे खोड़ा लटकाने की जरूरत होती है।

ठीक इसी प्रकार से हमारी उपयोग रूपी गाय बहुत चंचल है वह अपने ज्ञान दर्शन के रास्ते से सीधी आती जाती नहीं, रागद्वेष कर इधर-उधर मुँह मारती है इसलिए हमें व्रत नियम, जप, तप, तीर्थवंदना, स्वाध्याय, अणुव्रत, महाव्रत आदि की आवश्यकता होती है।

कभी तो ये बाबा

कभी तो ये बाबा माँझी बन जाता है।
कभी तो ये बाबा साथी बन जाता है।।
अंगुली पकड़ मेरी चलना सिखाता है।
कर्मों से छुड़ा करके भगवन बनाता है।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।
ठोकर लगी मुझको पत्थर नुकीला था।
पर चोट न आई बाबा ने सम्हाला था।।
सुनते है तेरी रहमत दिनरात बरसती है।
एक बूँद जो मिल जाये किस्मत ही बदलती है।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।
जो ठुकरा दिया तुमने हम किससे बोलेंगे।
दर तेरे खड़े होकर छुप छुप के रो लेंगे।।
गुरुदेव की महिमा को सब मिलकर गायेंगे।
इस स्वर्ण सुअवसर को अब सफल बनायेंगे।।
तो बोलो न ... कभी तो...।।

३.ब जिनवर मुख से निकली वाणी- जिनागम

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा जो सन्मार्ग का, जीवादि तत्त्वों का उपदेश दिया जाता है वह जिनागम कहा जाता है। इसे जिन की वाणी अर्थात् जिनवाणी भी कहते हैं।

जिन हो जाने पर प्रत्येक जीव सर्वज्ञ और वीतरागी हो जाते हैं उन्हें तीन लोक में स्थित सभी चराचर, चेतन अचेतन पदार्थों का ज्ञान हो जाता है और उनके अन्दर से राग और द्वेष का पूर्ण अभाव हो जाता है। उस अवस्था में जो उपदेश दिया जाता है, वह प्रमाणिक होता है, अत: जिनेन्द्र भगवान के वचन सर्वथा सत्य एवं ग्रहण करने योग्य हैं।

पूर्वकाल में आचार्यों, मुनियों एवं श्रावकों की बुद्धि तीक्ष्ण थी, स्मरण शक्ति भी तेज थी। उन्हें एक, दो बार गुरु मुख से सुना हुआ विषय याद हो जाता था, अत: पूर्व में जिनवाणी लिपिबद्ध नहीं थी। किन्तु कालक्रम से बुद्धि का ह्रास होने से तथा जब स्मरण शक्ति कम होने लगी तब सर्वप्रथम आचार्य पुष्पदन्त-भूतबली महाराज ने षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ को ताड़-पत्र पर उत्कीर्ण किया/लिपिबद्ध किया। यही क्रम आगे भी चलता रहा अनेक आचार्य मुनियों ने गुरु परम्परा से प्राप्त जिन-वचनों को अपनी बुद्धि, शक्ति और शैली के अनुसार अनेक ग्रंथों में लिपिबद्ध किया।

जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित आगम को विषय वस्तु के भेद से समझाने हेतु चार भागों में (अनुयोगों में) विभाजित किया गया है, वे भेद प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग हैं।

- प्रथमानुयोग -

तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि तिरेसठ शलाका-पुरुषों के चारित्र निरूपक अनुयोग को प्रथमानुयोग कहते हैं।

आचार्य समन्तभद्र जी ने इसे बोधि और समाधि का निधान कहा है। प्रथमानुयोग पढ़ने से प्रशम भाव आता है, जब हमारे मन में उत्तेजना आती है, प्रतिकूलता में मन जब उद्वेलित होने लगता है तब हम पूर्वजों की बात समझकर/स्मरण कर समता धारण करते है। ''अरे मैं किस बात पर दु:खी होता हूँ रामचन्द्र जी, सीता जी के ऊपर कितने कष्ट आये, फिर भी उनकी आँखे लाल नहीं हुई फिर मैं क्यों क्रोध करूँ'' ऐसा प्रशम भाव आता है।

प्रथमानुयोग के कुछ ग्रंथ- पद्म पुराण, आदि पुराण, उत्तर पुराण, हरिवंश पुराण, पाण्डव पुराण, श्रेणिक चरित्र, प्रद्युम्न चरित्र, धन्यकुमार चारित्र आदि।

- करणानुयोग -

लोक अलोक का विभाग, युग परिवर्तन और चतुर्गति के जीवों की स्थिती के निरूपक अनुयोग को करणानुयोग कहते हैं। इस अनुयोग में अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक का सविस्तार वर्णन है। इसके विषय परोक्ष (इंद्रिय अगम्य) होने से आस्था के विषय हैं तिलोय पण्णति, त्रिलोकसार, जम्बूद्वीप पण्णति आदि ग्रंथ करणानुयोग के ग्रंथ हैं।

- चरणानुयोग -

गृहस्थ और मुनियों के चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के कारणों का वर्णन जिन ग्रंथों में पाया जाय उन्हें चरणानुयोग जानना चाहिए।

गृहस्थों का सामान्य आचार, भक्ष्याभक्ष्य विवेक, अणुव्रत, ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन, मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों का वर्णन, सल्लेखना का स्वरूप, विधी आदि का वर्णन इस अनुयोग का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय हैं।

चरणानुयोग के कुछ ग्रंथ - रत्नकरण्डक श्रावकाचार, सागारधर्मामृत अनगार धर्मामृत, मूलाचार, भगवती आराधना, श्रावक धर्म प्रदीप, मूलाचार प्रदीप आदि।

- द्रव्यानुयोग -

जिस अनुयोग में पंचास्तिकाय, जीवादि छह द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थ आदि का विस्तार से वर्णन हो उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं। समयसार, नियमसार, द्रव्यसंग्रह, समाधि-शतक, इष्टोपदेश, तत्त्वार्थ सूत्र, आलाप पद्धति आदि द्रव्यानुयोग के ग्रंथ हैं। अन्य

प्रकार से द्रव्यानुयोग को निम्न रुप में व्यवस्थित किया गया है।

द्रव्यानुयोग

आगम	आध्यात्म
सिद्धान्त–षट्खण्डागमादि	भावना–कार्तिकेयानुप्रेक्षादि
न्याय –अष्टसहस्त्री आदि	ध्यान–ज्ञानार्णव आदि

जिनवाणी पढ़ने–सुनने से निम्नलिखित लाभ हैं –

1. जिनवाणी अमृत के समान है, जिससे संसारी प्राणी का दु:ख रूपी ताप शांत हो जाता है, सहनशीलता का विकास होता हैं।
2. राग–द्वेष रुप कषाय भावों में कमी आती हैं, पूर्व में बंधे हुए अशुभ कर्मो की निर्जरा होती हैं।
3. अज्ञान का नाश एवं आनन्द (सुख) की उत्पत्ति होती हैं।4. निरवद्य स्वाध्याय करते समय पाप का बंध रुक जाता हैं।
5. सच्चे देव–शास्त्र–गुरु पर आस्था मजबूत होती हैं।6. देवों के द्वारा पूजातिशय को प्राप्त होते हैं।
7. न समझ आने पर भी श्रद्धा पूर्वक सुना हुआ जिनवचन भविष्य में केवल ज्ञान की उत्पत्ति में कारण बनता हैं।

चेतो- चेतन

चेतो चेतन निज में आओ, अंतरआत्मा बुला रही है।
जग में अपना कोई नहीं है, तू तो ज्ञानानंदमयी है
एक बार अपने में आजा, अपनी खबर क्यों भुला दयी है।।१।।
तन धन जब यह कुछ नहीं तेरा, मोह में पड़कर कहता है मेरा,
जिनवाणी को उर में धर ले, समता में तुझे सुला रही है।।२।।
निश्चय से तू सिद्ध प्रभु सम, कर्मोदय से धारे है तन,
स्याद्वाद के इस झूले में, जिनवाणी माँ झुला रही है।।३।।
मोह राग और द्वेष को छोड़ो, निज स्वभाव से नाता जोड़ो,
ब्रह्मानंद जल्दी तुम चेतो, मृत्यु पंखा डुला रही है।।४।।

पश्चाताप

स्कूल के वार्षिक समारोह में रामू को पढ़ाई, खेलकूद व अन्य गतिविधियों में श्रेष्ठ छात्र का पुरस्कार दिया जा रहा था। पुरस्कार लेने के बाद जैसे ही वह मंच से नीचे उतर का माँ के पास पहुँचा तो उसकी नजर अपने दोस्तों पर पड़ी जो उसे नफरत भरी नजरों से देख रहे थे। उसमें से कुछ दोस्त उसकी माँ पर हँस भी रहे थे। क्योंकि वह एक आँख से वंचित थी।

इस घटना के बाद से रामू के मन में भी माँ के प्रति हीन भावना पैदा हो गई। उसे लगने लगा कि हर क्षेत्र में आगे रहने के बावजूद भी लोग उसे तिरस्कार की भावना से देखते हैं। मन ही मन इसके लिए वह माँ को दोषी मानने लगा। परिणाम स्वरूप धीरे–धीरे उसके मन में माँ के प्रति एक दूरी पनप गई। समय बीतता गया और माँ से उसकी दूरियाँ बढ़ती रही। बड़े होने पर राम एक सफल व्यवसायी बन गया। उसके पास सुखी परिवार, धन, सम्पदा, सब कुछ था। गाँव तो वह कभी का छोड़ चुका था। साथ ही माँ से दूर रहने के कारण वह खुद को बचपन की उस हीन भावना से मुक्त महसूस कर रहा था।

समय गुजरता गया। एक दिन उसे गाँव के स्कूल का पत्र मिला जहाँ सभी पुराने विद्यार्थियों को एक समारोह में बुलाया गया था। स्कूल समारोह से लौटने के बाद जिज्ञासावश रामू अपने पुराने घर पहुँचा, जहाँ उसका बचपन बीता था। मकान वीरान पड़ा था। अब तक माँ की मृत्यु हो चुकी थी। घर के भीतर पुरानी चीजें टटोलते हुए अचानक उसका हाथ एक पुराने तुड़े–मुड़े कागज के टुकड़े पर पड़ा। उसने उसे गौर से देखा तो वे माँ के अक्षर थे। लिखा था– ''प्रिय बेटे रामू, मेरी एक आँख हमेशा तुम्हारी शर्मिंदगी का कारण बनी। मुझे इसका दु:ख रहा लेकिन कुछ चीजों पर किसी का नियंत्रण नहीं होता। बेटे! जब तुम बहुत छोटे थे तब एक दुर्घटना में तुम्हारी एक आँख चली गई थी। मैं तुम्हें एक आँख के साथ बड़ा होते नहीं देख सकती थी। इसलिए मैंने तुम्हें अपनी एक आँख दान कर दी थी। यह जानकर तुम परेशान मत होना, मैं जानती हूँ कि तुम आज भी मुझसे बेहद प्यार करते हो।'' यह पढ़कर रामू अवाक् खड़ा रह गया। अचानक उसे अपने जीवन में सब कुछ निरर्थक प्रतीत हो रहा था। उसकी आँखें तो खुलीं लेकिन माँ की आँखें बन्द होने के बाद।

सच है बिना विचारे जो करे सो पीछे पछताए।

३.स जैन कला तीर्थ - देवगढ़

उत्तरप्रदेश के ललितपुर जिले में स्थित देवगढ़ भारतीय संस्कृति एवं कला का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल है। लगभग ३०० फीट ऊँची पहाड़ी पर स्थित किले और उसके भीतर निर्मित जैन देवालयों एवं देवमूर्तियों की दृष्टि से देवगढ़ की मान्यता संपूर्ण भारत में एक अद्वितीय कला स्थल के रूप में है।

देवगढ में मुख्यत: पाँचवी-छठी शताब्दी से १६ वीं-१७वीं शताब्दी के बीच की भारतीय कला का अजस्र प्रवाह देखा जा सकता है। वस्तुत: देवगढ़ की जैन कला 'कला कला के लिये है' इस अवधारणा से आगे बढ़कर 'कला जीवन के लिये है' के भाव उजागर करती है॥ देवगढ़ में ४१ जैन मंदिर तथा असंख्य मूर्तियाँ अवस्थित है। इन मन्दिरों तथा मूर्तियों की प्रचुर संख्या, निर्माण की विभिन्न शैलियाँ, शिल्प के अनूठे प्रयोग, कला वैविध्य तथा इनके निर्माण की लम्बी कालावधि के कारण देवगढ जैन मूर्तिकला तथा स्थापत्य का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

देवगढ़ की जैन कला के विषय में अध्ययन के कुछ महत्वपूर्ण प्रयत्न भी हुए है, जिनमें जर्मनी के विद्वान डॉ० क्लाज ब्रुन की पुस्तक '' दि जिन इमेजेज आफ देवगढ़'' तथा डॉ भागचन्द्र भागेन्दु के *शोध-ग्रन्थ* देवगढ़ की जैन कला: एक सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय है।

देवगढ स्थित विपुल पुरासम्पदा, मन्दिर, मूर्तियॉ, बेतवा नदी, घाटियाँ एवं वन्य जन्तु विहार आदि मिलकर देवगढ़ को न केवल तीर्थ स्थल बल्कि एक सुरम्य पर्यटन स्थल भी बनाते हैं।

राजाबाई क्लॉक टावर

राजाबाई क्लॉक टावर मुम्बई विश्वविद्यालय परिसर में स्थित एक घड़ी टावर है । इस टावर की ऊँचाई २८० फुट है। इसका निर्माण २ लाख रुपये की लागत से नवम्बर १८७८ में किया गया था। यह टावर प्रेमचन्द रायचन्द ने अपनी मॉ राजाबाई के नाम से उन्ही के लिए बनवाया था। जिससे वे बिना किसी की मदद से अपने कार्य समय पर सम्पन्न कर सकें।
राजाबाई दृष्टिहीन थीं । जैन धर्म की कट्टर अनुयायी थीं । इस टावर की घंटी से उन्हें समय का पता चल जाता था, जिससे वे रात्रि होने के ४८ मिनट पूर्व ही भोजन किया करती थी ।

● **पैसा कमाने के लिये पहले शरीर को घिसना फिर शरीर स्वस्थ रखने के लिये धन लगाना अज्ञानता ही है ।**

बारह भावना

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार॥१॥
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोऊ न राखन हार॥२॥
दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।
कबहूँ ना सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥३॥
आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यो कबहूँ इस जीव का, साथी सगा न कोय॥४॥
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥५॥
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह॥६॥
मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुं ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥७॥
सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कुछ बनहिं उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥८॥
ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर॥९॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥१०॥
चौरह राजु उतुंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान॥११॥
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥१२॥
जांचे सुर-तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जांचे बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन॥१३॥

३.द श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति (प्राकृत)

श्रीपञ्चमहागुरु भक्ति (प्राकृत)

मणुय-णाइंद सुर धरिय छत्तत्तया,
पंच-कल्लाण सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं ॥1॥

अर्थ : (मणुय-णाइंद-सुर-धरिय-छत्तत्तया) मनुजेन्द्र/चक्रवर्ती, नागेन्द्र/धरणेन्द्र और सुरेन्द्रों द्वारा जिन पर तीन छत्र लगाये गये हैं तथा **(पंचकल्लाण-सोक्खावली-पत्तया)** पंचकल्याणकों के सुख समूह को प्राप्त **(ते जिणा)** वे जिनवर अरहंत भगवान् **(अम्हं)** हमारे लिये **(वरं मंगलं)** श्रेष्ठ मंगलमय **(अणंतं दंसणं णाण बलं)** अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतबल और **(झाणं)** उत्कृष्ट शुक्लध्यान को **(दिंतु)** देवें।

जेहिं झाणग्गि बाणेहिं अइ-दिड्ढयं,
जम्म जर मरण णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं ॥2॥

अर्थ : (जेहिं) जिन्होंने **(झाणग्गि-बाणेहिं)** ध्यानरूपी अग्निबाणों द्वारा **(अइ-दिड्ढयं)** अत्यन्त दृढ़ **(जम्म-जर-मरण-णयरत्तयं)** जन्म-जरा/बुढ़ापा और मरणरूपी तीनों नगरों को **(दड्ढयं)** जलाया **(जेहिं)** जिन्होंने **(सासयं सिवं)** शाश्वत शिव **(ठाणयं पत्तं)** स्थान को प्राप्त किया **(ते सिद्धा)** वे सिद्ध भगवान् **(महं)** मुझे **(वरं णाणयं)** उत्तम ज्ञान को **(दिंतु)** देवें।

पंच-हाचार पंचग्गि संसाहया,
वारसंगाइ सुअ-जलहि अवगाहया।
मोक्खलच्छी महंती महंते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं गया-संगया ॥3॥

अर्थ : (पंचहाचार-पंचग्गि-संसाहया) जो पंचाचाररूपी पंचाग्नि तपों के सम्यक् साधक **(वारसंगाई-सुअ-जलहि-अवगाहया)** द्वादशांग आदि श्रुतरूपी सागर में अवगाहन करने वाले तथा **(गयासं मोक्खं गया)** सम्पूर्ण आशाओं परिग्रहों से रहित मोक्ष को प्राप्त **(ते सूरिणों)** वे आचार्य **(महं)** मुझे **(सया)** सदा **(महंती मोक्ख-लच्छी)** महान् मोक्षलक्ष्मी को **(दिंतु)** देवें।

घोर संसार भीमाडवी- काणणे,
तिक्ख वियराल णह पाव-पंचाणणे।
णट्ठ मग्गाण जीवाण पहदेसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥4॥

अर्थ : (तिक्ख-वियराल-णह-पाव-पंचाणणे) तीक्ष्ण विकराल नख सहित पैर वाले पापरूपी सिंहों से व्याप्त **(घोर-संसार-भीमाडवी-काणणे)** घोर संसाररूपी भयंकर अटवी, बीहड़ वन में **(णट्ठ-मग्गाण)** मार्ग भूले हुए **(जीवाण)** जीवों को जो **(पह-देसिया)** मार्ग के उपदेशक/मार्गदर्शक हैं **(ते उवज्झाय)** उन उपाध्याय परमेष्ठी की **(अम्हे)** हम **(सया)** सदा **(वंदिमो)** वंदना करते हैं।

उग्ग तव चरणकरणेहिं झीणं गया,
धम्म वर झाण सुक्केक्क झाणं गया।
णिब्भरं तव सिरी ए समा लिंगया,
साहवो ते महं मोक्ख पह मग्गया ॥5॥

अर्थ : (उग्ग-तव-चरण-करणेहिं) उग्र तपश्चरण करने से **(झीणंगया)** क्षीणता को प्राप्त शरीर वाले **(धम्मवरझाणसुक्केक्क-झाणंगया)** धर्मरूप उत्तमध्यान तथा शुक्लरूप मुख्य ध्यान को प्राप्त **(तव-सिरीए)** तपरूपी लक्ष्मी से **(णिब्भरं समालिंगया)** अत्यन्त आलिंगित **(ते साहवो)** वे साधुगण **(महं)** मेरे लिए **(मोक्ख-पह-मग्गया)** मोक्षमार्ग के मार्गदर्शक/देने वाले हों।

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए,
गुरुय संसार घणवेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्धिसोक्खाइं वरमाणणं,
कुणइकम्मिंधणं पुंज पज्जालणं ॥6॥

अर्थ : (एण थोत्तेण) इस स्तोत्र के द्वारा **(जो)** जो **(पंच-गुरु)** पञ्च-गुरुओं/पञ्च-परमेष्ठियों की **(वंदए)** वंदना करता है **(सो)** वह **(गुरुय-संसार-घण-वेल्लि)** गुरु/भारी/अनन्त संसाररूपी सघन बेल को **(छिंदए)** काट डालता है और **(सो)** वह **(वरमाणणं)** उत्तम जनों के द्वारा मान्य **(सिद्धि-सोक्खाइं)** मोक्ष के सुखों को **(लहइ)** प्राप्त होता है तथा **(कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं)** कर्मरूपी ईंधन के समूह को भस्म **(कुणइ)** करता है।

अरुहा सिद्धाइरिया,
उवज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
एयाण णमोयारा,
भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥7॥

अर्थ : (अरुहा) जन्म से रहित अरहंत **(सिद्धाइरिया)** सिद्ध, आचार्य **(उवज्झाया)** उपाध्याय और **(साहु)** साधु ये **(पंच-परमेट्ठी)** पाँच परमेष्ठी हैं **(एयाण)** इनके **(णमोयारा)** नमस्कार **(मम)** मुझे **(भवे भवे)** भव-भव में **(सुहं)** सुख को **(दिंतु)** देवें।

● **दुःख समय से पहले मिले तो व्यक्ति शायद मजबूत बनके बाहर निकलता है लेकिन सुख समय से पहले मिले तो शायद वही व्यक्ति शैतान बनकर बाहर आता है ।**

गोमटेश अष्टक

नीलकमल के दल-सम जिन के युगल-सुलोचन विकसित हैं,
शशि सम मनहर सुख कर जिनका मुख-मण्डल मृदु प्रमुदित है।
चम्पक की छवि शोभा जिनकी नम्र नासिका ने जीती,
गोमटेश जिन-पाद-पद्म की पराग नित मम मति पीती।।१।।
गोल-गोल दो कपोल जिन के उजल सलिल सम छवि धारे,
ऐरावत-गज की सूण्डा सम बाहुदण्ड उज्ज्वल-प्यारे।
कन्धों पर आ, कर्ण-पाश वे नर्तन करते नन्दन है,
निरालम्ब वे नभ सम शुचि मम, गोमटेश को वन्दन है।।२।।
दर्शनीय तव मध्य भाग है गिरि-सम निश्चल अचल रहा,
दिव्य शंख भी आप कण्ठ से हार गया वह विफल रहा।
उन्नत विस्तृत हिमगिरि-सम है, स्कन्ध आपका विलस रहा,
गोमटेश प्रभु तभी सदा मम तुम पद में मन निवस रहा।।३।।
विंध्याचल पर चढ़कर खरतर तप में तत्पर हो बसते,
सकल विश्व के मुमुक्षु जन के शिखामणि तुम हो लसते।
त्रिभुवन के सब भव्य कुमुद ये खिलते तुम पूरण शशि हो,
गोमटेश तुम नमन तुम्हें हो सदा चाह बस मन वशि हो।।४।।
मृदुतम बेल लताएँ लिपटीं पग से उर तक तुम तन में,
कल्पवृक्ष हो अनल्प फल दो भवि-जन को तुम त्रिभुवन में।
तुम पद पंकज में अलि बन सुर-पति गण करता गुन-गुन है,
गोमटेश प्रभु के प्रति प्रतिपल वन्दन अर्पित तन-मन है।।५।।
अम्बर तज अम्बर-तल थित हो दिग अम्बर नहिं भीत रहे,
अम्बर आदिक विषयन से अति विरत रहे भव भीत रहे।
सर्पादिक से घिरे हुए पर अकम्प निश्चल शैल रहे,
गोमटेश स्वीकार नमन हो धुलता मन का मैल रहे।।६।।
आशा तुमको छू नहिं सकती समदर्शन के शासक हो,
जग के विषयन में वांछा नहिं दोष मूल के नाशक हो।
भरत-भ्रात में शल्य नहीं अब विगत राग हो रोष जला,
गोमटेश तुम में मम इस विध सतत राग हो होत चला।।७।।
काम-धाम से धन कंचन से सकल संग से दूर हुए,
शूर हुए मद मोह-मार कर समता से भरपूर हुए।
एक वर्ष तक एक थान थित निराहार उपवास किये,
इसीलिए बस गोमटेश जिन मम मन में अब वास किये।।८।।

दोहा

नेमीचन्द्र गुरु ने किया प्राकृत में गुणगान।
गोमटेश थुति अब किया भाषा-मय सुख खान।।१।।
गोमटेश के चरण में नत हो बारम्बार।
विद्यासागर कब बनूँ भवसागर कर पार।।२।।

कुछ नया ना,
नये तरीके से हो,
आनन्द मिले ।

जो जैसा मिला,
स्वीकारो समता से,
भला ही होगा ।

भजन .....

काया की काठी, आत्मा का घोड़ा
आत्मा पे मारा जो ज्ञान का हथौड़ा
दौड़ा दौड़ा दौड़ा दौड़ा मुनि शरण में दौड़ा
गुरुवर-गुरुवर, गुरुवर-गुरुवर

मिले गुरु ज्ञानी बोले मृदु वाणी
सत्य अहिंसा पालन कर, जीवों पर तू दया कर
सत्यम्-सत्यम्, सत्यम्-सत्यम्
काया की काठी...........।।

प्रभु देना शक्ति, करूँ तुम्हारी भक्ति
जिनमंदिर में जाऊँगा, प्रभु को शीश झुकाऊँगा
अरिहंत-अरिहंत, अरिहंत-अरिहंत
अरिहंत बोलो आत्मा, सिद्ध बोलो आत्मा
काया की काठी............।।

मुँह से निकले शब्द

एक किसान आपने पड़ौसी की बहुत निन्दा करता था किन्तु जब उसे अपनी गलती का अहसास हुआ तो वह अपने गुरु के पास प्रायश्चित हेतु गया। तब वहाँ गुरु ने उससे कहा कि वह पंखों से भरा एक थैला शहर के बीच रास्ते में बिखेर दे। यह सुनकर किसान ने वैसा ही किया। बाद में वह गुरु के पास आ गया, गुरु ने कुछ समय बाद कहा कि वे सभी पंख थैले में रखकर ले आओ।

इस पर किसान ने ऐसा करने की बहुत कोशिश की, मगर सारे पंख हवा से इधर-उधर उड़ चुके थे। जब वह खाली थैला लेकर आया और सही घटना बताई तो गुरु ने कहा कि यही बात हमारे जीवन पर भी लागू होती है। तुमने बात तो आसानी से कह दी किन्तु उसे वापस नहीं ले सकते, इसलिए शब्दों के चुनाव में सर्वाधिक सावधानी रखनी चाहिए।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखें।

१. परमेष्ठी किसे कहते हैं ? उनके नाम बताएं।
२. जिन चैत्य-चैत्यालय का स्वरूप क्या है ?
३. पिता और बेटी मुनिराज के पास क्यों गए ?
४. णमोकार मंत्र को प्रथम बार किसने, कब लिखा ?
५. प्राणि स्वातंत्र्य किसे कहते हैं ?
६. जैन धर्म एवं हिन्दु धर्म में कोई चार अंतर बताइए ?
७. शिवभूति मुनिराज को केवलज्ञान कैसे हुआ ?
८. ७वें, १० वें, १३ वें एवं १५वें तीर्थंकर का नाम व चिन्ह क्या है ?
९. प्रथमानुयोग पढ़ने से क्या-क्या लाभ हैं ?
१०. देवगढ़ तीर्थ कहाँ पर है उसकी कुछ विशेषताएँ बतायें।

ब. पक्तियों को पूर्ण लिखें-

१. अज्ञानता ------------ दिखा दो।
२. तन मन में ------------ पराई है।
३. रिपु चार मेरे ------------ ठानी।
४. जय-जय-जय जिनधर्म -------- भगा दिया।
५. निर्मलं--------------- विनाशकं।
६. भविजन ------------ करो मेरे।
७. आप -------------- ना कोय ।
८. त्रिभुवन के ---------- मन वशि हो।
९. महाश्रमण -------------- जिनवरं।
१०. ज्ञान ध्यान---------------- सुन्दरं।
११. चिदानन्दैक ----------------- नमः।
१२. णिभरं ----------------- मग्गया।

स. परिभाषाएँ लिखें-

१. साधु परमेष्ठी २. देव दर्शन ३. उपांशु ४. अहिंसा ५. स्याद्वाद ६. द्रव्यानुयोग

द. श्लोकों का अर्थ लिखिये-

१. एकान्तवादमतहरं, सुस्याद्वादकौशलं।
मुनीन्द्र-वृन्दसेवितं, नमामि शान्तिजिनवरम्।।
२. अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर!।।
३.मणु-यणा-इंद सुर धरिय छत्तत्तया,
पंच-कल्लाण सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥

'' 'ही' एकान्तवाद का समर्थक है
'भी' अनेकान्त, स्याद्वाद का प्रतीक।
हम ही सब कुछ हैं
यूँ कहता है 'ही' सदा,
तुम तो तुच्छ, कुछ नहीं हो!
और,
'भी' का कहना है कि
हम भी हैं
तुम भी हो
सब कुछ !'' (पृ. १७२)

अन्यत्र ग्रन्थों से खोजें, ज्ञान बढ़ाऐं, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. अरिहन्त भगवान का शरीर कैसा होता है ?
२. सिद्ध भगवान कहाँ रहते हैं ?
३. चत्तारि पाठ का उच्चारण कैसा है ? उसमें आचार्य उपाध्याय का नाम क्यों नहीं लिया।
४. णमोकार मंत्र में प्रत्येक पद में अक्षर, मात्राएँ कितनी हैं ? उन्हें कैसे गिना जाता है ?
५. मंगल किसे कहते हैं ? उनके अन्य पर्यायवाची नाम कौन से हैं ?
६. णमोकार मंत्र को प्रयोगशाला में किस तरह श्रेष्ठ सिद्ध किया गया ?
७. जीवन्धर कुमार, पद्मरुचि सेठ एवं अंजन चोर की कथा कैसी है ?
८. मानस्तंभ किसे कहते हैं ? उसकी क्या उपयोगिता है ?
९. तीर्थंकरों के पंचकल्याणक कैसे मनाये जाते हैं ?
१०. विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों की विशेषताएँ बताइए।
११. अ, प, श, स अक्षर से प्रारंभ होने वाले तीर्थंकरों के नाम लिखें।
१२. एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय चिन्ह वाले तीर्थंकरों के नाम लिखें।
१३. तीर्थंकर प्रभु का समवशरण कैसा होता है ? उसकी विशेषताऐं बतायें ?

''कर्तृत्व-बुद्धि से
मुड़ गया है वह
और
कर्तव्य-बुद्धि से
जुड़ गया है वह।'' (पृ. २८-२९)

पाठ्यक्रम - ४

४.अ संसार के प्रमुख पात्र : जीव - अजीव

जिसमें चेतना पाई जावें अर्थात् जो सुख-दु:ख का संवेदन करता हो उसे जीव कहते हैं। जीव ही संसार में सुख-दु:खों को भोगता है एवं जीव ही कर्मों को क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है।

जो चेतना शून्य, सुख-दु:ख के संवेदन से रहित, जड़ अज्ञानी हो उसे अजीव कहते है। हमारे आस-पास जो कुछ भी हम देखते हैं वह अजीव है जैसे पुस्तक, पेन कॉपी, कुर्सी, टेबिल, घड़ी इत्यादि।

अजीव के मुख्य रूप से पाँच भेद जैनाचार्यों ने कहे हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें से पुद्गल ही हमें देखने में आता है शेष नहीं। धर्मादि का वर्णन आगे के अध्याय में किया जावेंगा।

जीव के मुख्य रूप से दो भेद हैं -

(१) संसारी जीव

(२) मुक्त जीव

जिन्होंने ज्ञानावरणादि आठों कर्मों का क्षय (नष्ट) कर दिया है, ऐसे जीव मुक्त जीव कहलाते हैं। सिद्ध परमेष्ठी ही मुक्त जीव हैं। जिन्होंने कर्मों का क्षय नहीं किया तथा चारों गतियों में भ्रमण कर रहे हैं, उन्हें संसारी जीव कहते हैं।

आनन्द स्त्रोत, भीतर ही है खोजो, बाहर नहीं ।

शब्दार्थ जानो, भावार्थ प्रकट हो, आनन्द झरे ।

जो हुआ अच्छा , आगे भी अच्छा होगा, मन बना लो ।

कम बोलना, अधिक सुनना सो, बुद्धिमत्ता है ।

त्रस व स्थावर जीव

संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के हैं। जो कष्टों से भयभीत हो भागते हैं, चलते-फिरते हैं उन्हें त्रस जीव कहते हैं। जिनके दो से लेकर पांच तक इन्द्रियाँ होती हैं उन्हें त्रस जीव कहते हैं। उदाहरण - देव, मनुष्य, हाथी, मक्खी, चींटी, इल्ली आदि।

जो प्राय: एक ही स्थान पर रहते हैं दु:खों से भयभीत हो भाग नहीं सकते उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। इनके एकमात्र स्पर्शन इंद्रिय ही होती है। उदाहरण - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति।

संसारी जीव समनस्क और अमनस्क के भेद से भी दो प्रकार के हैं। मन सहित जीव समनस्क कहे जाते हैं इन्हें संज्ञी भी कहा जाता है। मन रहित जीव अमनस्क होते हैं। इन्हें असंज्ञी कहते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों में कुछ संज्ञी व कुछ असंज्ञी होते हैं। देव, मनुष्य व नारकी नियम से संज्ञी ही होते हैं।

आत्मा के प्रकार - बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अपेक्षा से भी जीव के तीन भेद कहे हैं। जो अपने देह व पर के देह को ही आत्मा मानता है बहिरात्मा कहलाता है। जो सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मा और देह के भेद को जानते हैं वे अन्तरात्मा है। आत्मा की शुद्ध अवस्था को प्राप्त जीव परमात्मा कहलाते हैं।

भव्य-अभव्य जीव-

जो जीव मोक्ष प्राप्त करने की अर्थात् भगवान बनने की क्षमता रखते हैं उन्हें भव्य जीव कहते हैं। पेड़-पौधे, निगोदिया जीव भी भव्य हो सकते हैं। भव्य कभी अभव्य एवं अभव्य कभी भव्य नहीं बन सकता।

जो जीव मोक्ष प्राप्त करने की क्षमता नहीं रखते उन्हें अभव्य जीव कहते हैं। महाव्रतों को धारण करने वाले मुनि भी अभव्य हो सकते हैं। अभव्य जीव मुनिव्रतों को धारण कर नवमें ग्रेवेयक (स्वर्ग) तक जन्म ले सकता है किन्तु मोक्ष नहीं जा सकता। भव्य, अभव्य पारिणामिक भाव है अत: उन्हें हम तुम नहीं जान सकते मात्र केवलज्ञानी ही जान सकते हैं कि कौन सा जीव भव्य हैं और कौन सा जीव अभव्य।

भव्य जीव भी आसन्न भव्य, दूर भव्य, दूरानुदूर भव्य की अपेक्षा से तीन प्रकार के होते हैं।

१. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया है एवं शीघ्र ही मुक्ति का लाभ प्राप्त करेंगे वे आसन्न भव्य हैं इन्हें निकट भव्य भी कहते हैं।

२. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, किन्तु भविष्य में प्राप्त करेंगे और मुक्ति का लाभ प्राप्त करेंगे वे दूर भव्य हैं।
३. जिन्होंने सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया, न ही भविष्य में प्राप्त कर पाएँगे, किन्तु क्षमता तो है, वे दूरानुदूर भव्य हैं इन्हें अभव्यसम भव्य भी कहते हैं।
संसारी जीवों में सबसे उत्कृष्ट आत्मा को, कर्म कलंक से रहित आत्मा को परमात्मा कहते है। शरीर सहित अर्हन्त तो सकल परमात्मा हैं। शरीर रहित सिद्ध निकल परमात्मा हैं।

भेद विज्ञान की ज्योति कैसे जले?

उदाहरण : जैसे सूखी माचिस होती है तो वह शीघ्र जल जाती है लेकिन वर्षा ऋतु के कारण जिस माचिस में आर्द्रता आ जाती है उसे जलाते हैं तो क्या वह शीघ्र जलती है? नहीं। बहुत देर से जलती है। जब घर्षण करते-करते उष्णता उत्पन्न हो जाती है या धूप में सुखा देते हैं, तब जल जाती है। ठीक इसी प्रकार हमारी आत्मा रूपी माचिस मोह, राग-द्वेष रूपी जल से गीली हो गई है। शीघ्र भेद विज्ञान की ज्योति जलती नहीं है। लेकिन तत्त्व चिंतन करते-करते या तत्त्वाभ्यास की धूप लगा दें तो शीघ्र ही भेद ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो जाती है। वह भेद विज्ञान पाँच प्रकार से होता है-

(१)जिनागम से (२)श्रद्धा से (३)स्वानुभव से (४)वीतराग स्वानुभव से (५)केवलज्ञान से

वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्धबुद्धं परं विश्वनाथं,
न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्त्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥१॥

अर्थ : जो (**न देवः**) न देव (**न बंधुः**) न कुटुम्बी (**न कर्मा**) न कर्म (**न कर्ता**) न कर्ता (**न अङ्गं**) न शरीर के अवयव (**न सङ्गं**) न परिग्रह (**न स्वेच्छा**) न अपनी इच्छा और (**न कायं**) न शरीररूप हैं ऐसे (**शिवं**) कल्याण स्वरूप (**शुद्धबुद्धं**) कर्मों से रहित निर्मल केवलज्ञान स्वरूप (**परं**) उत्कृष्ट और (**विश्वनाथं**) तीनों लोकों का स्वामी (**चिदानन्दरूपं**) आत्मानन्द स्वरूप (**वीतरागम् नमः**) वीतराग देव को मैं नमस्कार करता हूँ।

न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः,
न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकः।
न कोपं न मानं न माया न लोभं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥२॥

अर्थ : जो (**न बन्धो**) न बन्ध (**न मोक्षो**) न मोक्ष (**न रागादिदोषः**) न राग आदि दोष (**न योगं**) न मनादि योग (**न भोगं**) न भोग (**न व्याधिः**) न रोग (**न शोकः**) न शोक (**न कोपं**) न क्रोध (**न मानं**) न मान (**न माया**) न माया (**न लोभं**) न लोभ स्वरूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा,
न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः र्न देवो न मर्त्यः,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥३॥

अर्थ : जो (**न हस्तौ**) न हाथ (**न पादौ**) न पैर (**न घ्राणं**) न नाक (**न जिह्वा**) न जीभ (**न चक्षुः**) न नेत्र (**न कर्णं**) न कान (**न वक्त्रं**) न मुँह (**न निद्रा**) न निद्रा स्वरूप है और (**न स्वामी**) न मालिक (**न भृत्यः**) न नौकर (**न देवः**) न देवगति के देव (**न मर्त्यः**) न मनुष्य हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

न जन्म न मृत्यु र्न मोहं न चिंता,
न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥४॥

अर्थ : जो (**न जन्म**) न जन्म (**न मृत्युः**) न मरण (**न मोहं**) न मोह (**न चिंता**) न चिन्ता है (**न क्षुद्रा**) न छोटे (**न भीतो**) न भयभीत (**न कार्श्यं**) न कृश (**न तन्द्रा**) न प्रमादी (**न स्वेदं**) न पसीना (**न खेदं**) न दुःखरूप (**न वर्णं**) न रंग व (**न मुद्रा**) न चिह्नरूप हैं ऐसे (**चिदानन्दरूपं**) चैतन्य के आनन्द स्वरूप (**वीतरागम्**) वीतराग देव को मैं (**नमः**) नमस्कार करता हूँ।

त्रिदण्डे! त्रिखण्डे! हरे ! विश्वनाथं,
हृषीकेश! विध्वस्त- कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि गात्रं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥५

अर्थः (त्रिदण्डे!) हे तीन दण्ड के धारी **(त्रिखण्डे! हरे!)** तीन खण्ड के अधिपति सर्व दुःखहारी नारायण **(हृषीकेश!)** इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय आप **(विश्वनाथं)** विश्व के स्वामी **(विध्वस्त-कर्मादि-जालम्)** कर्म के समूह को नाश करने वाले **(न पुण्यं)** न पुण्यरूप **(न पापं)** न पापरूप **(च)** और **(न अक्षादि-गात्रं)** न नेत्रादि शरीर स्वरूप हैं ऐसे **चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो,
न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥६ ॥

अर्थ : जो **(न बालो)** न बालक **(न वृद्धो)** न वृद्ध **(न तुच्छो)** न हीन **(न मूढा)** न मूर्ख **(न स्वेदं)** न पसीना वाले **(न भेदं)** न भेदरूप **(न मूर्तिः)** न मूर्तिक **(न स्नेहः)** न स्नेह वाले **(न कृष्णं)** न काले **(न शुक्लं)** न गोरे **(न मोहं)** न मोही और **(न तंद्रा)** न तन्द्रारूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्यत्,
न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥७ ॥

अर्थ : जो **(न आद्यं)** न आदि **(न मध्यं)** न मध्य **(न अन्तं)** न अन्त स्वरूप **(न अन्यत्)** न दूसरे रूप **(न द्रव्यं)** न द्रव्य **(न क्षेत्रं)** न क्षेत्र **(न कालो)** न काल **(न भावः)** न भाव **(न शिष्यो)** न शिष्य **(न गुरु)** न गुरु **(अपि हीनं न दीनं)** न हीन न दीन ही हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी,
न पूर्णं न शून्यं न चैत्य-स्वरूपम्।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम् ॥८ ॥

अर्थ : (इदं) यह आत्मा **(स्वयं)** स्वयं **(ज्ञानरूपं)** ज्ञान स्वरूप है **(तत्त्ववेदी)** तत्त्वों को जानने वाली है **(न पूर्णं)** न पूर्ण **(न शून्यं)** न शून्य **(न चैत्य-स्वरूपम्)** न प्रतिमारूप है **(चन न अन्या)** और न दूसरा **(न भिन्नं)** न अलग **(न परमार्थं)** न परमार्थरूप **(न एकं)** न एकरूप हैं ऐसे **(चिदानन्दरूपं)** चैतन्य के आनन्द स्वरूप **(वीतरागम्)** वीतराग देव को मैं **(नमः)** नमस्कार करता हूँ।

आत्माराम- गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगतागते सुखदुःखे, ज्ञाते त्वयि सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायंति योगीश्वराः,
वंदे तं हरिवंशहर्ष- हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम् ॥९ ॥

अर्थ : (त्वयि सर्वग) आप सर्वज्ञ में **(सर्वे भूत-गतागते)** सम्पूर्ण भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल सम्बन्धि **(सुखदुःखे ज्ञाते)** सुख-दुःख को जान लेने पर **(स्वयं)** स्वतः **(योगीश्वराः)** मुनीश्वर गणधर देव **(स्वमनसा) अपने मन से (ध्यायन्ति)** आपका ध्यान करते हैं **(आत्माराम-गुणाकरं)** आत्मारूपी बगीचे में गुणों की खान **(गुणनिधि)** गुणों के भण्डार **(चैतन्य-रत्नाकरं)** चैतन्यरूपी समुद्र **(तं)** उन **(हरिवंश-हर्ष-हृदयं)** हरिवंश के हर्ष के हृदय/मुख्य कारण श्री मुनिसुव्रतनाथ और श्री नेमिनाथ वीतरागदेव की मैं **(हृदा)** हृदय से **(वंद)** वन्दना/नमस्कार करता हूँ **(श्रीमान्)** अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी सम्पन्न **(त्रैलोक्याधिपते!)** हे तीनों लोकों के स्वामी **(अभ्युद्यताम्)** मुझे अपने निकटवर्ति करें।

धरोहर

एक बार एक सम्राट ने एक संन्यासी का निमंत्रण किया। संन्यासी बड़ा खुश कि आज तो सम्राट के यहाँ अच्छे-अच्छे शुद्ध घी के पकवान खाने को मिलेंगे। उसने एक दिन पहले ही भोजन घर पर बंद कर दिया जिससे सम्राट के यहाँ अधिक भोजन किया जा सके। सन्यासी भोजन करने गया तो सम्राट ने बिना घी की रोटी और चने की भाजी परोसी यह देख संन्यासी को आश्चर्य हुआ। सम्राट संन्यासी के मन की बात समझ गया। और बोला मेरे यहाँ प्रतिदिन यही भोजन बनता है। संन्यासी कहता है कि आपके पास तो बहुत बड़ा खजाना है आप चाहें तो रोज अच्छे-अच्छे पकवान खा सकते हैं। सम्राट कहता वह खजाना तो जनता का है, जनता के लिए ही है। मेरे पास तो सिर्फ थोड़ी-सी खेती है उससे जो प्राप्त होता है उसी से मैं अपने परिवार का भरण-पोषण करता हूँ।

और भी ऐसे-ऐसे सम्राट सुने हैं जिनकी रानी टोपी बेचकर प्राप्त आय से अपनी आजीविका चलाते थे। राजकोष को तो वह निर्माल्य समझते थे।

पाठ्यक्रम - ४

४ ब || वर्तमान शासन नायक - भगवान महावीर

लगभग २६०० वर्ष पूर्व इस भारत भूमि पर एक महापुरुष का जन्म हुआ। जिसने इस धरती पर फैले अज्ञान को दूर कर सत्य, अहिंसा और प्रेम का प्रकाश फैलाया। उन महापुरुष को जन-जन अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर के नाम से जानते हैं। भगवान महावीर का संक्षिप्त जीवन-दर्शन इस प्रकार है :-

मधु नाम के वन में एक पुरुरवा नाम का भील रहता था। कालिका उसकी पत्नी का नाम था। एक दिन रास्ता भूलकर सागरसेन नाम के मुनिराज उस वन में भटक रहे थे, कि पुरुरवा हिरण समझकर उन्हें मारने के लिए उद्यत हुआ, तब उसकी पत्नी ने कहा कि स्वामी! ये वन के अधिष्ठाता देव हैं। इन्हें मारने से तुम संकट में पड़ जाओगे, कहकर रोका।

तब दोनों प्रसन्नचित्त हो मुनिराज के पास पहुँचे तथा उपदेश सुनकर शक्त्यानुसार मांस का त्याग किया। आयु के अंत में निर्दोष व्रतों का पालन करते हुए, शान्त परिणामों से मरण प्राप्त कर वह भील सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ।

स्वर्ग सुख भोगकर भरत चक्रवर्ती की अनन्तमति नामक रानी से मारीचि नाम का पुत्र हुआ तथा प्रथम तीर्थङ्कर वृषभनाथ जी के साथ देखा-देखी दीक्षित हो गया। भूख-प्यास की बाधा सहन न कर सकने के कारण भ्रष्ट हो, अहंकार के वशीभूत होकर तापसी बन सांख्य मत का प्रवर्तक बन गया। तथा अनेक भवों तक पुण्य-पाप के फलों को भोगता हुआ, सिंह की पर्याय को प्राप्त हुआ।

एक समय वह हिरण का भक्षण कर रहा था, तभी अजितञ्जय और अमितदेव नाम के दो मुनिराजों के उपदेश सुन जातिस्मरण होने पर व्रतों को धारण किया तथा संन्यास धारण किया जिसके प्रभाव से सौधर्म स्वर्ग में सिंह केतु नाम का देव हुआ। आगे आने वाले भवों में चक्रवर्ती आदि की विभूति का उपभोग कर जम्बूद्वीप में नंद नाम का राजपुत्र हुआ। प्रोष्ठिल नाम के मुनिराज से दीक्षा ले सोलह कारण भावना भाते हुए महापुण्य तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया फिर आयु के अंत में आराधना पूर्वक मरण कर अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में इन्द्र हुआ। वहां से च्युत होकर अंतिम तीर्थङ्कर भगवान महावीर हुआ।

भगवान महावीर का जन्म वैशाली गणतंत्र के कुण्डलपुर राज्य के कश्यप गोत्रीय नाथ वंश के क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ और त्रिशला रानी के आँगन में चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी के शुभ दिन हुआ। बालक सौभाग्यशाली, अत्यन्त सुन्दर, बलवान, तेजस्वी, मुक्तिगामी जीव था। सौधर्म इन्द्र ने सुमेरु पर्वत पर भगवान बालक का अभिषेक करने के बाद 'वीर' नाम रखा। जन्म समय से ही पिता सिद्धार्थ का वैभव, यश, प्रताप, पराक्रम और अधिक बढ़ने लगा। इस कारण उस बालक का नाम वर्द्धमान भी पड़ा। राजकुमार वर्द्धमान असाधारण ज्ञान के धारी थे। संजयन्त और विजयन्त नामक दो मुनि अपनी तत्व विषयक कुछ शंकाओं को लिए आकाश मार्ग से गमन कर रहे थे तभी बालक वर्द्धमान को देखते ही उनको समाधान प्राप्त हो जाने से उन्होंने उस बालक का नाम 'सन्मति' रखा। एक दिन कुण्डलपुर में एक बड़ा हाथी मदोन्मत्त होकर गजशाला से बाहर निकल भागा। वह मार्ग में आने वाले स्त्री पुरुषों को कुचलता हुआ नगर में उथल-पुथल मचाते हुए घूम रहा था। जिससे जनता भयभीत हो प्राण बचाने हेतु इधर-उधर भागने लगी। तब वर्द्धमान ने निर्भय हो हाथी को वश में कर मुट्ठियों के प्रहार से उसे निर्मद बना दिया। तब जनता ने बालक की वीरता से प्रसन्न हो बालक को 'अतिवीर' नाम से सम्मानित किया। वर्द्धमान एक बार मित्रों के साथ खेल रहे थे तभी संगम नामक देव विषधर का रूप धरकर आया। जिसे देखकर सभी मित्र डर के मारे भाग गये। परन्तु वर्द्धमान सर्प को देख रंच मात्र भी नहीं डरे, अपितु निर्भयता से उसी के साथ खेलने लगे। तब देव प्रकट होकर भगवान की स्तुति करने लगा एवं उनका नाम 'महावीर' रखा।

जब वर्द्धमान यौवन अवस्था को प्राप्त हुए। तब माता-पिता ने वर्द्धमान का विवाह राजकुमारी यशोदा के साथ करने का निर्णय लिया। अपने विवाह की बात जब महावीर को ज्ञात हुई तो उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। गृहस्थ जीवन के बंधन में न

फंसते हुए तीस (30) वर्ष की यौवनावस्था में स्वयं ही दिगम्बर दीक्षा अंगीकार की। बारह वर्ष तक मौन पूर्वक साधना करते हुए ब्यालीस (42) वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया फिर लगभग तीस (30) वर्ष तक भव्य जीवों को धर्मोपदेश देते हुए बहात्तर (72) वर्ष की आयु में कार्तिक वदी अमावस्या के ब्रह्ममुहूर्त में (सूर्योदय से कुछ समय पहले) पावापुर ग्राम के सरोवर के मध्य से निर्वाण को प्राप्त किया।

भगवान महावीर का शेष परिचय

गर्भ - तिथि	-	आषाढ़ शुक्ल ६	जन्म - तिथि	-	चैत्र शुक्ल १३
दीक्षा - तिथि	-	मार्ग, कृष्ण १०	केवलज्ञान - तिथि		वैशाख शुक्ल १०
उत्सेध/वर्ण	-	७ हाथ/ स्वर्ण	वैराग्य कारण	-	जाति स्मरण
दीक्षोपवास	-	बेला	दीक्षावन/वृक्ष	-	नाथवन/साल वृक्ष
सहदीक्षित	-	अकेले	सर्वऋषि संख्या	-	१४,०००
गणधर संख्या	-	११	मुख्य गणधर	-	इन्द्रभूति
आर्यिका संख्या	-	३६,०००			
यक्ष	-	गुह्यक	यक्षिणी	-	सिद्धायिनी
योग निवृत्तिकाल	-	दो दिन पूर्व	केवलज्ञान स्थान	-	ऋजुकूला
चिह्न	-	सिंह	समवशरण में श्रावक संख्या	-	१ लाख
श्राविका	-	३ लाख	मुख्य श्रोता	-	श्रेणिक

''जीवन की सफलता का सूत्र है अपने विषय में अधिक सोचना/जागरुकता और असफलता का सूत्र है दूसरों के विषय में अधिक सोचना, जागरुकता का अर्थ यथार्थ को स्वीकारना। मूर्च्छा से जागरुकता की ओर जाने के लिए अपनी कमजोरी को स्पष्ट समझना और उससे मुक्त होने का दृढ़ निश्चय करना।''

विशेष - केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् गणधर के अभाव में छयासठ (६६) दिन तक भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि नहीं हुई। जिस दिन भगवान महावीर की प्रथम देशना हुई भी उसे वीर शासन जयन्ती के रूप में (श्रावण कृ. १) मनाते हैं।

काला अक्षर भैंस बराबर

एक बालक था जो पढ़ा-लिखा नहीं था। पिता ने उसका समय पर विवाह कर दिया। एक बार वह अपनी ससुराल गया। सासु ने दामाद की बड़ी खातिरदारी की। सासु ने कहा 'दामाद जी परदेश से पत्र आया है।' मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ। यह पत्र आपके श्वसुर जी का आया हुआ है, पढ़कर सुना दीजिए।

वह बालक पढ़ा-लिखा नहीं था। वह चक्कर में पड़ गया और मन-ही-मन विचार करने लगा-पत्र कैसे पढूं? मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है। पिताजी ने मुझे पढ़ाया नहीं। उसे अपने अज्ञान पर बहुत दु:ख हुआ और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। मुँह से कुछ भी नहीं बोल सका। सासु जी ने विचार किया ये पत्र पढ़कर रो रहे हैं। हो-न-हो दाल में कुछ काला है। अवश्य ही मेरे पति का अवसान हो गया है। यह विचार कर वह जोर-जोर से रोने लगी। उसका करुण रुदन सुनकर आसपास की स्त्रियाँ भी आ गईं। सभी अपनी संवेदना प्रकट करने के लिए स्वर में स्वर मिलाने लग गई। घर में कुहराम मच गया। आजू-बाजू के कुछ पुरुष भी आ गए। उन्होंने पूछा-'क्या बात हुई? अभी तो पत्र आया था कि सेठ जी अच्छी तरह से हैं तथा अचानक क्या हो गया? क्या कोई पत्र आया है? पत्र उनको दिखाया गया। पत्र में लिखा था-'मैं अच्छी तरह से हूँ और भगवान की कृपा से अच्छी कमाई भी हो रही है।'

पत्र का सही अर्थ ज्ञात होते ही सब अवाक् रह गए। घर का सब वातावरण बदल गया। सबके चेहरे पर खुशी छा गई और दामाद से पूछा गया कि आपने पत्र कैसे पढ़ा? दामाद ने दु:ख भरी भाषा में कहा 'भाइयों अगर मैं पढ़ा हुआ होता तो आँखों से आँसू क्यों निकलते ? मैं तो अपने पिताजी को रो रहा हूँ कि उन्होंने मुझे पढ़ाया क्यों नहीं।

शिक्षा - बिना पढ़े-लिखे व्यक्ति को कदम-कदम पर दु:ख उठाना पड़ता है। पढ़ा-लिखा व्यक्ति ही अपने जीवन की उन्नति कर सकता है, अत: प्रत्येक व्यक्ति को विद्यार्जन करने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

बिना पढ़ाई जड़ मनुज, करता रुदन अपार।
अर्थ सही नहिं पा सका, जिससे हाहाकार॥

सिद्धों की श्रेणी में

सिद्धों की श्रेणी में आने, वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को-२, शत-शत मेरा प्रणाम है।।
शत-शत मेरा प्रणाम है।।

मोक्ष मार्ग पर अंतिम क्षण तक, चलना जिनको इष्ट है।
जिन्हें डिगा सकता ना पथ से, कोई विघ्न अनिष्ट है।।
जिनकी है निःस्वार्थ साधना-२, जिनका तप निष्काम है...
जग के ....।।

मन में किंचित हर्ष न लाते, सुन अपना गुण-गान जो।
और वे अपनी निंदा सुनकर, करते नहीं विषाद जो।।
दोनों समय शांति में रहना-२, जिनका शुभ परिणाम है...
जग के ....।।

हर उपसर्ग सहन जो करते, माने कर्म विचित्रता।
एक भाव से झेला करते, ठंडी-वर्षा-उष्णता।।
उनको जैसी शीतल छाया-२, वैसी भीषण घाम है...
जग के ....।।

जिनका समता धन खरीदने, को असमर्थ कुबेर जो।
रतनत्रय से भरते रहते, अपना चेतन कोष जो।।
और उसी की रक्षा में रत-२, रहते आठों याम हैं...
जग के ....।।

सिद्धों की श्रेणी में आने, वाला जिनका नाम है।
जग के उन सब मुनिराजों को-२, शत-शत मेरा प्रणाम है - २।।

......

एक में डूबो,
अनेक विकल्प सो,
डूबते दिखे ।

ज्यादा पढ़ा ना,
ज्यादा बार पढ़ा हो,
तो लाभ मिले

जिनवाणी स्तुति

श्वास-श्वास में तुझे बसायें, हे जिनवाणी माँ!
बार-बार हम शीश झुकायें, हे जिनवाणी माँ! ।।टेक।।
मूल अर्थ कर्त्ता हैं तेरे, तीर्थङ्कर स्वामी।
उत्तर ग्रन्थ रचयिता तेरे, श्री गणधर स्वामी।।
हम सब श्रोता सुनने आए, श्री जिनवाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।१।।
ज्ञान सूर्य सम निर्मल बनता, तेरी वाणी से।
चारित चन्दा-सा उज्ज्वल हो, तेरी वाणी से।।
अखिल विश्व कल्याण कारिणी, आगम वाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।२।।
ग्वाला को भी कुन्दकुन्द सा, संत बनाती माँ।
ग्रन्थ सिखा निर्ग्रन्थ बना, अरिहन्त बनाती माँ।।
तीर्थङ्कर की दिव्य देशना, मोक्ष दायिनी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।३।।
तेरे अमृत अक्षर माता ! अक्षय पद दाता।
तेरे पर हर आपद हरते, हैं शिव पद दाता।।
ओम् नमः अर्हं सिखलाती, अर्हद् वाणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।४।।
अहो भारती सारवती माँ!, सरस्वती माता।
वीर हिमाचल से निकली हो, ज्ञान सलिल दाता।।
पाप-ताप संताप हारिणी, जग कल्याणी माँ।
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ।।५।।
श्वास-श्वास में तुझे बसाएँ, हे जिनवाणी माँ!
बार-बार हम शीश झुकाएँ, हे जिनवाणी माँ! ।।

दृढ़ राखे श्रद्धान

वस्तुस्वरूप इसी प्रकार ही अन्य प्रकार नहीं ऐसा तलवार की धार पर पानी की तरह अटल श्रद्धान होता है तो सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात जैसे तलवार की धार का पानी हवा द्वारा चलायमान नहीं होता है वैसे ही जिसके सच्चे देव, शास्त्र , गुरु संबंधी श्रद्धा का परिणाम मिथ्यादृष्टि के वचनरूपी हवा के द्वारा संशय को प्राप्त नहीं होता। उसे सम्यग्दर्शन होता है।

अपना श्रद्धान कैसा अटल होना चाहिए, इसी तथ्य को प्रकाशित करने वाली एक छोटे-से बालक की घटना है-

एक पाँच वर्ष का बालक था। उसको बहुत प्रलोभन दिया गया कि देखो मैं तुम्हें बहुत सारा प्रसाद दूँगा खिलौने दूँगा पर तुम ये कहदो कि मैं लड़की हूँ। लेकिन वह किसी भी प्रकार से कहने को तैयार नहीं हुआ, कि मैं लड़की हूँ क्योंकि उसे विश्वास था कि मैं लड़का हूँ। ऐसे ही जीवादि सात तत्त्वों का जैसा स्वरूप जिनागम ने कहा है वह उसी प्रकार है अन्य प्रकार नहीं। ऐसा दृढ़ विपरीताभिनिवेश रहित विश्वास जब होता है तब सम्यग्दर्शन होता है।

गुरु वंदना

दया करो संकट हरो, विद्या गुरु भगवान।
मुझे भरोसा आप पर, रखना मेरा ध्यान॥१॥
गिरे न मेरा मन कभी, रहे माथ पर हाथ।
मैं बालक डरपोक हूँ, रखना मुझको साथ॥२॥
गुरु ही मेरे अंग हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
यह जीवन गुरु के बिना, जैसे इक श्मशान॥३॥
शिष्य भले ही दूर हो, रखते हैं गुरु ध्यान।
अंतरंग के भाव से, देते हैं वरदान॥४॥
गुरु हैं जग में कल्पतरु, फल उपदेश महान्।
जो भी खाता है इसे, बनता वह भगवान॥५॥
गुरु गंधोदक से मिटे, तन मन के सब रोग।
भक्ति भाव के साथ ही, ले लो सारे लोग॥६॥
मेरे गुरुवर मेघ हैं, बच्चे हम सब मोर।
नाच रहे हैं प्यार से देखत इनकी ओर॥७॥
विद्यासागर चरण की, जिसे मिली है धूल।
उसे मिला है जगत में, मन वांछित फलफूल ॥८।
मन वच तन से कर रहे, जो निज पर उद्धार।
ऐसे विद्या संत को, प्रणाम बारम्बार॥९॥
विद्यासागर में भरे, रत्न अनंतानंत।
इन्हें प्राप्त कर बन रहे, संत लोक श्रीमंत॥१०॥
दुर्जन के दुर्गुण मिटे, रोगी के सब रोग।
साधु साधे साध्य को, पा गुरुवर का योग॥११॥
धर्म धुरंधर गुरु रहे, करुणा के अवतार।
भविजन को भव-सिन्धु में, ये ही तारणहार॥१२॥
गुरु ही मेरे त्राण हैं, गुरु ही मेरे प्राण।
गुरु ही मेरी शान हैं, गुरु ही मम पहचान॥१३॥
विद्यासागर गुरु मिले, हमे भाग्य से आज।
भवसागर से तैरने, ये हैं परम जहाज॥१४॥
गुरु स्वाती की बूँद हैं, शिष्य सीप सम जान।
गुरु आज्ञा संयोग है, मोती केवलज्ञान॥१५॥
मैं पूजूँ गुरुदेव को, मम उर में रख पाद।
जब तक शिव सुख ना मिले, करूँ इन्हीं को याद॥१६॥
भव आतप से जल रहे, थे हम सब के प्राण।
विद्यासागर नीर से, मिला सु जीवन दान॥१७॥
मेरे गुरु के पूज्य हैं, गज-रेखा के पैर।
हिंसक पशु भी छोड़ते, इत आकर सब वैर॥१८॥
विद्यासागर के चरण, जग में पूज्य महान।
शरणागत को शरण हैं, बनने को भगवान॥१९॥
गुरुवर ने जो भी दिया, मुझ को यह आधार।
युगों-युगों तक मैं नहीं, भूलूँगा उपकार॥२०॥
विद्यासागर सूर्य हैं, शिष्य किरण सम जान।
इनके दर्शन मात्र से, मिटता तम अज्ञान॥२१॥
विद्या गुरुवर ने दिया, जन-जन को यह सीख।
निज में निधि अपार है, मत मांगो रे भीख॥२२॥

पाप का मूल कारण परिग्रह

एक बार दो भाई धन कमाने के लिए परदेश गए। वहाँ दोनों ने मिलकर बहुत धन कमाया। वे दोनों धन लेकर घर आ रहे थे। रास्ते में बड़े भाई के मन में पाप आ गया। उसने सोचा – यदि मैं छोटे भाई को मार दूँ तो पूरा धन मुझे मिल जाएगा। बड़ा भाई इस प्रकार विचार कर रात्रि में सो गया।

छोटा भाई जाग रहा था। उसके मन में भी वैसे ही भाव उत्पन्न हुए जैसे बड़े भाई के हुए थे लेकिन कुछ ही देर में उसकी बुद्धि पलट गई, वह अपने को धिक्कारने लगा। उसे अपने आप पर बहुत क्रोध आया। उसने पूरा धन जो सिक्कों के रूप में था नदी में बहा दिया।

सिक्कों के गिरने की आवाज सुनकर बड़े भाई की नींद खुल गई, उसने उठकर पूछा "भैया! तुमने यह क्या किया?" छोटे भाई ने कहा – "भैया! इस धन के कारण मेरे भाव बिगड़ गये, मेरे भाव तुम्हें मारने के हो गए अत: मैंने पूरे सिक्के (धन) नदी में फेंक दिए।" बड़े भाई ने कहा – "भाई! तुमने बहुत अच्छा किया क्योंकि मेरे भी इस धन के कारण ऐसे ही भाव बिगड़ गए थे।"

सारांश : बहुत धन इकट्ठा नहीं करना चाहिए। धन आने पर दान-परोपकार आदि पुण्य कार्यों में खर्च कर देना चाहिए। क्योंकि परिग्रह के होने पर भाव खराब होने लगते हैं; नैतिकता, सदाचार समाप्त होने लगता है।

- **सुखी वह नहीं जिसके पास सम्पदा है, सुखी वह है जो हर हाल में मस्त और संतुष्ट रहकर जीवन जीने की कला जानता है।**
- **जीवन में सफलता पाना प्रतिभा और अवसर की अपेक्षा एकाग्रता और निरंतर प्रयास पर कहीं अधिक आधारित है।**

संस्मरण - साधन एवं साधना

साधनों के चक्कर में साधना भटक रही है। अगर साधन अधिक हो जाएँ तो क्या हो? और अगर साधनों की कमी हो जाए तो क्या हो? यह कोई जरूरी नहीं कि साधनों के अभाव में साधना ही न हो। बल्कि यह कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि साधनों के अभाव में या कमी में सबसे अच्छी साधना होती है और सर्वश्रेष्ठ साधना वही कहलाती है जो अभावों में की जाती है।

बात उस समय की है, जब आधुनिक साधनों की प्राय: कमी सी रहती थी। ग्रामोफोन या रेडियो प्रत्येक घर में नहीं होते थे, या तो होटल में या सेठ-साहूकारों के पास होता था। घड़ी का भी यही हाल था, जब कभी घड़ी देखना, रेडियो या ग्रामोफोन सुनना हो तो उनके यहाँ जाना पड़ता था। या मस्जिदों की अजान के नगाड़े से, मन्दिरों के जय घण्टों से समय का पता लगाते थे। दोपहर में चरु चढ़ाने का समय, आरती का समय ज्ञात करके समय का ज्ञान होता था। मोटर देखने उसके पास पहुँचकर छूकर देखते, इसी प्रकार ग्रामोफोन।

पहले आस्था बहुत थी, क्योंकि साधनों का अभाव था परन्तु आज साधनों की बहुलता ने आस्था कमजोर कर दी। मनुष्यों को निठल्ला बना दिया, कमजोर एवं पराधीन कर दिया। इसलिए आज मानव साधनों का दास हो गया, जबकि होना उसको साधना का दास चाहिए। यह बात आचार्य विद्यासागर जी महाराज में विपरीत दिखती है अर्थात् वे साधना के, सम्यक् साधना के दास हैं साधनों के नहीं क्योंकि उनको आस्था समाप्त नहीं करनी बल्कि आस्था मजबूत बनाकर साध्य तक जाना है।

भजन

लक्ष्य न ओझल होने पाये, कदम मिलाकर चल।
मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल ।

सबकी ताकत, सबकी दौलत, सबकी हिम्मत एक ।
सबकी इज्जत, सबकी जरूरत, सबकी किस्मत एक ।
शूल बिछे अगणित राहों में, राह बनाता चल ।
मंजिल तेरे पग ....

छोड़ दे नैय्या अरे खिवैया, टेड़ी है मझधार ।
खून पसीना बहा के अपना, लाए नई बहार
सीमाओं पर आन मचलता, देश भक्ति का बल ।
मंजिल तेरे पग ....

गुरुवर हमको शक्ति देना, मिलकर कार्य करें।
एक होके हम, नेक होके हम, जग कल्याण करें।
हम सब के हैं साथ सदा ही, गुरु भक्ति का बल ।
मंजिल तेरे पग ....

प्रार्थना

जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।
वीतराग जिनदेव भजेंगे, जिनवाणी अनुसरण करेंगे।।
परम दिगंबर मुनि पूजेंगे, उन पर श्रद्धा भक्ति बढ़ायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
सदा बड़ों की विनय करेंगे, छोटों के प्रति प्रेम रखेंगे।
सबसे मिलकर नेक बनेंगे, शक्ति एकता की दिखलायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
गुरु उपकार नहीं भूलेंगे, गुरु आदेश से शिक्षा लेंगे।।
विनय नम्रता नहीं भूलेंगे, धीरज समता को अपनायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे, छान के पानी सदा पियेंगे।
प्रभु के दर्शन नित्य करेंगे, इनके ही गुणगान को गायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
कभी किसी से नहीं लड़ेंगे, प्रेमभाव हम सदा रखेंगे।
दुखियोंपर हम दया करेंगे, उनकी सेवा कर सुख पायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।
चुगली भी हम नहीं करेंगे, बिना दिए कुछ चीज न लेंगे।
खोटी संगत सदा तजेंगे, सप्त व्यसन को दूर भगायें।
जीवन हम आदर्श बनाएँ, अनुशासन के नियम निभायें।।

- **जीवन का सुख कुछ प्राप्ति पर आधारित है तो कुछ प्रतीक्षा पर भी।**
- **बुरा कहलाना अच्छा है, पर अच्छा कहलाकर बुरा बने रहना तो बहुत ही बुरा है।**
- **सम्पन्नता और कृत्रिम जीवनशैली हमारे सुख की अनुभूति को निचोड़ लेती है।**

पाठ्यक्रम - ५

५ अ | जीवों की अवस्था विशेष - गतियाँ

गति का स्वरूप -

गति नाम कर्म के उदय से संसारी जीव जिस अवस्था विशेष को प्राप्त करते हैं उसे गति कहते हैं। मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ आदि इस प्रकार की अनुभूति जिस कर्म का फल है वह गतिनाम कर्म है।

गति के भेद -

गतियाँ चार होती है - नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देवगति।

नरक गति -

हिंसादि पाप कर्मों के फलस्वरूप दु:ख भोगने हेतु जीव की प्राप्त अवस्था विशेष नरक गति है। इस गति में रहने वाले नारकी एक क्षण के लिए भी सुख प्राप्त नहीं करते, निरन्तर क्षेत्र जनित, शारीरिक, मानसिक और असुरकृत दु:खों को यथावसर अपनी पर्याय के अन्तसमय पर्यन्त भोगते रहते हैं।

नरक गति को प्राप्त जीव रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों में बनें ८४ लाख बिलों में रहते हैं। जिसमें ८२,२५,००० बिल अत्यधिक उष्ण (गरम) एवं १,७५,००० बिल अत्यधिक शीत (ठंडी) प्रकृति वाले होते हैं।

तिर्यञ्च गति -

मायाचार रूप परिणामों से उपार्जित पाप तथा हिंसादि पाप के फलों को भोगने हेतु प्राप्त जीव की अवस्था विशेष तिर्यञ्च गति कहलाती है।

तिर्यञ्च गति में एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव होते हैं अर्थात पत्थर, पानी, हवा, अग्नि तथा पेड़ - पौधे इत्यादि सभी एकेन्द्रिय जीव तिर्यञ्च गति के हैं। इस गति में जीवों के पास प्रतिकार करने की क्षमता का अभाव होने पर उन्हे अनेक प्रकार के सर्दी, गर्मी, भूख - प्यास आदि के कष्टों को सहन करना पड़ता है तिर्यञ्चों के दु:खों को करोड़ों जिह्वा के द्वारा भी कहना शक्य नहीं है।

मनुष्य गति -

व्रत रहित जीव के सरल परिणाम, कम आरंभ परिग्रह से उत्पन्न शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त जीव की अवस्था विशेष मनुष्य गति कहलाती है।

इस गति में पुरुषार्थ की मुख्यता रहती है यह गति जंक्शन के समान है, जीव यहाँ से सभी गतियों में जा सकता है तथा कर्म काट कर मोक्ष भी जा सकता हैं। मनुष्य गति मिलना अन्य गतियों की अपेक्षा दुर्लभ है। देव भी मनुष्य बनने के लिए तरसते हैं।

> **''अविकल्पी है वह**
> **दृढ़-संकल्पी मानव**
> **अर्थहीन जल्पन**
> **जिसे रुचता नहीं**
> **थोड़ा सा भी**

देवगति -

मोक्ष प्राप्ति के योग्य पुरुषार्थ की कमी होने पर देव - पूजा, दान व्रतादि से उत्पन्न विशेष पुण्य फलों को भोगने हेतु प्राप्त जीव की अवस्था विशेष देव गति है। अणिमादि आठ गुणों से नित्य क्रीड़ा करते रहते हैं, और जिनका प्रकाशमान, अत्यन्त सुंदर, धातु - उपधातु से रहित दिव्य शरीर है वे देव कहे जाते हैं।

इस गति में सुख की बहुलता रहती है, भूख-प्यास आदि की बाधा अत्यल्प होती है। सबकुछ भोगोपभोग सामग्री पूर्व

> **पानी यदि रंगीन मटमैला है तो उसके अन्दर क्या पड़ा हुआ है? दिखाई नहीं देता और यदि पानी साफ-सुथरा भी हो किन्तु हिल रहा है, तरंगायित हो तब भी अन्दर क्या है? दिखाई नहीं देता अत: अन्दर झाँकने के लिए पानी का रंग और तरंग रहित होना जरूरी है। ठीक इसी प्रकार रंग (मोह) और तरंग (योग) के अभाव में ही अंतरंग (आत्मतत्त्व) का दर्शन होता है।**

पुण्य के उदय से स्वयमेव मिल जाती है किसी प्रकार की मेहनत/परिश्रम नहीं करनी पड़ती। पाँच इन्द्रियों के विषयों के योग्य भोग सामग्री पर्याप्त होती है किन्तु आयु पूर्ण होने पर यह सब वैभव छूट जाता है।

जीवों की गति-अगति -

नरक गति के जीव मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेते हैं देव गति व नरकगति में नहीं। इसी प्रकार देवगति के जीव भी मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेते हैं अन्य गतियों में नहीं। विशेषता इतनी है कि देव मरणकर पृथ्वी कायिक, जल कायिक और वनस्पति कायिक एकेन्द्रिय पर्याय में भी जन्म ले सकते हैं। किन्तु नारकी नहीं। नारकी नियम से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याय में ही जन्म लेता है।

तिर्यञ्च व मनुष्य गति के जीव चारों गतियों में जन्म ले सकते हैं विशेषता इतनी है एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव मरणकर मनुष्य व तिर्यञ्च इन दो गतियों में ही जन्म ले सकते हैं देव गति व नरक गति में नहीं जा सकते। एकेन्द्रिय वायुकायिक एवं अग्निकायिक जीव मरणकर तिर्यञ्च गति में ही जन्म ले सकते हैं अन्य गतियों में नहीं। मनुष्य गति का जीव ही कर्मों का पूरी तरह क्षय कर मुक्ति प्राप्त कर सकता है अन्य गति के जीव नहीं।

गृहस्थ के योग्य ''षट्-कर्म''

१. असि कर्म - तलवार, तीर, कमान, बंदूक, तोप, भाला आदि के द्वारा प्रजा की रक्षा करने का कार्य असि कर्म कहलाता है। असि कर्म करने वाले के मन में जीवों की रक्षा का उद्देश्य होने से यह कर्म निन्द्य नहीं माना जाता है। श्री ऋषभदेव, श्री शान्तिनाथ, श्री रामचन्द्र आदि असिकर्म करते थे। सैनिक, सुरक्षा बल, पुलिस आदि का कार्य भी असिकर्म कहा जा सकता है।

2. मसि कर्म - द्रव्य अर्थात् रुपए-पैसे की आमदनी खर्च आदि के लेखन का कार्य अर्थात् मुनीमी करना, मसि कर्म कहलाता है। सी.ए., सेल्स टेक्स, इन्कमटेक्स के वकील मसि कर्म वाले माने जा सकते है।

3. कृषि कर्म - हल, कुलिश, दन्ताल आदि कृषि उपकरणों के उपयोग की विधि को जानकर, कृषि कार्य करना कृषि कर्म कहलाता है। यद्यपि कृषि कार्य में त्रस जीवों की हिंसा होती है तदपि कृषक के मन में सभी जीवों के पेट भरे रहें, सभी सुखी रहें ऐसी सद्भावना होने से कृषि कार्य को निन्द्य नहीं माना। अपितु कृषि को उत्तम कार्य कहा गया है। आचार्यश्री शान्तिसागर जी, आचार्यश्री विद्यासागर जी के गृहस्थाश्रम में कृषि कार्य ही मुख्यता से किया जाता था।

4. शिल्प कर्म - धोवी, नाई, लुहार, कुम्हार, सुनार आदि अनेक प्रकार के वस्त्राभूषण, हथियार आदि बनाते हैं उनके इस कर्म को शिल्प कर्म कहते हैं। मकान बनाना, महल बनाना, पुल बनाना, मशीन, यंत्र आदि बनाना भी शिल्प कर्म है।

5. सेवा अथवा विद्या कर्म - लेखन, गणित, चित्रादि पुरुष की बहत्तर कलाओं को विद्याकर्म कहते हैं। लेखक, कवि, पत्रकार, टाइप राइटर आदि का कार्य विद्या कर्म है इसी प्रकार से शिक्षक, प्रशासनिक सेवा आदि का कार्य भी सेवा कर्म माना जाता है।

6. वाणिज्य कर्म - चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ, घी, तेल, धान्यादि, कपास, वस्त्र, हीरे, मोती, सोना-चांदी इत्यादि अनेक प्रकार के द्रव्यों का संग्रह कर उन्हें बेचना ''वाणिज्य कर्म'' कहलाता है। इसमें सभी प्रकार का लेन-देन रूप व्यापार सम्मिलित होता है।

कुछ क्रूर व्यापार (खर कर्म) ग्रन्थों में कहे गए है ये कर्म प्राणियों को दु:ख देने वाले होने से त्यागने योग्य है। अर्थात दयाभाव रखने वाले जैन श्रावकों को यह कार्य नहीं करना चाहिए। जैसे - ईंट के, चूने के भट्टे लगवाना, गोबर गैस प्लान्ट लगवाना, सेप्टिक टैंक बनवाना, हीटर आदि अग्नि उत्पादक यंत्रों का निर्माण करना, पटाखे, बम बारुद की चीजें बनाना एवं बेचना, कीट नाशक दवाएँ जहर आदि बेचना, वन में पत्ते आदि जलाने का ठेका लेना, बारुद द्वारा पहाड़ों को तुड़वाना, दास-दासियों का व्यापार, गर्भपात की दवाई तथा खून मांस से उत्पन्न दवाइयाँ बेचना, लाख, शहद, शराब, हाथीदांत, नशीले पदार्थ, मक्खन आदि का व्यापार, बैल आदि पशुओं के नाक-कान आदि छेदने का व्यापार, चमड़े की वस्तुओं का व्यापार। इसके अलावा कुछ छुद्र कर्म भी माने है जिन्हें श्रावक न करे जैसे, जूते-चप्पल का व्यापार, बालों के कटिंग की दुकान (ब्यूटी पार्लर), हिंसक प्राणियों (कुत्ते बिल्ली आदि) का पालन-पोषण करना, इनको बेचना।

श्रद्धा हमारी भाषा

श्रद्धा हमारी भाषा, निष्ठा हमारा नारा।
गुरुदेव की शरण में, भव का मिले किनारा।।
हम गुरु के शिष्य ऐसे, जैसे दिये में बाती।
जलते रहेंगे हर पल, चाहे हो तूफां पानी।।
गुरुवर हमारे ऐसे, जैसे श्री वीर भगवन।
श्री कुन्दकुन्द स्वामी, जैसा पवित्र जीवन।।
चरणों का स्पर्श पाकर, हो जाती माटी चंदन।
पारस हैं आप गुरुवर, हमको बना दो कुन्दन।।
दुखियों के दुःख हरने, हरदम खड़े रहेंगे।
हर आँच में जलेंगे, कर्मों से हम लड़ेंगे।।
शुद्धोपयोगी गुरुवर, बस एक भावना है।
बन जाएँ आप-जैसे, कुछ और चाह न है।।

इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाए, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी।।१।।
हमारा भार घट जाए, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी।।२।।
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी।।३।।
बढ़े धन-सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी।।४।।
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी।।५।।
दुःखी हों दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी।।६।।
मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोभंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी।।७।।
रहे सुख-शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी।।८।।
फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी।।९।।
दुःखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी।।१०।।

जब दिमाग कमजोर होता है, परिस्थितियाँ समस्या बन जाती हैं,
जब दिमाग स्थिर होता है परिस्थितियाँ चुनौती बन जाती हैं,
जब दिमाग मजबूत होता है परिस्थितियाँ अवसर बन जाती हैं।

अपनी भावना

जिनवर हमारे नेता, जिनवाणी सच्ची माता।
गुरुदेव ही हमारे सन्मार्ग के प्रदाता।।१।।
अरहंत मेरे मस्तक, आगम हों मेरे चक्षु।
साधु हों मम हृदय में, बन पाएँ हम मुमुक्षु।।२।।
श्रुतदेव गुरु भक्ति , त्रय रत्न की हो शक्ति।
अध्यात्म की हो युक्ति, मंजिल मिलेगी मुक्ति।।३।।
गुरुदेव के बोल लगते, ज्यों कुन्दकुन्द वाणी।
लख उनकी वीर चर्या, तिरे लाखों भव्य प्राणी।।४।।
कर्त्तव्य निष्ठ जीवन, उपकारी हो ये तन-मन।
श्रद्धा सहित हो चिंतन, बने कर्म मुक्त चेतन।।५।।
साधर्मी सब हमारे, बचपन हो या जवानी।
मुक्ति का राज पाने, भव रोग को नशाएँ।।६।।

पाठशाला गीत

उठे सबके कदम तरा रम् पम् पम्, कभी ऐसे गीत गाया करो।
कभी हँसी कभी गम तरा रम् पम् पम्, हँसो और हँसाया करो।
मेरे अच्छे-अच्छे दादा मेरी प्यारी प्यारी दादी
कहानी रोज सुनाया करो।
कभी मैना कभी सुन्दरी, कभी राधा कभी सीता
कभी मुनिवर की सुनाया करो ।।१।।
उठे सब के ....
मेरे अच्छे-अच्छे पापा, मेरी प्यारी-प्यारी मम्मी
कभी चौका लगाया करो।
कभी मुनि, कभी आर्यिका, कभी एलक कभी क्षुल्लक ।
कभी दोनों पड़गाया करो ।।२।।
उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे भैया, मेरी प्यारी-प्यारी बहिना
पाठशाला रोज आया करो ।
कभी भाग कभी छहढाला, कभी सूत्र कभी पाठ।
कभी दोनों पढ़ आया करो ।।३।।
उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे चाचा, मेरी प्यारी-प्यारी चाची
कभी तीरथ कर आया करो।
कभी माँगी,कभी तुँगी, कभी ऊन कभी पावा
कभी शिखरजी कराया करो ।।४।।
उठे सबके ....
मेरे अच्छे-अच्छे भैया, मेरी प्यारी-प्यारी भाभी
कभी मंदिर जी जाया करो
कभी दर्शन, कभी अभिषेक, कभी पूजन कभी स्वाध्याय
कभी दोनों कर आया करो ।।५।।
उठे सबके कदम तरा रम् पम् पम्, कभी ऐसे गीत गाया करो।

पाठ्यक्रम - ५

५ ब | तीर्थङ्कर बनाने वाली भावना-सोलहकारण

सोलहकारण भावना

तीर्थङ्कर नामक महान् पुण्य प्रकृति के बंध में कारणभूत जो सोलह भावनाएँ होती हैं, उन्हें सोलहकारण भावना कहा जाता है।

1. दर्शन विशुद्धि	2. विनय सम्पन्नता
3. शील-व्रतादि का निरतिचार पालन	4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग
5. अभीक्ष्ण संवेग	6. शक्तितस्त्याग
7. शक्तितस्तप	8. साधु समाधि
9. वैयावृत्त्य	10. अर्हत् भक्ति
11. आचार्य भक्ति	12. बहुश्रुत भक्ति
13. प्रवचन भक्ति	14. आवश्यक अपरिहाणि
15. मार्ग प्रभावना	16. प्रवचन वात्सल्य

वातानुकूलता हो या न हो
बातानुकूलता हो या न हो
सुख या दु:ख के लाभ में भी
भला छुपा हुआ रहता है,
देखने से दिखता है समता की आँखों से,
लाभ शब्द ही स्वयं
विलोम रूप से कह रहा है-
ला........भ भ.......ला

1. दर्शन विशुद्धि - यह सोलहकारण भावना में प्रधान है। इसके बिना शेष 15 भावनाएँ निरर्थक हैं। सम्यग्दर्शन का अत्यन्त निर्मल व दृढ़ हो जाना ही दर्शनविशुद्धि है।

2. विनय सम्पन्नता - मोक्ष के साधन भूत सम्यक् ज्ञानादिक में तथा उनके साधक गुरु आदिकों में अपनी योग्य रीति से सत्कार, आदर आदि करना तथा कषाय की निवृत्ति करना विनय सम्पन्नता है।

3. शील-व्रतादि का निरतिचार पालन - अहिंसा आदिक व्रत हैं और इनके पालन करने के लिए क्रोधादिक का त्याग करना शील है। इन दोनों के पालन में निर्दोष प्रवृत्ति करना शीलव्रतेषु अनतिचार भावना है।

4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग - जीवादि पदार्थ रूप स्वतत्त्व विषयक सम्यग्ज्ञान में निरन्तर लगे रहना, निरन्तर ज्ञान का उपयोग करना ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है।

5. अभीक्ष्ण संवेग - संसार के दु:खों से नित्य डरते रहना तथा धर्म, धर्म के फल में जो हर्ष होता है, वह अभीक्ष्ण संवेग है।

6. शक्तितस्त्याग - शक्ति की सीमा को पार न करना और साथ ही अपनी शक्ति को नहीं छिपाना इसे यथाशक्ति कहते हैं और इस शक्ति के अनुरूप त्याग करना ही शक्तितस्त्याग कहा जाता है।

7. शक्तितस्तप - शक्ति को न छिपाकर मोक्षमार्ग के अनुकूल शरीर को क्लेश-कष्ट देना शक्तितस्तप है।

8. साधु समाधि - समाधि का अर्थ मरण है। साधु का अर्थ श्रेष्ठ-अच्छा। अत: श्रेष्ठ-आदर्श मृत्यु को साधु समाधि कहते हैं। हर्ष विषाद से परे आत्म सत्ता की सतत् अनुभूति ही सच्ची समाधि है।

9. वैयावृत्त्य - गुणों में अनुराग पूर्वक संयमी पुरुषों के खेद को दूर करना, पाँव दबाना तथा और भी निर्दोष विधि से उनका कष्ट दूर करना वैयावृत्य है।

10. - 11.अर्हत् भक्ति और आचार्य भक्ति - अर्हत् अर्थात् जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है तथा जो अतिशय पूजा के योग्य हैं। आचार्य जो स्वयं पंचाचार का पालन करते हैं व शिष्यों को पालन करवाते हैं अर्थात् ऐसे अर्हत् एवं आचार्य की बिना किसी इच्छा, अपेक्षा के भक्ति स्तुति गुणगान करना अर्हत् व आचार्य भक्ति है।

12. बहुश्रुत भक्ति - बहुश्रुत का तात्पर्य उपाध्याय परमेष्ठी से है। इनकी पूजा, उपासना या अर्चना करना बहुश्रुत भक्ति कहलाती है।

13. प्रवचन भक्ति - तीर्थङ्कर केवलियों ने अज्ञात और अदृष्ट का अनुभव प्राप्त किया, अत: उनके जो भी वचन खिर गये

वे सरस्वती बन गए, श्रुत बन गए। ऐसे श्रुत के प्रति अनुराग प्रीति होना ही प्रवचन भक्ति है।

14. आवश्यक अपरिहाणि – श्रावक व साधु को अपने उपयोग की रक्षा के लिए नित्य ही छह क्रियाएँ करनी आवश्यक होती हैं, उन आवश्यकों को यथाकाल करना आवश्यक अपरिहाणि है।

15. मार्ग प्रभावना – अहिंसा मार्ग की प्रभावना ही मार्ग प्रभावना है।

16. प्रवचन वात्सल्य – प्रवचन वात्सल्य का अर्थ है साधर्मियों के प्रति करुणा भाव जैसे – गाय बछड़े पर स्नेह करती है। इसी प्रकार साधर्मियों पर स्नेह रखना, साधर्मियों को देखकर उल्लास बढ़ आना प्रवचन वात्सल्य है।

श्रावकों के द्वारा प्रतिदिन करने योग्य- षट् आवश्यक

१. देव पूजा – जल, चन्दनादि अष्ट द्रव्य से वीतरागी देव, अरिहन्तादि पञ्च परमेष्ठियों की आराधना करना, उनका गुणगान करना 'देव-पूजा' आवश्यक है। प्रत्येक गृहस्थ को प्रतिदिन आत्मविशुद्धि के साधनभूत जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिए।

२. गुरुपास्ति – जिन लिंग को धारण करने वाले निर्ग्रन्थ मुनि, आर्यिका, एलक, छुल्लक, छुल्लिका आदि व्रतियों की अपनी शक्ति के अनुसार सेवा, वैयावृत्त्य, पूजन, गुणगान करना गुरुपास्ति आवश्यक कहलाता है।

३. स्वाध्याय – आलस्य को त्याग कर जिनवाणी का अध्ययन करना 'स्वाध्याय' आवश्यक है। पाप से बचने के लिए, धर्म मार्ग में समीचीन प्रवृत्ति करने के लिए श्रावक को प्रतिदिन स्वाध्याय करना ही चाहिए। स्वाध्याय हेतु प्रारम्भ में प्रथमानुयोग के ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए पश्चात् क्षयोपशम के अनुसार आदरपूर्वक गुरुओं के सान्निध्य में शेष अनुयोगों का स्वाध्याय करना चाहिए।

४. संयम – समीचीन रूप से इन्द्रियों को वश में करना तथा त्रस एवं स्थावर जीवों का घात नहीं करना 'संयम' आवश्यक कहलाता है। संयम जीवन में गाड़ी के ब्रेक के समान आवश्यक है।

५. तप – अनशनादि बारह प्रकार के तपों का यथाशक्ति अनुष्ठान करना 'तप' आवश्यक है। अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्वों के दिनों में उपवास अथवा एकासन करना, रसों का त्याग कर भोजन करना, भक्तामर, णमोकार, सोलह कारण आदि के व्रतों का उत्तम, मध्यम, जघन्य रीति से पालना, सीमित समय के लिए गृह का, भोगोपभोग सामग्री का त्याग कर निर्जन स्थान, तीर्थ क्षेत्र आदि स्थानों पर निवास करना इत्यादि ''तप आवश्यक'' कहलाता है।

६. दान – अपने कमाये हुए धन के द्वारा अतिथियों के लिए योग्य वस्तुओं का देना 'दान' आवश्यक है। यह दान पाप को नष्ट करने वाला पुण्य प्रदाता एवं परम्परा से निर्वाण का कारण है।

संस्मरण – एक दिन मैंने आचार्य गुरुवर से पूछा कि- हे गुरुवर! आजकल कुछ लोग अपने आप को सम्यग्दृष्टि एवं चतुर्थ गुणस्थानवर्ती मानते हैं। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती को शुद्धोपयोग होता है ऐसा भी मानते हैं यह क्या उचित है? तब आचार्य श्री जी ने हँसते हुए कहा कि- यह तो आगम विरुद्ध बात हुई ऐसे लोगों को चतुर्थ गुणस्थानवर्ती नहीं बल्कि चतुर गुणस्थानवर्ती मानो। यह है आचार्य महाराज का दृष्टिकोण सामने वाले की चतुराई भी समझ गए और उसे बता भी दिया, लेकिन उसकी निंदा नहीं की बस यही दृष्टिकोण हम सभी धर्मात्माओं का होना चाहिए।

छोटे-छोटे शिष्य हैं पर बड़े होशियार,
विद्यासागर गुरुवर तेरा संघ है विशाल॥
मात्र पिच्छी कमंडल, रखे निज हाथ,
गाड़ी-घोड़ा-पैसा आदि नहीं रखते साथ।
जला रहे गाँव-गाँव धर्म की मशाल॥ विद्यासागर....
सारे भारत में हैं फैले गुरुवर तेरे शिष्य,
कर रहे निज-पर के ये उज्ज्वल भविष्य।
जैन धर्म रक्षण करने बने है ये ढाल॥ विद्यासागर....
ज्ञान सागर गुरुने दिया तुम्हें वरदान,
दीक्षा-शिक्षा देकर तुम को किया बलवान।
किया उत्तम मुनि संघ गुरुको ख्याल॥ विद्यासागर ....

५ स सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्, जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा ग्रहणोत्सवे यदखिल, ज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीतस्तुतिमङ्गलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः ॥१ ॥

अर्थ : (**जिनपतेः**) जिनेन्द्र भगवान् के (**यत्स्वर्गावतरोत्सवे**) जो स्वर्ग से गर्भ में आने के समय किए गए उत्सव में (**यत् जन्माभिषेकोत्सवे**) जो जन्माभिषेक के समय किये गये उत्सव में (**यत् दीक्षाग्रहणोत्सवे**) जो दीक्षा ग्रहण के समय किए गए उत्सव में (**यत् अखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे**) जो केवलज्ञान प्रकट होने के समय किए गए उत्सव में (**यत् निर्वाणगमोत्सवे**) तथा जो मोक्ष प्राप्ति के समय किए गए उत्सव में (**अद्भुतं पूजा अभवत्**) आश्चर्यकारी पूजा हुई थी (**तद्भवैः**) उसमें होने वाले (**सङ्गीतस्तुति-मङ्गलैः**) गाने, बजाने, नाचने वा गुणानुवादरूप मंगलों के द्वारा (**मे सुप्रभातोत्सवः**) मेरा सुप्रभात का उत्सव (**प्रसरतां**) विस्तार को प्राप्त हो।

श्रीमन् नतामर किरीट मणिप्रभाभि,
रालीढपाद युग दुर्द्धर कर्मदूर।
श्रीनाभिनन्दन! जिनाजित! शम्भवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥२ ॥

अर्थ : (**श्रीमन्नतामरकिरीटमणि-प्रभाभिः**) श्रीमान् नम्रीभूत देवों के मुकुट-मणियों की कान्ति से (**आलीढपादयुग!**) व्याप्त दोनों चरण वाले (**दुर्धरकर्मदूर!**) दुर्धर कर्मों से दूर (**श्रीनाभिनन्दन!**) हे श्री नाभिराज के पुत्र आदिनाथ ! (**जिनाजित!**) हे इन्द्रिय विजयी अजितनाथ जिनेन्द्र और (**शम्भवाख्य**) जिनेन्द्र हे संभव नाम वाले जिन! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (अस्तु) हो।

छत्रत्रय प्रचल चामर वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र!
पद्मप्रभा रुणमणि द्युतिभासुराङ्ग।
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥३ ॥

अर्थ : (**छत्रत्रय-प्रचल-चामर-वीज्यमान**) तीन छत्र और ढुरते हुए चञ्चल चँवरों वाले (**देव! अभिनंदनमुने!**) हे देवाधिदेव अभिनंदन मुनीन्द्र! (**सुमते जिनेन्द्र !**) हे सुमतिनाथ जिनेन्द्र भगवान्! तथा (**अरुण-मणि-द्युति-भासुराङ्ग!**) पद्मराग मणि की लाल कान्ति के समान चमकदार है शरीर जिनका ऐसे (**पद्मप्रभ!**) हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

अर्हन्! सुपार्श्व! कदलीदलवर्ण गात्र,
प्रालेयतारगिरि मौक्तिक वर्णगौर।
चन्द्रप्रभ! स्फटिक पाण्डुर पुष्पदन्त!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥४ ॥

अर्थ : (**कदली-दल-वर्ण-गात्र!**) केले के पत्ते के समान हरे रंग के शरीर वाले (**सुपार्श्व! अर्हन्!**) हे सुपार्श्वनाथ! अर्हन्! (**प्रालेय-तार-गिरि-मौक्तिक-वर्ण-गौर**) हिमगिरि रजतगिरि और मोती के समान सफेद रंग वाले (**चन्द्रप्रभ!**) हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! (**स्फटिक -पाण्डुर-पुष्पदन्त!**) स्फटिक के समान निर्मल सफेद रङ्ग वाले हे पुष्पदन्त जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

सन्तप्त काञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य,
श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्ट कलंक पंक।
बंधूक- बंधुररुचे जिनवासुपूज्य,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥५ ॥

अर्थ : (**सन्तप्त-काञ्चनरुचे!**) तपाये हुए स्वर्ण के समान कान्ति के धारक (**जिनशीतलाख्य!**) हे इन्द्रियविजयी शीतलनाथ नामक जिनेन्द्र! (**विनष्ट-दुरिताष्ट-कलङ्क-पङ्क !**) नष्ट किया है पापरूप आठ प्रकार के कर्म-कलङ्क रूपी कीचड़ को जिन्होंने ऐसे (**श्रेयान्!**) हे श्रेयोनाथ जिनेन्द्र ! (**बन्धूक-बन्धुररुचे!**) तथा बन्धूक पुष्प/दुपहरी के फूल के समान लाल कान्ति वाले ऐसे (**जिन वासुपूज्य!**) हे इन्द्रियविजयी वासुपूज्य जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

उद्दण्ड- दर्पकरिपो विमलामलाङ्ग,
स्थेमन् ननन्तजिदनन्त सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्मकल्मष- विवर्जित- धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम् ॥६ ॥

अर्थ : (**उद्दण्ड-दर्पक-रिपो!**) उद्दण्ड/अतिमानी कामदेव के शत्रु अर्थात् कामविजयी (**विमलामलाङ्ग!**) निर्मल शरीर के धारक हे विमलनाथ भगवन्! (**अनन्त-सुखाम्बुराशे!**) अनन्तसुख के समुद्र (**स्थेमन्ननन्तजित्!**) स्थिर/धैर्यशाली ऐसे हे अनन्तजित् भगवन्! (**दुष्कर्मकल्मषविवर्जित-धर्मनाथ!**) दुष्टकर्मरूपी

कालुषता से रहित ऐसे हे धर्मनाथ जिनेन्द्र! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सततं**) हमेशा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**अस्तु**) हो।

देवामरीकुसुम- सन्निभ- शान्तिनाथ,
कुन्थो! दयागुण विभूषण भूषिताङ्ग।
देवाधिदेव भगवन् नरतीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥७॥

अर्थ : (**अमरी-कुसुमसन्निभ!**) अमरी नामक वृक्ष के फूल के समान पीतवर्ण वाले (**देव! शान्तिनाथ!**) हे देवाधिदेव! शान्तिनाथ भगवन्! (**दयागुण-विभूषण-भूषिताङ्ग!**) दयागुणरूपी भूषण से विभूषित है शरीर जिनका ऐसे (**कुन्थो!**) हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र! (**तीर्थनाथ!**) आगम व रत्नत्रय धर्मरूप तीर्थ के स्वामी (**देवाधिदेव!**) देवों के देव (**भगवन् अर!**) हे भगवन् अरनाथ! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

यन्मोह मल्लमद- भञ्जनमल्लिनाथ,
क्षेमङ्करा- वितथशासन- सुव्रताख्य।
सत्सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥८॥

अर्थ : (**यत्**) जो (**मोह-मल्ल-मद-भञ्जन-मल्लिनाथ!**) मोहरूपी मिल्ल के मद का नाश करने वाले ऐसे हे मल्लिनाथ भगवन्! (**क्षेमङ्करा-वितथ-शासन-सुव्रताख्य!**) कल्याणकारी सत्य-शासन है जिनका ऐसे हे मुनिसुव्रत नाम वाले भगवन्! (**सत्संपदा**) श्रेष्ठ सम्पत्ति से (**प्रशमितः**) परमशान्त अवस्था को प्राप्त (**नमिनामधेय**) हे नमिनाथ नामक तीर्थङ्कर! (**त्वद्ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

तापिच्छगुच्छ- रुचिरोज्ज्वल- नेमिनाथ,
घोरोपसर्ग- विजयिन् जिनपार्श्वनाथ।
स्याद्वाद सूक्ति मणिदर्पण वर्द्धमान,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥९॥

अर्थ : (**तापिच्छगुच्छ-रुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!**) तमालवृक्षों के समूह के समान सुन्दर/उज्ज्वल कान्ति के धारक हे नेमिनाथ भगवन्! (**घोरोपसर्ग-विजयिन्**) भयंकर उपसर्ग को जीतने वाले (**जिन! पार्श्वनाथ!**) हे इन्द्रियविजयी पार्श्वनाथ भगवन्! तथा (**स्याद्वाद-सूक्ति-मणि-दर्पण!**) स्याद्वादसिद्धान्तरूपी मणिदर्पणस्वरूप (**वर्धमान!**) हे वर्द्धमान जिनेन्द्र! (**त्वद्-ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

प्रालेयनील हरितारुण पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥१०॥

अर्थ : (**अव्ययं**) अविनाशी (**सुखावसथं**) सुख के स्थान (**सप्ततिशत**) एक सौ सत्तर (**जिनवल्लभानां**) जिनेन्द्र तीर्थङ्करों के (**यन्मूर्तिम्**) जिस शरीर को (**मुनीन्द्राः**) मुनिराज (**प्रालेय-नील-हरितारुण-पीत-भासं**) बर्फ के समान सफेद, नीले, हरे, लाल एवं पीली कांति वाले (**ध्यायन्ति**) ध्यान करते हैं ऐसे हे भगवन् (**त्वद्-ध्यानतः**) आपके ध्यान से (**मम**) मेरा (**सुप्रभातम्**) सुप्रभात (**सततं**) हमेशा (**अस्तु**) हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, मांगल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशति तीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने॥११॥

अर्थ : (**दिने दिन**) प्रत्येक दिन (**चतुर्विंशतितीर्थानां**) चौबीस तीर्थङ्करों का स्मरण (**सुप्रभातं**) अच्छा प्रातःकाल हो (**सुप्रभातं**) वह प्रातःकाल (**सुनक्षत्रं**) उत्तम नक्षत्ररूप (**माङ्गल्यं**) मङ्गल स्वरूप (**परिकीर्तितम्**) कहा गया है।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने॥१२॥

अर्थ : सभी (**देवता**) अर्हन्त देव (**ऋषयः**) मुनिजन और (**सिद्धाः**) सिद्ध भगवान (**दिने दिने**) प्रत्येक दिन (**सुप्रभातं**) सुप्रभात रूप हैं तथा (**सुप्रभातं**) वह सुप्रभात (**सुनक्षत्रं**) उत्तम नक्षत्ररूप तथा (**श्रेयः**) कल्याणकारी (**प्रत्यभिनन्दितम्**) माना गया है।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः!
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व सुखावहम्॥१३॥

अर्थ : (**येन**) जिन्होंने (**भव्यसत्त्वसुखावहम्**) भव्यजीवों को सुख देने वाले (**तीर्थं प्रवर्तितं**) धर्मतीर्थ को चलाया (**तव एकस्य**) आप अद्वितीय/प्रधान (**महात्मनः वृषभस्य**) महान् आत्मा वृषभनाथ भगवान का स्मरण (**सुप्रभातं**) उत्तम प्रातःकाल हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्।
अज्ञानतिमिराधानां, नित्यमस्तमितो रविः॥१४॥

अर्थ : (**नित्यम्**) हमेशा (**स्तमितः रविः**) अस्त हो गया है ज्ञानरूपी सूर्य जिनका ऐसे (**अज्ञानतिमिरान्धानां**) अज्ञानरूपी

अन्धकार से अन्धे मनुष्यों की (**ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम्**) आँखों को ज्ञान से खोलने वाले (**जिनेन्द्राणां**) जिनेन्द्र भगवन्तों का स्मरण (**सुप्रभातं**) सुप्रभात हो।

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवीदग्धाः, शुक्लध्यानोग्र वह्निना ॥१५॥

अर्थ : (**कमललोचनः**) कमल के समान नेत्र वाले (**वीरः**) महावीर प्रभु (**येन**) जिन्होंने (**शुक्लध्यानोग्रवह्निना**) शुक्लध्यानरूपी तेज/तीव्र अग्नि के द्वारा (**कर्माटवी दग्धा**) कर्मरूपी जंगल को जला दिया (**जिनेन्द्रस्य**) ऐसे उन जिनेन्द्र भगवान का (**सुप्रभातं**) सुप्रभात हो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्यहितकर्तृणां, जिनानामेव शासनम् ॥१६॥

अर्थ : (**त्रैलोक्यहितकर्तृणां**) तीन लोक का हित करने वाले (**जिनानाम्**) जिनेन्द्र भगवान का (**शासनम् एव**) शासन ही (**सुप्रभातं**) शुभ प्रभातरूप (**सुनक्षत्रं**) शुभ नक्षत्ररूप (**सुकल्याणं**) शुभ कल्याणरूप और (**सुमंगलम्**) शुभ मङ्गलरूप है।

॥ इति सुप्रभात-स्तोत्रम्॥

- **असंतोष की A B C D से मिलेगा-A= अटेक, B=बी.पी., C=कोलेस्ट्राल, कैंसर, D=डायबिटीज, डिप्रेशन'**

महासती अत्तीमव्वे

चालुक्य वंश के महादण्डनायक वीर नागदेव की पत्नी थी। एक बार नागदेव युद्ध करते हुए शत्रु को खदेड़ते हुए उसे गोदावरी के उस पार तक ले गये थे। पीछे से गोदावरी में भयंकर बाढ़ आ गयी। डर यह था कि शत्रु को यदि बाढ़ का पता लग गया तो वह नागदेव को पीछे खदेड़ देगा और सब नदी में डूबकर मरण को प्राप्त हो जाएँगे। यह भी समाचार आया कि नागदेव जीत तो गये हैं पर अर्द्धमृत से हो गए हैं। सती अत्तीमव्वे उनको अपने खेमे में लाना चाहती थी। परन्तु नदी के उफान के कारण मजबूर थी। वह अचानक तेजी से निकली और नदी के किनारे खड़े होकर कहने लगी कि यदि मैं पक्की जिनभक्त और अखण्ड पतिव्रता होऊँ तो हे गोदावरी नदी! मैं तुझे आज्ञा देती हूँ कि तेरा प्रवाह उतने समय के लिए रुक जाए जब तक हमारे परिवारी जन इस पार नहीं आ जाते।

तुरंत ही नदी का प्रवाह घट गया और स्थिर हो गया। वह गई और अपने पति को ले तो आई पर बचा न सकी। शेष जीवन उसने उदासीन धर्मात्मा श्राविका के रूप में घर में बिताया। उसने स्वर्ण एवं रत्नों की 1500 जिन प्रतिमाएँ बनवाकर विभिन्न मंदिरों में विराजमान कीं। महाकवि पोन्न के शांतिपुराण की कन्नड़ भाषा में 1000 प्रतियाँ लिखाकर शास्त्र भण्डारों में वितरित कीं। निरंतर दान देने के कारण उसे 'दान चिंतामणि' कहा जाता था। उपर्युक्त कथा शिलालेख से प्रमाणित है।

सारांश : जिनभक्ति एवं उत्तम दान से हर कार्य आसान हो जाता है। अतः भक्ति एवं दान हमेशा शक्ति अनुसार करते रहना चाहिये।

भजन

नाम जब से तुम्हारा वरण कर लिया।
दर्श ने दर्द का परिहरण कर लिया ।।
एक ठोकर लगा दो तो तर जाएँगे।
दूर क्यों तुमने अपना चरण कर लिया।।
सत्य अहिंसा की तुम एक तस्वीर हो।
इस नए दौर के आप महावीर हो।।
आप पर गर्व करती है माँ भारती।
खुद हिमालय करे आपकी आरती।।
मुक्ति मारग की ओर चरण कर लिया।
दर्श ने दर्द का परिहरण कर लिया।।

रोज परीक्षा

क्षमता को नापने का नाम परीक्षा है, रोज-रोज परीक्षा प्रतिभा में निखार लाती है जो अपनी पढ़ाई के प्रति सजग है उसे परीक्षा भार नहीं उत्सव का दिन लगता है विद्यार्थी जीवन परीक्षाओं से भरा हुआ है।

जब विद्याधर स्कूल में पढ़ते थे, छुट्टी के १५ मिनट पहले शिक्षक बोलते थे अपने-अपने बस्ते बाँध लें और खड़े हो जाएँ, फिर मौखिक परीक्षा होती थी यह प्रतिदिन का कार्य था।

विद्याधर ने मुनि दीक्षा स्वीकार कर आचार्य विद्यासागर बन बचपन के अभ्यास को कायम बनाए रखे हैं और बाईस परीषह की रोज परीक्षा दे रहे हैं एवं पास होते जा रहे हैं। अपने शिष्यों को भी परीक्षा में बिठा रखे हैं और कह रखा है नम्बर पूरे आना चाहिए।

पाठ्यक्रम - ६

६ अ | दुःख के पाँच साधन - पाप

पाप का स्वरूप -

जिन कार्यों को करने से जीव दुर्गति का पात्र बनता है, उसे इस लोक में व परलोक में निन्दा तथा धिक्कार के साथ-साथ अनेक कष्टों को सहन करना पड़ता है, उसे पाप कहते हैं।

पाप के भेद -

पाँच पाप -१. हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी
४. कुशील (अब्रह्म) और ५. परिग्रह है।

हिंसा पाप -

प्रमाद के कारण किसी दूसरे जीव के अथवा स्वयं के प्राणों का घात करना हिंसा पाप कहलाता है। इस पाप को करने वाले हिंसक, क्रूर, निर्दयी, हत्यारे कहलाते हैं। किसी को मार-पीट कर दुखी करना, धर्म मानकर पशु आदि की बलि चढ़ाना, पुतला जलाना, मिठाई आदि में पशु का आकार बनाकर काटना, खाना, वीडियों गेम में चिड़िया आदि मारना हिंसा पाप है।

मुझे है काम ईश्वर से

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठन दे,
बैठ संगत में संतन की, करूँ कल्याण मैं अपना।
लोग दुनिया के भोगों में, मौज माने तो लूटन दे,
मुझे है काम ....
कुटुंब परिवार सुत दारा, लाज लोकन की छूटन दे,
प्रभु के भजन करने में, अगर छूटे तो छूटन दे
स्वयं के ध्यान करने की, लगी दिल में लगन मेरे,
मुझे है काम ....
धरि सिर पाप की मटकी, मेरे गुरुदेव ने झटकी,
वो 'ब्रह्मानंद' ने पटकी, अगर फूटे तो फूटन दे।
प्रीत संसार विषयों से, अगर टूटे तो टूटन दे ।।
मुझे है काम ....

हिंसा से बचने के उपाय -

1. राग-द्वेष बढ़ाने वाले कुटिल विचारों को छोड़ना चाहिए।
2. चलते समय नीचे देखकर चलना चाहिए।
3. वस्तुओं को उठाते-रखते समय सावधानी रखना चाहिए।
4. रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए अर्थात् सूर्य प्रकाश में ही भोजन-पान करना चाहिए।
5. त्रस जीवों की रक्षा का शक्त्यानुसार संकल्प लेना चाहिए।
6. हिंसा परिणामों को उत्पन्न करने वाले सिनेमा आदि नहीं देखना चाहिए।
7. बिना प्रयोजन घूमना नहीं, पानी फेंकना नहीं एवं पेड़-पौधों, फूल, पत्ती आदि तोड़ना नहीं चाहिए।

झूठ पाप -

जिस बात या जिस घटना को जैसा सुना अथवा देखा हो वैसा न कहकर अन्य प्रकार से कहना ''झूठ पाप'' कहलाता है। जिन वचनों के कहने से किसी अन्य पर विपत्ति आ जावे, किसी के प्राणों का घात हो जावें, ऐसा सत्य वचन भी झूठ कहलाता है।

झूठ के अन्य रूप -

मर्मच्छेदी वचन, कठोर वचन, उद्वेगकारी वचन, बैरोत्पादक, कलहकारी वचन, भयोत्पादक तथा अवज्ञाकारी वचन- इस प्रकार के अप्रिय वचन, हास्य, भीति, लोभ, क्रोध, द्वेष इत्यादि कारणों से बोले जाने वाले वचन सब असत्य भाषण (झूठ) है। झूठ, अनृत, असत्य ये एकार्थवाची हैं।

झूठ पाप से बचने हेतु निम्न कार्य करना चाहिए।

१. हमेशा सत्य बोलना चाहिए क्योंकि एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ और बोलना पड़ता है।
२. क्रोध और लोभ का त्याग करना चाहिए क्योंकि इन कारणों से भी व्यक्ति झूठ बोलता है।

३. हमेशा निर्भय रहना चाहिए।

४. व्यर्थ की हँसी – मजाक, वाद–विवाद नहीं करना चाहिए।

५. आगम के अनुसार हित–मित–प्रिय वचन बोलना चाहिए।

जिस पर जो गुजरी है उसे भूल जाना चाहिए।
छोटी–सी जिन्दगी है सदा मुस्कराना चाहिए।।

६. तू मूर्ख है, अज्ञानी है इत्यादि कठोर वचन, तू अंधा है लगड़ा है, इत्यादि कठोर वचन नहीं बोलना चाहिए।

७. झूठा उपदेश देना, पत्र पत्रिकाओं में गलत बात छापना, दूसरों की निन्दा इत्यादि कार्य नहीं करना चाहिए।

चोरी पाप –

बिना दिए किसी की गिरी, रखी या भूली हुई वस्तु को ग्रहण करना अथवा उठाकर किसी को दे देना चोरी पाप है।

चोरी महापाप –

धन को मनुष्य का बारहवां प्राण कहा है जिसका धन हरण किया जाता है उसको जैसा मरने में दु:ख होता है वैसा ही दु:ख धन के नाश हो जाने पर होता है। आचार्यों ने सुअर का घात करने वाले, मृगादिक को पकड़ने वाले तथा परस्त्री गमन करने वाले से भी अधिक पापी ''चोर'' को कहा है।

चोरी के अन्य रूप –

चोरी करने के उपाय बताना, चोरी का माल खरीदना, राज्य नियमों के विरुद्ध कालाबजारी करना, टेक्स चुराना, मापने व तौलने के उपकरणों में कमती बढ़ती रखना, मिलावट करना, अन्याय पूर्वक धन कमाना इत्यादि चोरी पाप के ही अन्य रूप है।

चोरी से बचने हेतु निम्न कार्य करना चाहिए –

१. बिना पूछे, आज्ञा लिए किसी के स्वामित्व की वस्तु नहीं लेना।

२. आवश्यकता से अधिक वस्तु को ग्रहण नहीं करना।

३. विक्रय कर, आय कर, बिजली पानी आदि के बिल का भुगतान करना।

४. दूसरे की वस्तु पर अपना स्वामित्व नहीं जमाना।

५. सधर्मियों के साथ विसंवाद नहीं करना।

कुशील पाप –

जिनका आपस में विवाह संबंध हुआ हो, ऐसे स्त्री–पुरुषों का एक दूसरे को छोड़कर अन्य किसी पुरुष अथवा स्त्री से संबंध रखने को (रमण करने को) कुशील पाप कहते हैं। **स्त्री पुरुष की राग जन्य चेष्टा, गाली बकना, बुरा आचरण करना अथवा विवाह के पूर्व लड़के-लड़कियों का वासना की दृष्टि से एक–दूसरे को मित्र बनाना, छूना, स्कूल कोचिंग में एक–दूसरे से हाथ मिलाकर बात करना, एक दूसरे को ताली देना (हाई फाई), हाथ पकड़ना, गले में हाथ डालना, चुम्बन लेना, देखना इत्यादि कुशील पाप है।**

बड़ा कौन

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के दो शिष्यों में महा विवाद छिड़ गया कि उनमें से बड़ा कौन है? दोनों एक–दूसरे को छोटा बता रहे थे। विवाद का जब अन्त न हुआ तो वे दोनों शिष्य स्वामी जी के पास गए। उन्होंने दोनों शिष्यों की समस्या को सुना स्वामी जी ने उत्तर दिया अरे! इसका हल तो बड़ा सरल है। तुममें से जो दूसरे को बड़ा समझे वही बड़ा है। फिर तो विवाद का स्वरूप ही बदल गया। अब वे दोनों शिष्य एक–दूसरे को बड़ा कहने लगे।

कुशील पाप के कारण –

स्त्री संबंधी विषयों की अभिलाषा रखना, अनंग क्रीड़ा, शरीर को संस्कारित करना, राग वर्धक गंदे चित्र, फिल्म, नाटक आदि देखना, वेश्या गमन करना इत्यादि अब्रह्म पाप के कारण है।

कुशील पाप के बचने के उपाय –

अब्रह्म पाप से बचने के लिए निम्न उपाय हैं:-

१. वृद्धा, बाला और यौवन अवस्था वाली स्त्री को देखकर अथवा उनकी तस्वीरों को देखकर माता, पुत्री, बहन समान समझ स्त्री सम्बन्धी कथादि का अनुराग छोड़ना। एवं इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा पुरुष में रागवर्धक वार्ता को छोड़ना।

२. शरीर की मलिनता, क्षणभंगुरता का विचार करना।

३. इष्ट एवं गरिष्ट पदार्थों का सेवन नहीं करना।

४. जो स्व को इष्ट हो परन्तु शिष्ट जनों के द्वारा धारण करने योग्य नहीं हैं ऐसे विचित्र प्रकार के वस्त्र, वेशभूषा, आभरण आदि का त्याग करना।
५. व्यभिचारी एवं कामी पुरुषों की संगति नहीं करना। विधर्मी लड़की-लड़कों की संगती नहीं करना।

परिग्रह पाप -

जमीन, मकान, धन, धान्य, गाय, बैल इत्यादि पदार्थों के प्रति मूर्च्छा (आसक्ति) रूप परिणाम रखना, 'यह मेरा है मैं इसका स्वामी हूँ' इस प्रकार का ममत्व परिणाम परिग्रह है।

परिग्रह के दो भेद है १. बाह्य परिग्रह एवं २. अंतरंग परिग्रह

बाह्य परिग्रह दस प्रकार का है - क्षेत्र (खेतादि), वास्तु (मकानादि), हिरण्य (चांदी), सुवर्ण(सोना), धन (गौ आदि पशु), धान्य (गेहूँ आदि), दासी, दास, कुप्य (वस्त्र, किराना आदि), भाण्ड (बर्तनादि)

अंतरंग परिग्रह चौदह प्रकार का है - मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुष वेद और नपुंसक वेद।

परिग्रह के अन्य रूप -

आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह करना, सत् कार्यों में धन का उपयोग नहीं करना, दिन रात धन इकट्ठा करने की चिंता करना इत्यादि सब परिग्रह पाप के ही कारण समझना चाहिए।

परिग्रह पाप से बचने के निम्न उपाय है -

१. परिग्रह परिमाण व्रत ग्रहण कर संतोष धारण करना।
२. अपनी इच्छाओं, पंचेन्द्रिय के विषयों को सीमित करना।
३. धन के कारण उत्पन्न दुःख, विपत्ति आदि का चिन्तन करना।
४. जीवन, धन, यौवन की नश्वरता के विषय में सोचना।
५. पंचेन्द्रिय के अच्छे-बुरे विषयों में राग-द्वेष नहीं करना।
६. जिन सूत्र - जिनवाणी का अध्ययन, स्वाध्याय करना।
७. अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वो के दिन गृह त्याग, पूर्ण परिग्रह त्याग रूप व्रत को स्वीकारना।

- **असीम सम्पत्ति अपने साथ भय को अवश्य लाती है, भयभीत व्यक्ति को सुख कहाँ?**
- **आत्मीय संबंध केवल समयदान से जीवित रहते हैं मोबाईल की घंटी बजते ही सारे आत्मीय संबंध टूट जाते हैं।**
- **तन को नहीं, तन में देखो तभी, चेतन दिखे ।**
- **घड़ी को नहीं, घड़ी में देखो तभी, वक्त ज्ञात हो।**

करनी का परिणाम

एक गरीब किसान था, वह आजीविका के लिए खेती करता था, किन्तु फसल अच्छी नहीं होने के कारण बेचारा परेशान रहता था।

एक दिन गर्मी के मौसम में वह खेत में पेड़ की छाया में बैठा था। तभी सामने बिल में से सर्प निकला और फण उठाकर खड़ा हो गया। उसके मन में आया कि इस सर्प की सेवा करें तो मेरी फसल अच्छी होगी।

यह सोचकर वह दूध लाया और एक बर्तन में डालकर बिल के पास रख आया। दूसरे दिन वह बर्तन देखने जाता तो उसमें दूध नहीं था और बर्तन में एक सोने की मुहर पड़ी थी। वह रोज ऐसा ही करने लगा।

एक दिन उसे किसी काम से बाहर जाना था, वह सोचता दूध कौन रखेगा? बहुत सोचकर उसने अपने बेटे से कहा कि बेटा खेत पर जाना और उस स्थान पर दूध रख आना। बेटे ने ऐसा ही किया। बेटे ने दूसरे दिन देखा बर्तन में एक सोने की मुहर है। मुहर देख वह सोचता है इसके बिल में बहुत सी मुहरें होंगी। उन्हीं में से एक-एक मुहर सर्प लाकर देता है, इसलिए इसे मारकर सारी मुहरें एक साथ प्राप्त कर लेनी चाहिए।

वह दूसरे दिन दूध लेकर गया और वहीं खड़ा हो गया। सर्प दूध पीने आया तो उसने एक बड़ा-सा डंडा फेंक कर मारा किन्तु निशाना चूक गया। सर्प ने शीघ्र ही चलकर उस बेटे को काट लिया जिससे वह थोड़ी देर के बाद मर गया।

जब उसका पिता वापस आया और उसने बेटे की करनी और मृत्यु का समाचार सुना तो उसे बहुत दुःख हुआ। पर उसने कहा जो जैसा करता है उसे वैसा ही फल मिलता है।

पाठ्यक्रम - ६

६ ब प्रथम तीर्थङ्कर-ऋषभदेव (भगवान आदिनाथ)

वर्तमान अवसर्पिणी काल में भरत क्षेत्र में जो चौबीस तीर्थङ्कर हुए उनमें सर्वप्रथम धर्मतीर्थ प्रवर्तक ऋषभ देव हुए। उनका संक्षिप्त जीवन परिचय इस प्रकार है-

वज्रजंघ और श्रीमति (ऋषभदेव व राजा श्रेयांस के पूर्व भव के जीव) ने पुण्डरीकिणी पुरी को जाते समय सरोवर के तट पर मुनि युगल के लिए आहार दान दिया, जिसके फलस्वरूप सम्यक्त्व रहित होने से मरण होने पर उत्तम भोग भूमि उत्तर कुरु क्षेत्र में आर्य-आर्या हुए तथा वहाँ पर प्रीतिंकर नामक मुनिराज से संबोधन प्राप्त कर उन्होंने सम्यग्दर्शन धारण किया एवं मरण कर स्वर्ग गए। पुन: वज्रसेन तीर्थङ्कर के पुत्र वज्रनाभि की पर्याय में चक्रवर्तित्व को प्राप्त कर पुन: राज-पाट त्याग कर दिगम्बर दीक्षा धारण कर सोलह कारण भावना भाते हुए तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। आयु के अन्त समय में सल्लेखना पूर्वक मरण कर सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए। वे ही अगले भव में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव हुए।

अंतिम कुलकर नाभिराय और उनकी पत्नी मरुदेवी से ऋषभदेव का जन्म अयोध्या नगरी में हुआ। इन्हें वृषभनाथ व आदिनाथ भी कहते हैं। इस युग में जैनधर्म का प्रारंभ इन्हीं से माना जाता है। भोगभूमि के अवसान होने पर जबकि कल्पवृक्षों ने भोग्य सामग्री देना बंद कर दी तब उन्होंने आजीविका के साधनभूत असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प इन छह कर्मों की विशेष रूप से व्यवस्था की तथा देश, नगरों को सुविभाजित कर संपूर्ण भारत को ५२ जनपदों में विभाजित किया। लोगों को कर्मों के आधार पर इन्होंने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की व्यवस्था दी, इसीलिए इन्हें प्रजापति कहा जाने लगा।

ऋषभदेव की दो पत्नियाँ थीं सुनन्दा और नन्दा। इनके सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें सुनंदा से भरत और ब्राह्मी तथा नंदा से बाहुबली और सुंदरी प्रमुख हैं। इन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुंदरी नामक दोनों पुत्रियों को क्रमश: अक्षर और अंक विद्या सिखाकर समस्त कलाओं में निष्णात किया। ब्राह्मी लिपि का प्रचलन तभी से हुआ। आज की नागरी लिपि को विद्वान उस ही का विकसित रूप मानते हैं।

एक दिन राजमहल में नीलांजना नामक देवी अप्सरा (नृत्यागंना) की नृत्य करते हुए आकस्मिक मृत्यु हो जाने से इन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया। फलत: अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को समस्त राज्य का भार सौंपकर दिगम्बरी दीक्षा धारण कर वन को तपस्या करने चले गए। दीक्षा के बाद वे छह माह तक ध्यान में बैठे रहे तथा उसके बाद छह-सात माह तक विधी पूर्वक आहार न मिलने से अन्तराय होता रहा। अत: लगभग १ वर्ष पश्चात् राजा श्रेयांस के यहाँ मुनिराज का आहार हुआ। आहार में मात्र इक्षु रस ही लिया। एक हजार वर्ष की कठोर तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उन्होंने कैवल्य (सम्पूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर समस्त भारत भूमि को अपने धर्मोपदेश से उपकृत किया। चूंकि उन्होंने अपने समस्त घातिया कर्मों को जीत लिया था, इसीलिए वे जिन कहलाए तथा उनके द्वारा प्ररूपित धर्म ''जैन-धर्म'' कहलाने लगा। अपने जीवन के अंत में तृतीय सुषमा-दुषमा काल की समाप्ति के तीन वर्ष आठ माह पन्द्रह दिन शेष रहने पर कैलाश पर्वत से मोक्ष प्राप्त किया।

भरत बहुत प्रतापी राजा हुए। उन्होंने अपने दिग्विजय द्वारा सर्वप्रथम चक्रवर्ती पद प्राप्त किया। दीक्षा लेते ही उन्हे अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था, कैलाश पर्वत से वे मोक्ष पधारे।

- भगवान ऋषभदेव के शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष थी एवं आयु ८४ लाख पूर्व थी। शरीर का वर्ण स्वर्ण सदृश था।
- भगवान ऋषभदेव के समवशरण का विस्तार १२ योजन था। इनके ८४ गणधर थे, जिनमें प्रमुख ऋषभ सेन थे।

कल का दिन देखा किसने।
आज का दिन खोय क्यों?
जिन घड़ियों में हँस सकते हैं।
उन घड़ियों में रोय क्यों।।

पाठ्यक्रम - ६

६ स | हमारे परम आराध्य (देव-गुरु-शास्त्र)

ज्ञानावरणादि कर्मों का तथा रागादि दोषों का जिनमें अभाव पाया जाए वे देव हैं। अरिहंत देव क्षुधादि अठारह दोषों से रहित, वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी होते हैं निम्नलिखित अठारह दोष अरिहंत के नहीं होते हैं-

१.	क्षुधा रहित	-	आहारादि की इच्छा, भूख का अभाव।
२.	तृषा रहित	-	पानी की इच्छा, प्यास का अभाव।
३.	भय रहित	-	किसी भी प्रकार का डर उत्पन्न नहीं होना।
४.	राग रहित	-	प्रेम, स्नेह, प्रीति रूप परिणामों का अभाव।
५.	द्वेष रहित	-	द्वेष, शत्रुता रूप परिणामों का अभाव।
६.	मोह रहित	-	गाफिलता, विपरीत ग्रहण करने रूप भावों का अभाव।
७.	चिन्ता रहित	-	मानसिक तनाव का नहीं होना।
८.	जरा रहित	-	दीर्घ काल तक जीवित रहने पर भी बुढ़ापा नहीं आना।
९.	रोग रहित	-	शारीरिक व्याधियों का अभाव।
१०.	मृत्यु रहित	-	पुनर्जन्म कराने वाले मरण का अभाव।
११.	खेद रहित	-	मानसिक पीड़ा/ पश्चात्ताप का नहीं होना।
१२.	स्वेद रहित	-	पसीना आदि मलों का शरीर में अभाव।
१३.	मद रहित	-	अहंकारपने का अभाव, गर्व, घमंड रहितता।
१४.	अरति रहित	-	किसी भी प्रकार की पीड़ा/ दु:ख नहीं होना।
१५.	जन्म रहित	-	पुनर्जन्म, जीवन धारण नहीं करना।
१६.	निद्रा रहित	-	प्रमाद, थकान जन्य शिथिलता का न होना।
१७.	विस्मय रहित	-	आश्चर्य रूप भावों का नहीं होना।
१८.	विषाद रहित	-	उदासता रूप भावों का अभाव।

न बोलने में बोलने से अधिक भला छुपा है।

खुद को देखा, प्रभु दर्पण में सो, प्रभुता दिखे ।

तत्वाभ्यास की धुन

समाधि तंत्र में उदाहरण दिया कि माँ और बेटा मेले में जाते हैं लेकिन बेटे की अंगुली छूट जाती है तो बेटा रोने लगता है। उसे रोते देखकर सभी उससे पूछते हैं कि बेटा कहाँ रहता है? तो वह कहता है- माँ। बेटा कुछ खाना है? माँ। कुछ पीना है? माँ। अरे पागल हो, बुद्धु हो, कुछ समझता नहीं कि मैं कुछ पूछ रहा हूँ, बस माँ माँ की रट लगा रखी है। तब भी बालक माँ ही कहता जाता है। अत: उसे माँ के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखता।

ठीक जैसे बेटे को माँ की धुन है, ऐसे ही यदि हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति करना है तो तत्वाभ्यास की धुन लगना चाहिए।

इन राग - द्वेष रूप अशुभ परिणामों के क्षय हो जाने पर जीव वीतरागी-वीतद्वेषी कहा जाता है। जिन्होंने सभी प्रकार के धन-धान्य, सोना-चाँदी, घर-परिवार, दुकान, आभूषण, वस्त्रादि का त्याग कर दिया है। जो षट्काय के जीवों की विराधना के कारणभूत किसी भी प्रकार का ''सावद्य-कार्य'' नहीं करते तथा जिन्होंने अपने आत्म तत्व की उपलब्धि हेतु जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित मोक्षमार्ग को स्वीकार किया है, ऐसे निर्ग्रन्थ श्रमण भी वीतरागता के उपासक होने से वीतरागी कहे जाते हैं।

हमें वीतरागी भगवान को ही नमस्कार करना चाहिए। उनकी ही स्तुति, वंदना, पूजन करनी चाहिए। अन्य रागी-द्वेषी देवी-देवता हमारे आराध्य नहीं हो सकते, इनकी आराधना घोर संसार का कारण एवं अति दु:ख का कारण है। भगवान हमारे लिए आदर्श, पथ-प्रदर्शक हुआ करते हैं। उनके दर्शन से हमें अपने शुद्ध स्वरूप, स्वभाव का ज्ञान होता है यदि भगवान कहे जाने वाले भी सामान्य मनुष्यों के समान ही विषय-भोगों में लीन हैं, स्त्रियों से सहित हैं, दूसरों की हिंसा करने में रत हैं, नाना-आभूषणों से श्रृंगारित हैं, अस्त्र-शस्त्र अपने पास रखते हैं तो हममें और उनमें क्या विशेष अंतर रहा, हम उनके दर्शनों से क्या प्राप्त कर सकते हैं ? कुछ भी नहीं। यदि आप कहें इससे उनका शक्तिशाली होना, ऐश्वर्यता, स्वामीपना प्रगट होता है वे हमें भी

सुखी बना सकते हैं, हमारे दु:खों को दूर कर सकते हैं तो फिर राजा-महाराजा, धनपति सेठ आदि भी भगवान माने जाएँगे उनकी भी पूजा करनी पड़ेगी वह ठीक नहीं किन्तु जो हमारे पास है ऐसे राग-द्वेष, धनादि से रहित वीतरागी प्रभु के दर्शन से ही आत्मिक शांति की उपलब्धि दु:खों का नाश एवं सत्य का ज्ञान हो सकता है।

सर्वज्ञ - ज्ञानावरणादि चार घातिया कर्मों के क्षय से जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है जिनके ज्ञान में तीन लोक के समस्त चराचर पदार्थ युगपत हाथ में रखी स्फटिक मणी के समान झलकते हैं, वे सर्वज्ञ कहलाते हैं।

हितोपदेशी - पूर्ण ज्ञानी होकर संसार के प्राणियों के आत्म कल्याणार्थ हित-मित-प्रिय वचनों के माध्यम से उपदेश देने वाले प्रभु हितोपदेशी कहलाते हैं।

सच्चे शास्त्र - वीतरागी श्रमणों द्वारा रचित ग्रन्थ सम्यक् मोक्षमार्ग का कथन करने वाले, प्राणी मात्र के हित का जिसमें उपदेश हो ऐसे ग्रन्थ सच्चे शास्त्र कहलाते हैं।

सच्चे गुरु- विषयों की आशाओं से अतीत, निरारम्भी, निष्परिग्रही, ज्ञान, ध्यान, तप में लीन, दिगम्बर मुद्राधारी मुनि सच्चे गुरु कहलाते हैं।

● **इच्छा के निरोध से ही सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए बड़े-बड़े योगीश्वर लोग अपनी इच्छाओं का निरोध ही करते हैं। यही कारण है कि चतुर्निकाय के देव आकर उनके चरणों को नमस्कार करते हैं।**

गोम्मटेस-थुति (प्राकृत)

विसट्ट- कंदोट्ट दलाणुयारं, सुलोयणं चंद- समाण- तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥1॥

अर्थ : जिनके **(सुलोयणं)** सुन्दर नेत्र **(विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं)** विकसित नीलकमल के दल (भीतरी भाग) का अनुशरण करने वाले हैं **(तुण्डं)** मुख **(चंद-समाण)** चन्द्रमा के समान सौम्य है तथा **(चम्पय-पुप्फसोहं)** चम्पक पुष्प की शोभा को जिनकी **(घोणा-जियं)** नासिका ने जीत लिया है **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

अच्छाय-सच्छं जलकंत-गंडं, आबाहु-दोलंत-सुकण्ण-पासं।
गइंद-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥2॥

अर्थ : जिनके (गंडं) कपोल (गाल) **(जलकंत)** जल के समान स्वच्छ कान्ति वाले **(सुकण्ण-पासं)** सुन्दर दोनों कान **(आबाहु दोलंत)** कन्धों तक दोलायित/लम्बे **(बाहुदण्डं)** दोनों भुजाएँ **(गइंद-सुण्डुज्जल)** गजराज की सूंड़ के समान सुन्दर लंबी थी **(तं)** उन **(अच्छाय-सच्छं)** आकाश के समान निर्मल **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

सुकण्ठ-सोहा-जिय दिव्व-संखं, हिमालयुद्दाम-विसालकंधं।
सुपेक्खणिज्जायलसुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥3॥

अर्थ : (सुकण्ठ-सोहा) मनोहारी कंठ की शोभा से जिन्होंने **(जिय-दिव्व संखं)** अनुपम शंख की शोभा को जीत लिया है **(हिमालयुद्दाम-विसाल-कंधं)** हिमालय के समान उन्नत कंधे और विशाल हृदय वाले हैं तथा जिनका **(सुट्ठुमज्झं)** सुन्दर मध्यभाग/कटिप्रदेश **(सुपेक्खणिज्जायल)** अच्छी तरह से देखने योग्य और निश्चल है **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

विंझायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व- सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय- पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥4॥

अर्थ : (सव्व-सुचेदियाणं) सभी सुन्दर चैत्यों के **(सिहामणि)** शिखामणि तथा **(विंझायलग्गे)** विन्ध्यगिरि के अग्रभाग/शिखर में **(पविभासमाणं)** प्रकाशमान/शोभायमान **(तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं)** तीन लोक के जीवों को आनन्द देने में पूर्ण चन्द्रमास्वरूप **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

लया-समक्कंत-महासरीरं, भव्वा-वलीलद्ध-सुकप्प-रुक्खं।
देविंद-विंदच्चिय-पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥5॥

अर्थ : (लया-समक्कंत-महासरीरं) लताओं से व्याप्त विशाल शरीर वाले **(भव्वावलीलद्ध-सुकप्परुक्खं)** भव्यसमूह के लिये प्राप्त हुए श्रेष्ठ कल्पवृक्ष स्वरूप तथा **(देविंदविंदच्चिय-**

पायपोम्मं) देवेन्द्रों के द्वारा अर्चित/पूजित चरणकमल वाले **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दियंबरो जो ण च भीइ- जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि-जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥6 ॥

अर्थ : (जो दियंबरो) जो दिगम्बर हैं **(भीइजुत्तो)** भय युक्त **(ण)** नहीं हैं अर्थात् निर्भय हैं **(च)** और **(अंबरे)** वस्त्र में **(सत्तमणो ण)** आसक्त मन वाले नहीं हैं **(विशुद्धा)** विशुद्ध हैं **(च)** और **(सप्पादि-जंतुप्फुसदो)** सर्पादि जंतुओं के स्पर्श से भी **(कंपो ण)** कम्पायमान नहीं हैं **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण वंछा हयदोसमूलं।
विरायभावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥7 ॥

अर्थ : (जो सच्छदिट्ठि) जो निर्मल समदृष्टि **(आसां)** आशा-तृष्णा को **(पोक्खदि ण)** पुष्ट नहीं करते **(हयदोसमूलं)** दोषों के मूल कारण मोह को नष्ट करने वाले **(सोक्खे)** इन्द्रिय सुख में **(वंछा ण)** इच्छा रहित **(विरायभावं)** विरागभाव वाले और **(भरह)** भरत भाई में **(विसल्लं)** शल्य रहित हैं **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

उपाहि-मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय- मोह- हारयं।
वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं ॥8 ॥

अर्थ : जो **(उपाहिमुत्तं)** उपाधियों/वस्त्राभूषणों/संयोगों से रहित **(धण-धाम-वज्जियं)** धन मकानादि बाह्य परिग्रह रहित **(सुसम्मजुत्तं)** समताभाव सहित **(मय-मोह-हारयं)** मद व मोह को हरण/नष्ट करने वाले तथा **(वस्सेय-पज्जंतुववास-जुत्तं)** एक वर्ष पर्यन्त उपवास धारण करने वाले **(तं)** उन **(गोम्मटेसं)** गोम्मट (चामुण्डराय) के स्वामी बाहुबली को **(णिच्चं)** सदा **(पणमामि)** मैं नेमिचन्द्राचार्य प्रणाम करता हूँ।

दीपक और तलवार

भरत चक्रवर्ती के पास एक बार एक जिज्ञासु पहुँचा। उसे इस बात में संदेह था कि भरत चक्रवर्ती हैं, 96 हजार रानियाँ हैं, फिर भी इतना बड़ा तत्त्वज्ञ और सम्यग्दृष्टि कैसे? वह चक्रवर्ती के पास पहुँचा और कहा कि ''प्रभु! मैं आपके जीवन का रहस्य जानना चाहता हूँ। मैं एक से परेशान हूँ आप 96 हजार को कैसे संभालते हैं? फिर भी निस्पृह और अनासक्त कैसे बने हो? चक्रवर्ती ने सुना और कहा तुम्हारी बात का जवाब मैं बाद में दूँगा, पहले एक काम करो मेरे रनवास में घूम आओ और देखो वहाँ क्या-क्या है। एक बार देख लो फिर मैं बताऊँगा कि मेरे जीवन का रहस्य क्या है।

वह बड़ा प्रसन्न हुआ कि आज चक्रवर्ती के रनवास में घूमने का मौका मिलने वाला है। जैसे ही वह जाने को हुआ तो चक्रवर्ती ने कहा सुनो ऐसे नहीं, उसके हाथ में एक दीप पकड़वाया गया। और कहा इस दीपक के प्रकाश में तुम्हें पूरे रनवास का चक्कर लगाकर आना है, पर एक शर्त है, ये चार तलवारधारी तुम्हारे चारों ओर हैं। रास्ते में न तो दीपक बुझना चाहिए, न ही एक बूँद तेल गिरना चाहिए। यदि दीपक बुझा तो तुम्हारे जीवन का दीपक बुझ जाएगा और तेल गिरा तो तुम्हारी गर्दन भी नीचे गिर जाएगी। उसने सोचा फँस गए अब तो। पर क्या किया जाए चक्रवर्ती के साथ उलझा था और कोई मार्ग नहीं था। बड़ी सावधानी के साथ वह पूरे रनवास का चक्कर लगाकर आया और जैसे ही चक्रवर्ती के पास पहुँचा, इससे पहले कि वह कुछ कहे, चक्रवर्ती ने पूछा बताओ तुमने क्या-क्या देखा?

उसने कहा महाराज तलवार और दीपक के अलावा और कुछ नहीं देखा तो चक्रवर्ती ने कहा कि ''यही है मेरे जीवन का रहस्य। तुम्हें ये भोग और विलास दिखते हैं मुझे अपनी मौत की तलवार दिखती है।'' यदि मौत की तलवार देखते रहोगे तो जीवन में कभी अनर्थ घटित नहीं होगा। हर व्यक्ति को ऐसी प्रतीति करना चाहिए, हर व्यक्ति को अपने अंदर ऐसा विवेक जागृत करना चाहिए, ऐसा बोध हमारे अंदर प्रकट होता है तभी पाप से अपने आप छुटकारा मिल सकता है।''

अभ्यास

१. त्रस एवं स्थावर जीव किसे कहते हैं? वे कौन-कौन से हैं?
२. दूरान्दूर भव्य किसे कहते हैं? उसका दूसरा नाम क्या है?
३. सम्राट कैसा भोजन, किस कारण से करता था?
४. भगवान महावीर का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
५. सासु माँ और दामाद क्यों रो रहे थे?
६. देव-शास्त्र-गुरु पर अटल श्रद्धान कैसा होना चाहिए?
७. छोटे भाई ने धन की थैली समुद्र में क्यों फैंकी?
८. मनुष्य गति कैसे प्राप्त होती है? इसकी क्या विशेषता है?
९. गृहस्थ के छह कर्मों के नाम एवं पाँच क्रूर कर्म कौन-कौन से हैं?
१०. सोलह कारण भावनाएँ कौन-कौन सी हैं?
११. स्वाध्याय आवश्यक क्यों है?
१२. महासती अतिमव्वे ने क्या-क्या दान किया था?
१३. कुशील पाप क्या कहलाता है? उससे बचने के कोई तीन उपाय बताइए।
१४. 'बड़ा कौन' ये विवाद कैसे सुलझा?
१५. आदिनाथ भगवान को प्रजापति क्यों कहा जाता है?
१६. हमें वीतरागी देव को ही नमस्कार करना चाहिए, क्यों?
१७. अठारह दोष कौन-कौन से हैं?

ब. श्लोक छंद को पूर्ण करें-

१. त्रिदण्डे ---------------- वीतरागम्।
२. ग्वाला ------------------ जिनवाणी माँ।
३. गिरे न ------------------ साथ।
४. रात्री भोजन ---------------- गायें।
५. दु:खों --------------- भावना स्वामी।
६. छत्रत्रय -------------- सुप्रभातम्।
७. दियंबरो----------------- णिच्चं।

स. श्लोक का अर्थ लिखें-

१.न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढ़ो,
न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेह:।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा,
चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥

२. उद्दण्ड- दर्पकरिपो विमलामलाङ्ग,
स्थेमन् ननन्तजिदनन्त सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्मकल्मष- विवर्जित- धर्मनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥

३. विंज्झायलग्गे पविभासमाणं, सिहामणि सव्व- सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय- पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

द. परिभाषा लिखो।

१. अजीव २. अभव्य ३. नरक गति ४. मसि कर्म ५. अभीक्ष्ण संवेग ६. दान आवश्यक
७. हिंसा पाप ८. वीतरागी ९. सच्चे शास्त्र।

० अन्य ग्रन्थों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. अरिहन्त परमेष्ठी संसारी जीव हैं क्यों और कैसे?
२. जीव के अन्य दस पर्यायवाची नाम कौन-कौन से हैं?
३. नारकी गति को नारक गति भी कहते हैं क्यों?
४. तिर्यंच जीव की कैसी दशा होती है?
५. चारों गति के जीव कहाँ कहाँ रहते हैं?
६. दान किसे, कैसे देना चाहिए, दान का क्या फल होता है?
७. द्रव्य हिंसा और भाव हिंसा को उदाहरण सहित समझाइए।
८. राज वसु की कथा किस प्रकार है?
९. अब्रह्म सेवन के दोष और दुष्परिणाम क्या हैं?
१०. परिग्रह पाप से उत्पन्न दु:ख कैसा होता है?
११. टी.वी. देखने, व्यसन करने से कौन-कौन सा पाप होता है? कैसे?
१२. कुशील, अब्रह्म पाप से बचने के लिए हमें क्या करना चाहिए?
१३. यमपाल चाण्डाल और मृगसेन धीवर की क्या कथा है?
१४. शिवभूति ब्राह्मण की कैसी कथा है?
१५. घर में रहकर पाँच पापों से कितना बच सकते हैं?
१६. तीर्थङ्कर ऋषभदेव सम्बन्धी १० नई जानकारी बताएँ?
१७. गोम्मटेश्वर बाहुबली प्रतिमा निर्माण का इतिहास कैसा है?
१८. भरत चक्रवर्ती के पास कितना वैभव था?

पाठ्यक्रम - ७

७ अ | पदार्थों को जानने का साधन - इन्द्रियाँ

इन्द्रिय का स्वरूप -

शरीरधारी जीव को जानने के साधन रूप चिह्न को इन्द्रिय कहते हैं।

इन्द्रियों के भेद एवं परिभाषा -

वे इन्द्रियाँ पाँच होती हैं - १. स्पर्शन, २. रसना, ३. घ्राण, ४. चक्षु और ५. कर्ण।

जो पदार्थ को छूकर जाने वह स्पर्शन (त्वचा) इन्द्रिय है। हल्का, भारी, कड़ा, नरम, रूखा, चिकना, ठण्डा और गरम, ये स्पर्शन इन्द्रिय के आठ विषय हैं। जैसे बर्फ को छूने पर 'यह ठंडा है' तथा अग्नि को छूने पर "यह ऊष्ण है, गरम है" यह ज्ञान होना।

जो पदार्थ को चखकर जाने वह रसना (जिह्वा) इन्द्रिय है। खट्टा, मीठा, कड़वा, कषैला और चरपरा, ये पाँच रसना इन्द्रिय के विषय हैं। जैसे " शक्कर मीठी है" और "नीम कड़वी" ऐसा ज्ञान होना।

जो सूंघकर पदार्थों को जाने वह घ्राण (नासिका) इन्द्रिय है। सुगन्ध और दुर्गन्ध, ये दो घ्राण इन्द्रिय के विषय हैं। जैसे गुलाब पुष्प सुगन्धित है।

जो देखकर पदार्थों को जाने वह चक्षु (नेत्र) इन्द्रिय है। काला, नीला, लाल, पीला और सफेद, ये पाँच चक्षु इन्द्रिय के विषय है। जैसे "कौआ काला है" और "तोता हरा है" आदि का ज्ञान।

जो सुनकर जाने/ जो सुनती है वह श्रोत (कर्ण) इन्द्रिय है। सा, रे, ग, म, प, ध और नि, ये सात मुख्यतः श्रोत इन्द्रिय के विषय हैं। जैसे "यह राम है" यह सुनना, गीत आदि सुनना।

इन्द्रियों का आकार -

पाँचों द्रव्य इन्द्रियों में प्रत्येक का अलग-अलग आकार है - स्पर्शन इन्द्रिय अनेक प्रकार के आकार वाली

रसना इन्द्रिय अर्धचन्द्र या खुरपा के आकार वाली

घ्राण इन्द्रिय कदम्ब के फूल के आकार वाली

चक्षु इन्द्रिय मसूर के आकार वाली एवं

कर्ण इन्द्रिय यव (जौ) की नाली के आकार वाली आगम ग्रंथो में कही है।

जीव और इन्द्रियाँ -

- पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और वनस्पति कायिक जीवों की एकमात्र स्पर्शन इन्द्रिय होती है।
- लट, शंख, सीप, कृमि आदि जीवों की स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती है।
- चींटी, बिच्छू, खटमल, कीड़े आदि की स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इंद्रियाँ होती हैं।
- मच्छर, मक्खी, भ्रमर, पतंगा आदि जीवों की स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इंद्रियाँ होती हैं।
- गाय, घोड़ा, मनुष्य, देव, नारकी आदि जीवों की स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। रसना इन्द्रिय के दो कार्य हैं पहला चखना और दूसरा बोलना।

- हे भगवन् ! आपकी आराधना से भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त होती हैं, जो भुक्ति और सांसारिक सुख चाहते हैं, उन्हें भी आपकी उपासना करनी चाहिए।

संसार से डरना चाहते हो तो, शरीर का चिन्तन करो और जब डरना नहीं चाहते हो तो आत्मा का चिंतन करो।

धर्म की रेल

आओ बच्चों खेलें खेल,
एक बनाएँ धर्म की रेल।
जीव रहे इसका इंजन है,
दस-धर्मों के डिब्बे हैं।। १।।
सम्यग्दर्शन टिकिट है इसका,
सम्यग्ज्ञान की पटरी है।
सम्यक्चारित्र गुरु चलाते,
पहुँचा देती जल्दी है।। २।।
हम सब मिल कर बैठेंगे,
मोक्ष-नगर को पहुँचेंगे।
वापस कभी न आएँगे,
वहीं पे मौज मनाएँगे।। ३।।

बुद्धि की परीक्षा

एक सेठ जी के परिवार में चार पुत्र एवं पुत्रवधू थीं, सेठानी का देहान्त होने के कारण सेठ जी को हमेशा चिंता लगी रहती थी कि घर का कौन-सा काम किस पुत्रवधू को दिया जाए यह सोचकर सेठ ने बहुओं की परीक्षा के लिए एक दिन चारों बहुओं को बुलाया और बहुओं को एक-एक मुट्ठी धान के दाने दे दिए और कहा, कि इनको सुरक्षित रखना जब माँगूगा तब मुझे वापस दे देना।

सबसे बड़ी वधू सोचने लगी कि ससुर जी वृद्धावस्था में सठिया गए हैं। यह सोच उसने वह एक मुट्ठी दाने फेंक दिए। दूसरे नम्बर की वधू ने उन्हें ससुर जी के हाथ का प्रसाद समझ कर खा लिया। तीसरी वधू ने सोचा पता नहीं कब ससुरजी के दिमाग में सनक उठे और वे इन दानों को माँग बैंठे तो क्या होगा? इसलिए उसने एक डिब्बी में वे दाने बंद करके अपनी तिजोरी में रख लिए।

सबसे छोटी वधू विचारने लगी कि ससुर जी कोई मूर्ख तो हैं नहीं जो हम चारों को एक-एक मुट्ठी धान के दाने दिए हैं। जरूर इसमें कोई रहस्य छिपा है। हो सकता है कि वह हमारी बुद्धि की परीक्षा करना चाहते हों ताकि हम चारों को हमारी बुद्धि के अनुसार घर का काम-काज सौंपा जा सके। जब तक सासू जी थीं तो ससुर जी को इस ओर की कोई चिन्ता नहीं थी। यह सोचकर उसने एक मुट्ठी धान के दाने खेत में बो दिए जिससे अच्छी फसल हुई इसी प्रकार वह आगे भी बीज बोती रही, खूब धान बढ़ता रहा और बढ़ते-बढ़ते कोठे भर गए। पाँच वर्ष बाद सेठ जी ने चारों पुत्रवधुओं को बुलाया। बड़ी वधू आई उससे पूछा- मैंने तुम्हें एक मुट्ठी धान के दाने दिए थे। उनका तुमने क्या किया ? पिताजी, मैंने तो उन्हें उसी समय यूँ ही फेंक दिया था। बेटी तुमने ? दूसरी वधू से पूछा। उसने उत्तर दिया मैं तो उन्हें आपके हाथ का प्रसाद समझ कर खा गई। तीसरी से पूछा तो उसने तिजोरी से डिब्बी निकाली और सेठ जी को एक मुट्ठी दाने ज्यों-के-त्यों वापस कर दिए।

बेटी, जरा तुम भी लाकर दिखाओ उन दानों को जो मैंने तुम्हें दिये थे। ऐसा प्रश्न सुनकर छोटी वधू ने उत्तर दिया 'पिताजी वह तो अब कोई एक व्यक्ति नहीं ला सकता। आप ट्राली भेजकर मँगा लीजिए। 'पिता जी ! मैंने वे दाने खेत में बो दिए थे। वर्ष-दर-वर्ष इतने हो गए हैं कि कोठे भर गए हैं। आप कभी भी मँगा सकते हैं। छोटी वधू ने उत्तर दिया। सेठ ने सोचा बन गया मेरा काम। घर का काम सौंप दिया चारों वधुओं को। बड़ी वधू से कहा- बेटी, आज से तुम्हारे लिए घर की सफाई का काम।

और बेटी, तुम करो रसोई का काम, दानों को खाने वाली वधू से कहा। तीसरी वधू जिसने धान के दानों को एक डिब्बी में सुरक्षित रखा था उसे कोष की रक्षा का कार्य दिया क्योंकि तुम्हारे हाथों में कोष सुरक्षित रहेगा, उसकी बरबादी न हो सकेगी।

और सबसे छोटी वधू तुम तो लो घर की चाबियाँ। तुम आज से हुई घर की प्रमुख। तुममें ही योग्यता है कि इस घर का धन व इज्जत को दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ाने की। चारों पुत्र वधुओं को उनकी योग्यता के अनुसार काम सौंपकर सेठ जी निश्चिंत हो गए। घर का काम सुचारु रूप से चलने लगा।

शिक्षा- यदि प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार कार्य दिया जाए, तो वह भी संतुष्ट रहेगा और उस परिवार, समाज एवं देश का कार्य भी अच्छी तरह से चलता रहेगा।

अनुयोग

जिनवाणी चार अनुयोग में विभाजित है। ये चार अनुयोग मोक्ष महल में प्रवेश करने के लिए चार दरवाजे हैं। चारों दरवाजे एक-दूसरे के पूरक हैं।

चारपाई के चार पाँव होते हैं। चारों उपयोगी हैं। यदि एक न हो तो तीन पाँव को तोड़ देगी। अत: वस्तु स्वरूप को समझने के लिए चार अनुयोग चार तरीके हैं।

चार अनुयोग जिनवाणी कहने के चार तरीके हैं। जिनवाणी चार नहीं हैं। रस गुल्ले को थाली में लेकर खाओ या प्लेट में लेकर खाओ। हाथ से खाओ या चम्मच से, पर मीठा ही लगेगा। इसी प्रकार तत्व की प्रतीति जिस किसी अनुयोग से आनी चाहिए, बात एक ही है।

जिनवाणी स्तुति

माता तू दया करके कर्मों से छुड़ा देना।
इतनी-सी विनय तुमसे चरणों में जगह देना।।
माता आज मैं भटका हूँ माया के अन्धेरे में।
कोई नहीं मेरा है इस कर्म के रेले में।
कोई नहीं मेरा है तुम धीर बंधा देना।।
इतनी-सी....
जीवन के चौराहे पर मैं सोच रहा कब से।
जाऊँ तो किधर जाऊँ यह पूछ रहा मन से।
पथ भूल गया हूँ मैं, तुम राह दिखा देना।।
इतनी-सी....
लाखों को उबारा है हमको भी उबारो तुम।
मझधार में है नैया उस पार लगा दो तुम।
मझधार में अटका हूँ उस पार लगा देना।।
इतनी-सी....

पाठ्यक्रम - ७

७ ब | घोर उपसर्ग विजयी- भगवान पार्श्वनाथ

इस युग में घोर उपसर्ग को सहन करने वाले तेइसवें तीर्थङ्कर श्री पार्श्वनाथ स्वामी हुए। वर्तमान में सबसे अधिक जिनबिम्ब तथा जिन मन्दिर भगवान पार्श्वनाथ के दिखाई देते हैं। इनके बिम्ब के ऊपर प्राय: फण फैलाया हुआ सर्प दृष्टिगोचर होता है, जो उन पर हुए उपसर्ग की घटना का प्रतीक है। पार्श्वनाथ भगवान का संक्षिप्त जीवन - दर्शन इस प्रकार है:-

राजा अरविन्द के दो मंत्री कमठ और मरुभूति थे। कमठ बड़ा भाई अत्यन्त दुष्ट प्रकृति का, दुर्व्यवहारी था, जबकि छोटा भाई मरुभूति सज्जन और सद्व्यवहारी था। एक दिन मरुभूति को राज्य कार्य से नगर से बाहर जाना पढ़ा तब कमठ ने छोटे भाई की पत्नी के साथ दुर्व्यवहार करना चाहा। जब राजा को यह बात ज्ञात हुई तो उसने कमठ को देश निकाला दे दिया, अत: वह तापसी बनकर जंगल में रहने लगा और कुतप करने लगा। मरुभूति के लौट आने पर, सब घटना ज्ञात होने पर भ्रातृ-प्रेम के कारण वह कमठ के पास गया और पैर पड़ते हुए क्षमा-याचनापूर्वक घर चलने की प्रार्थना करने लगा। तब कमठ ने और अत्यधिक क्रोधित हो उस पर शिला पटक दी, जिससे मरुभूति दुर्ध्यान पूर्वक मरण कर वज्रघोष नाम का हाथी हुआ था मुनि अरविन्द के उपदेशों को सुन पंचाणुव्रत को धारण किया। अंत समय कीचड़ में फँस जाने पर सांप के द्वारा डसे जाने पर अणुव्रतों के प्रभाव से सोलहवें स्वर्ग में देव हुआ। वहाँ से च्युत हो अग्निवेग नाम का राजपुत्र हुआ दीक्षा धारण की। एक दिन जंगल में ध्यान करते समय बड़े भारी अजगर द्वारा निगले जाने पर मरण कर अच्युत स्वर्ग के पुष्कर विमान में देव हुआ। वहाँ से आकर पुन: वज्रनाभि नाम का चक्रवर्ती हुआ, क्षेमंकर मुनि के उपदेशों से प्रभावित हो जिन दीक्षा धारण की, तब कुरंग नाम के भील द्वारा उपसर्ग किए जाने पर मरण कर मध्यम ग्रैवेयक में अहमिन्द्र हुआ। वहाँ से चयकर आनन्द नामक राजपुत्र हो जिन दीक्षा धारण कर सोलहकारण भावनाओं का चिंतन कर तीर्थङ्कर प्रकृति का बंध किया। तब सिंह के द्वारा भक्षण किए जाने पर समाधि पूर्वक मरण कर आनत स्वर्ग में इन्द्र हुआ। यह जीव स्वर्ग से च्युत हो, श्री पार्श्वनाथ तीर्थङ्कर बना।

जम्बूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र के काशी देश स्थित वाराणसी (बनारस) नगरी में काश्यप गोत्री, उग्रवंशी राजा अश्वसेन राज्य करते थे। वामादेवी उनकी महारानी थी। महारानी वामादेवी ने आनत स्वर्ग के इन्द्र को पौष कृष्णा एकादशी को तीर्थङ्कर सुत के रूप में जन्म दिया। सोलह वर्ष की अवस्था में ये नगर के बाहर वन बिहार करते हुए अपने नाना महीपाल के पास पहुँचे। वह पंचाग्नि तप के लिए लकड़ी फाड़ रहा था, इन्होंने उसे रोका और बताया कि लकड़ी में नागयुगल है। वह नहीं माना और क्रोध से युक्त होकर उसने वह लकड़ी काट डाली। उसमें जो नागयुगल था वह कट गया। मरणासन्न सर्पयुगल को इन्होंने संबोधित किया जिससे शान्तचित हो वे धरणेन्द्र और पद्मावती हुए।

तीस वर्ष की उम्र के पश्चात् जातिस्मरण होने पर संसार से विरक्त हो पौष कृष्ण एकादशी के दिन अश्व वन में प्रात: काल तीन सौ राजाओं के साथ दीक्षित हुए। पारणा के दिन गुल्मखेट नगर में धन्य नामक राजा ने आहारदान देकर पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये। छद्मस्थ अवस्था के चार माह व्यतीत कर अश्व वन में जब प्रभु तेला का नियम लेकर देवदारु वृक्ष के नीचे ध्यानावस्था में थे तब कमठ के जीव शम्बर नामक देव ने सात दिन तक इन पर विभिन्न प्रकार के घोर उपसर्ग किए। उस समय उन धरणेन्द्र और पद्मावती ने आकर उपसर्ग का निवारण किया। चैत्र कृष्णा त्रयोदशी के दिन प्रात:काल घातिया कर्म नष्ट हो जाने से प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

समवशरण में अष्ट महाप्रातिहार्यों से युक्त होते हुए अनेक भव्य जीवों को समीचीन धर्म का उपदेश देते हुए उनहत्तर वर्ष सात मास तक पृथ्वी तल पर विहार किया तथा श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन प्रात: बेला में अष्टकर्मों को नाश कर निर्वाण को प्राप्त किया। ० भगवान पार्श्वनाथ के शरीर की ऊँचाई नौ हाथ थी, आयु १०० वर्ष की एवं शरीर का वर्ण हरा था।

प्रसन्न और मधुर व्यक्ति सदैव सफल होता है।
लोगों में बल की नहीं, संकल्प शक्ति की कमी होती है।

पाठ्यक्रम - ७

७ स | मोक्ष की ओर ले जाने वाला मार्ग- रत्नत्रय

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान , सम्यक्चारित्र ये तीनों रत्नत्रय कहे जाते हैं।

सम्यग्दर्शन का लक्षण व भेद :- सच्चे श्रद्धान (विश्वास या यकीन) को सम्यग्दर्शन कहते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन ये दो सम्यग्दर्शन के भेद हैं।

आत्मा का जैसा का तैसा पर द्रव्यों से भिन्न श्रद्धान (विश्वास) निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु, दयामय धर्म और सातों तत्वों का सच्चे दिल से यथार्थ श्रद्धान करना व्यवहार सम्यग्दर्शन कहलाता है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति और आवश्यकता :- सम्यग्दर्शन धर्मरूपी पेड़ की जड़ है। जड़ के बिना पेड़ नहीं ठहरता, वैसे ही सम्यग्दर्शन के बिना सब धर्म-कर्म व्यर्थ होते हैं, उनसे कुछ अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए आत्म-कल्याण के लिये सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त करना आवश्यक है।

सम्यग्दर्शन की महिमा :- जिस प्राणी को सम्यग्दर्शन हो जाता है, वह मरने पर स्वर्ग का देव या भोगभूमि में मनुष्य गति में उत्पन्न होता है, स्त्री नहीं होता, पहले नरक को छोड़ अन्य छह नरकों में नहीं जाता, भवनत्रिक, स्थावर, विकलत्रय, पशु, नपुंसक, अल्पायु, गरीब, हीनाङ्ग, पक्षी और नीचकुली भी नहीं होता।

सम्यग्ज्ञान का लक्षण व भेद :- ठीक-ठीक जैसा का तैसा जानना, किसी प्रकार का संशय नहीं होना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। निश्चय सम्यग्ज्ञान और व्यवहार सम्यग्ज्ञान ये दो सम्यग्ज्ञान के भेद हैं।

आत्मा को जैसा का तैसा पर द्रव्यों से भिन्न जानना, निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है। पदार्थों के स्वरूप को ठीक-ठीक जैसा का तैसा जानना, उसमें किसी प्रकार का संशय नही होना, व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति और आवश्यकता - सम्यग्ज्ञान होने के पहले जो ज्ञान मिथ्या होता है, सम्यग्दर्शन होने पर वही ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लगता है। सम्यग्ज्ञान से ही आत्मज्ञान और केवलज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यग्ज्ञान की महिमा :- सम्यग्ज्ञान होने पर त्रिगुप्ति (मन, वचन,काय की एकाग्रता) से जन्म-जन्म के पाप कट जाते हैं, जो पाप अज्ञानी प्राणियों के करोड़ों जन्मों तक तप करने पर भी नहीं कटते।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति का उपाय :- सच्चे शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने तथा बार-बार विचारने, आत्मचिन्तन करने, पाठशाला खुलवाने, शास्त्रदान करने या छात्रवृत्ति देने आदि से सम्यग्ज्ञान प्राप्त होता है।

सम्यक्चारित्र का लक्षण व भेद :- अशुभ कार्यों को छोड़ना, शुभ कार्यों में प्रवृत्ति करना सम्यक् चारित्र कहलाता है। निश्चय सम्यक् चारित्र और व्यवहार सम्यक्चारित्र ये दो सम्यक्चारित्र के भेद हैं। आत्मस्वरूप में लीन होना, निश्चय सम्यक्चारित्र कहलाता है। हिंसा , झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों तथा क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषायों का त्याग करना, व्यवहार सम्यक्चारित्र कहलाता है।

सम्यक्चारित्र की प्राप्ति का उपाय :- वीतरागी निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधुओं की संगति करने, दान देने, वैय्यावृत्ति आदि करने तथा व्रत, समिति, गुप्ति, तप, धर्म आदि करने से सम्यक्चारित्र प्राप्त होता है। इस सम्यक्चारित्र से ही संवर व निर्जरा होती है।

रत्नत्रय और मोक्षमार्ग :- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, इन तीनों की ही एकता को मोक्षमार्ग कहते हैं। यथार्थ में यही मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

शिक्षा :- संसार के दु:खों से छूटने का सच्चा उपाय रत्नत्रय ही है, अत: हमको रत्नत्रय धारण करना चाहिए हमारे मनुष्य जन्म की सफलता भी इसी में है। रत्नत्रय को धारण करने वाले व्रती-श्रावक या मुनि होते हैं।

महावीराष्टक स्तोत्र

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भान्ति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन-परो भानुरिव यो,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥1॥

अर्थ : (यदीये) जिनके **(चैतन्ये)** चैतन्यरूप केवलज्ञान में **(ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसन्तः)** ध्रौव्य, व्यय और उत्पाद से शोभायमान **(अन्तरहिताः)** अनन्त **(चिदचितः भावाः)** चेतन और अचेतन पदार्थ **(मुकुरः इव)** दर्पण के समान **(समम् भान्ति)** एक साथ प्रतिबिम्बित होते हैं अर्थात् सर्वज्ञ हैं **(जगत्साक्षी)** जगत् के साक्षात्कार करने वाले अर्थात् वीतराग हैं **(भानुः इव)** सूर्य के समान **(यः)** जो **(मार्गप्रकटन परः)** मोक्षमार्ग को प्रकट करने में तत्पर अर्थात् हितोपदेशी हैं ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पन्द-रहितं,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥2॥

अर्थ : (अताम्रम्) लालिमा रहित **(स्पन्द-रहितम्)** परिस्पन्दन रहित **(यच्चक्षुः कमलयुगलं)** जिनके दोनों नेत्ररूपी कमल **(जनान्)** मनुष्यों को **(आभ्यन्तरम्)** भीतरी **(वा)** अथवा बाह्य **(अपि)** भी **(कोपापायं)** क्रोध के अभाव को **(प्रकटयति)** प्रकट करते हैं और **(यस्य मूर्तिः)** जिनका शरीर/मुद्रा **(स्फुटम्)** स्पष्टरूप से **(प्रशमितमयी)** परम शान्ति का धारक वा और **(अतिविमला)** अत्यन्त निर्मल हैं ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

नमन्नाकेन्द्राली-मुकुट-मणि-भा-जाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृताम्।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥3॥

अर्थ : (नमत्) नमन करते हुए **(नाकेन्द्राली-मुकुटमणि-भा-जाल-जटिलं)** स्वर्ग के देवों के इन्द्रों की पंक्ति के मुकुटों की मणियों के प्रभापुंज से व्याप्त **(लसत्)** सुशोभित **(यदीयं)** जिनके **(स्मृतं)** स्मरण किए गये **(पादाम्भोजद्वयम्)** दोनों चरण **(अपि)** भी **(इह)** इस जगत् में **(तनुभृताम्)** संसारी जीवों के **(भवज्ज्वाला-शान्त्यै)** संसार ज्वाला की शान्ति के लिए **(जलं वा)** जल के समान **(प्रभवति)** समर्थ हैं ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुण-गण-समृद्धः सुख-निधि।
लभन्ते सद्भक्ताः शिव-सुख-समाजं किमु तदा,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥4॥

अर्थ : (यदर्चा-भावेन) जिनकी पूजा के भाव से **(प्रमुदित-मना)** आनन्दित चित्त वाला **(दर्दुरः)** मेंढक **(इह)** इसलोक में **(क्षणात्)** क्षणभर में **(गुण-गण-समृद्धः)** गुणों के समुदाय से सम्पन्न **(सुख-निधिः)** सुख का निधान **(स्वर्गी)** स्वर्ग में निवास करने वाला देव **(आसीत्)** हुआ था **(तदा)** तब **(सद्भक्ताः)** आपके सच्चे भक्त **(शिवसुख-समाजम्)** मोक्ष सुख के समूह को **(लभन्ते)** पाते हैं **(किमु)** क्या आश्चर्य है? **(महावीरस्वामी)** ऐसे महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ-तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोऽद्भुत-गतिर्,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥5॥

अर्थ : (कनत्स्वर्णाभासः अपि) चमकते हुए स्वर्ण के समान कान्तिमान होने पर भी **(अपगत-तनुः)** शरीर से रहित **(ज्ञान-निवहः)** ज्ञान शरीरी हैं **(विचित्र आत्मा अपि)** विशेष गुणों एवं पर्यायों की अपेक्षा अनेक रूप होकर भी **(एकः)** सामान्य की अपेक्षा से एकरूप हैं **(नृपतिवरसिद्धार्थतनयः)** श्रेष्ठ राजा सिद्धार्थ के पुत्र होकर **(अपि)** भी **(अजन्मः)** जन्म रहित हैं **(श्रीमान् अपि)** लक्ष्मीवान होकर भी **(विगतभवरागः)** सांसारिक राग से रहित **(अद्भुत गतिः)** अद्भुत अवस्था के धारक ऐसे **(महावीरस्वामी)** महावीर स्वामी **(मे नयनपथगामी)** मेरे नेत्रों के मार्गगामी **(भवतु)** होवें।

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
बृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनतां या स्नपयति।
इदानीमप्येषा बुध-जन-मरालैः परिचिता,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥6॥

अर्थ : (यदीया) जिनकी **(वाग्गङ्गा)** वाणीरूपी गंगा **(विविध-नय-कल्लोल-विमला)** अनेक नयरूप तरंगों से

उज्ज्वल (**बृहत्**) विपुल (**ज्ञानाम्भोभिः**) ज्ञानरूप जल से (**जगति**) इसलोक में (**जनताम्**) प्राणियों को (**स्नपयति**) नहलाती है (**या**) जो (**इदानीम् अपि**) आज भी (**एषा**) यह जिनवाणी (**बुधजनमरालैः**) विद्वज्जनरूपी हंसों से (**परिचिता**) परिचित हो रही है ऐसे (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**मे नयनपथगामी**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी (**भवतु**) होवें।

अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवन-जयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थायामपि निज-बलाद्येन विजितः।
स्फुरन्नित्यानन्द-प्रशम-पद-राज्याय स जिनः,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥7॥

अर्थ : (**स्फुरन्**) दमकते/जगमगाते/चमकते हुए (**नित्यानन्द-प्रशम-पदराज्याय**) नित्य आनन्द वाले प्रशान्त शिवपद के राज्य को पाने के लिए (**निजबलात्**) अपने आत्मबल से (**येन**) जिन्होंने (**कुमारावस्थायाम्**) कुमार अवस्था में (**अपि**) ही (**अनिर्वारोद्रेकः**) दुर्निवार वेग वाला (**त्रिभुवनजयी**) त्रिभुवन विजेता (**कामसुभटः**) कामरूपी महान् योद्धा (**विजितः**) जीता है (**सः**) वह (**जिनः**) इन्द्रियविजयी (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**मे नयनपथगामी**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी (**भवतु**) होवें।

महामोहातङ्क- प्रशमन- पराकस्मिक-भिषग् ,
निरापेक्षो बन्धुर्विदित-महिमा-मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भय-भृतामुत्तमगुणो,
महावीर-स्वामी नयन-पथ-गामी भवतु मे ॥8॥

अर्थ : (**महामोहातङ्क-प्रशमन-पराकस्मिकभिषक्**) महामोहरूपी रोग को शान्त करने में तत्पर आकस्मिक (अकारण) वैद्य (**निरापेक्षः बन्धुः**) अपेक्षा रहित बन्धु (**विदित-महिमा**) जिनकी महिमा प्रकट/ज्ञात है (**मङ्गलकरः**) मंगलकारी (**भव-भयभृताम्**) संसार के भय से भरे हुए (**साधुनाम्**) साधु जनों को (**शरण्यः**) शरण देने वाले (**उत्तमगुणः**) उत्तमगुण वाले (**महावीरस्वामी**) महावीर स्वामी (**मे नयनपथगामी**) मेरे नेत्रों के मार्गगामी (**भवतु**) होवें

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या 'भागेन्दुना' कृतम्।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिम् ॥9॥

अर्थ : (**भागेन्दुना**) **भागचन्द्र कवि के द्वारा** (**भक्त्या**) **भक्तिपूर्वक** (**कृतम्**) **रचित** (**महावीराष्टकम्**) महावीरराष्टक (**स्तोत्रम्**) स्तोत्र को (**यः पठेत्**) जो पढ़ता है (**च**) और (**शृणुयात् अपि**) सुनता भी है (**स**) वह (**परमाम्**) परम (शिव) (**गतिम्**) गति को (**याति**) जाता/प्राप्त करता है।

॥ इति महावीराष्टकस्तोत्रम् ॥

द्रव्यलिंगी व भावलिंगी

द्रव्यलिंगी से तात्पर्य- ऊँची दुकान, फीके पकवान से है। यानी भीतर कुछ है, बाहर कुछ है। जैसे पापड़ दिखने में बहुत बड़े-बड़े सुंदर हैं लेकिन बिना नमक के हैं।

द्रव्यलिंगी साधु : द्रव्यलिंगी साधु से तात्पर्य बाहर से महाव्रती तो है लेकिन भीतर में तीन चौकड़ी कषाय का अभाव नहीं है। अर्थात् १, २, ३, ४, ५ गुणस्थान है तो द्रव्यलिंगी साधु है।

उदाहरण : जैसे भारत वर्ष में रिजर्व बैंक है और उसने एक करोड़ रुपए के नोट चला रखे हैं पर आज नोट कैंसिल करे तो उसके पास एक करोड़ रुपए का सोना देने के लिए नहीं है तो वह रिजर्व बैंक द्रव्यलिंगी कहा जाएगा।

भावलिंगी साधु : भावलिंगी से तात्पर्य जितना बाहर में है उतना ही भीतर होना चाहिए। यानी जैसे ऊँची दुकान वैसे ऊँचे पकवान होने चाहिए। यदि बाहर में महाव्रती है तो भीतर में तीन चौकड़ी कषाय(अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण) का अभाव होना चाहिए। अर्थात् छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान होना चाहिए तो वह भावलिंगी साधु है।

द्रव्यश्रावक : जिसके बाहर में तो बारह व्रत हैं, प्रतिमाधारी है लेकिन भीतर में पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा गुणस्थान है, वह द्रव्य श्रावक है।

भावश्रावक : जिसके बाहर में १२ व्रत हैं, प्रतिमाधारी है और भीतर में पाँचवाँ गुणस्थान है तो वह भाव श्रावक है।

द्रव्य सम्यग्दृष्टि : जिसके बाहर से सच्चे देव शास्त्र गुरु के प्रति श्रद्धान है पर भीतर से पहला, दूसरा, तीसरा गुणस्थान है।

भाव सम्यग्दृष्टि : जिसकी बाहर में सच्चे देव-शास्त्र-गुरू के प्रति श्रद्धा है और भीतर में गुणस्थान चौथा है।

भक्ति में शक्ति

राजा जयकुमार के दरबार में कुछ मंत्री स्वभावत: साधुओं से द्वेष भाव रखा करते थे। किसी समय वे निज राज्य में प्रवेश कर रहे थे कि रास्ते में उन्होंने आम के पेड़ के नीचे बैठे एक दिगम्बर साधु को देखा । नगर में पहुँचकर राजा के समक्ष दरबार में उन्होंने जैन साधुओं की निन्दा करते हुए कहा - कि हे राजन्! जैन साधु कभी भी स्नान नहीं करते उनका शरीर कुष्ठादि रोगों से घिरा रहता है। नगर के बाहर एक साधु आए हैं उन्हें आप नगर में प्रवेश नहीं करने देना अन्यथा नगर में रोग फैल जाएगा।

यह बात उसी सभा में बैठा हुआ एक जैन श्रावक (मंत्री) सुन रहा था उसे यह उपहास सहन नहीं हुआ और उसने तुरन्त उठकर कहा - नहीं राजन् नहीं, ये झूठ बोल रहे हैं ऐसा नहीं है। हमारे साधु भले ही स्नान नहीं करते किन्तु उनका शरीर रोग रहित रहता है। निरन्तर उनके शरीर से सुगंधि फूटती रहती है। स्वर्ण जैसी काया चमकती रहती है।

राजा दोनों की बातें सुनकर असमंजस में पड़ गया। तब उसने कहा कि आप लोग विवाद न करें इस बात का निर्णय करने तथा साधु जी के दर्शनार्थ हम स्वयं ही कल सुबह जाएँगे। ऐसा कहकर सभा समाप्त कर दी गई।

जैन मंत्री सभा समाप्त होते ही सीधे नगर के बाहर स्थित मुनिराज के समीप पहुँचा तो क्या देखता है वास्तव में पूर्व कर्मोदय से मुनिराज की काया कुष्ठ रोग से घिरी हुई थी। कोढ़ से शरीर गल रहा था एवं अत्यंत दुर्गन्ध आ रही थी।

धर्म भावना से अभिभूत हो वह मुनिराज के निकट पहुँचा एवं नमोऽस्तु कर दरबार का समस्त वृत्तांत कह सुनाया। तब मुनिराज बोले - वत्स तूने बिना देखे ऐसा क्यों कहा। तब जैन मंत्री बोला - सभी मुनिराज ऐसे ही होते हैं ऐसा राजा समझ लेता तो अनर्थ होता अत: मैंने धर्म की रक्षा के लिए ऐसा कहा है। अब आपको ही जिनशासन की रक्षा करनी है। गुरुवर कृपा करें।

महाराज बोले हम क्या कर सकते हैं ? देखो जो होगा सो देखा जाएगा, तुम निश्चिंत होकर घर जाओ। श्रावक नमोऽस्तु कर घर चला गया और इधर मुनिराज तीर्थङ्कर प्रभु की भक्ति में लीन हो गए तथा उन्होंने एकीभाव स्तोत्र की रचना प्रारम्भ की। ज्यों ही उन्होंने चौथा काव्य रचा और भाव व्यक्त किए कि-हे प्रभु **''जब आप माता के गर्भ मे आने वाले थे तब छ: माह पूर्व से ही पृथ्वी स्वर्ण से भरपूर हो गई थी। जब मैंने आपको ध्यान के द्वारा अपने हृदय में बुलाकर विराजमान कर लिया है तब मेरी यह काया स्वर्णमयी हो जाए तो इसमें क्या आश्चर्य है।''** चौथा काव्य पूर्ण होते ही काया से रोग दूर भाग गया एवं क्षणमात्र में काया स्वर्ण के समान सुंदर हो गई।

दूसरे दिन जब राजा सभी मंत्रियों सहित उपवन में आया और मुनिराज के दर्शन किए तो उनकी वीतराग एवं स्वर्ण के समान तेजस्वी काया को देख अत्यन्त प्रसन्न हुआ एवं श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया। जिन मंत्रियों ने मुनिराज की निन्दा की थी उनकी ओर देखकर राजा ने मंत्रियों से कहा-तुमने बहुत बड़ा पाप किया जो द्वेष के वशीभूत हो साधु को कोढ़ी बतलाया तुम्हें इस अपराध का निश्चित ही कठोर दण्ड दिया जाएगा। ऐसी बात सुनते ही दयालु मुनिराज बोले - हे राजन् इसमें इनका कोई दोष नहीं है क्योंकि वास्तव में कल तक मेरे शरीर में कोढ़ था। जो कि जिनेन्द्र भक्त श्रावक की श्रद्धा भक्ति एवं जिनेन्द्र भगवान् की कृपा से दूर हो गया आप इन्हें दण्ड न दें।

मुनिराज की समदृष्टि एवं दयादृष्टि को देखकर राजा ने पुन: नमस्कार किया एवं मुनिराज से जैनधर्म के महत्त्व को सुनकर जिनधर्म अंगीकार कर सच्चे श्रावक के व्रतों को अंगीकार किया।

हमारे लिए ध्यान इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि भेद विज्ञान,
भेद विज्ञान हमेशा रहना चाहिए

गुरु वंदना

परम दिगम्बर मुनिवर देखे, हृदय हर्षित होता है।
आनंद उल्लसित होता है, हो- ऽ ऽ ऽ सम्यग्दर्शन होता है॥
परम दिगम्बर ....
वास जिनका वन, उपवन में, गिरि शिखर के नदी तटे-२।
वास जिनका चित्त गुफा में, आतम आनन्द में रमें-२॥
परम दिगम्बर ....
कंचन कामिनी के त्यागी, महातपस्वी ज्ञानी ध्यानी-२।
काया की माया के त्यागी, तीन रतन गुण भण्डारी-२॥
परम दिगम्बर ....
परम पावन मुनिवरों के, पावन चरणों में नमूँ-२।
शान्त मूर्ति सौम्य मुद्रा, आतम आनन्द में रमूँ-२॥
परम दिगम्बर ....
चाह नहीं है राज्य की, चाह नहीं है रमणी की-२।
चाह हृदय में एक यही है, शिवरमणी को वरने की-२॥
परम दिगम्बर ....
भेदज्ञान की ज्योति जलाकर, शुद्धातम में रमते हैं-२।
क्षण-क्षण में अन्तर्मुख होकर, सिद्धों से बातें करते हैं-२॥
परम दिगम्बर ....

भजन

मुझे ऐसा वर दे दे, गुणगान करूँ तेरा।
इस बालक के सिर पे गुरु हाथ रहे तेरा-2

सेवा नित तेरी करूँ, तेरे द्वार पे आऊँ मैं-2
चरणों की धूलि को, निज शीश लगाऊँ मैं-2
चरणामृत पाकर के, नित कर्म करूँ मेरा
इस बालक ....॥
भक्ति और शक्ति दो, अज्ञान को दूर करो-2
अरदास करूँ गुरुवर, अभिमान को चूर करो-2
नहीं द्वेष रहे मन में, रहे वास गुरु तेरा
इस बालक ....॥
विश्वास हो ये मन में, तुम साथ ही हो मेरे-2
तेरे ध्यान में सोऊँ मैं, सपनों में रहो मेरे-2
चरणों से लिपट जाऊँ, तुम ख्याल करो मेरा
इस बालक ....॥
मेरी यश-कीर्ति को, गुरु मुझसे दूर रखो
इन मन मंदिर में तुम, भक्ति भरपूर भरो
तेरी ज्योति जगे मन में, नित ध्यान करूँ तेरा
इस बालक ....॥

भजन

मेरे सर पे रख दो बाबा, अपने ये दोनों हाथ।
देना है तो दीजिए, जनम-जनम का साथ॥
मेरे सर पे.............॥टेक॥
सुना है हमने शरणागत को अपने गले लगाते हो।
ऐसा हमने क्या मांगा जो, देने से घबराते हो॥
न हीरे न मोती -2, बस रखिए मेरी बात -देना..
मेरे सर पे.............॥1॥
बिन पाये बाबा मैं कैसे, अपने घर को जाऊँगा।
खाली हाथ गया तो बाबा, चेहरा किसे दिखाऊँगा॥
अब तो लाज हमारी-2, बाबा है तेरे ही हाथ-देना..
मेरे सर पे.............॥2॥
पापी से पापी तारे हैं, अबकी नंबर मेरा है।
जग से पार उतर जाऊँगा, मिला सहारा तेरा है॥
न गाड़ी न घोड़ा -2, बस चाहिए तेरा साथ -देना..
मेरे सर पे.............॥३॥
प्रभुवर तेरे चरण हैं पकड़े, इन्हें कभी न छोडूँगा।
कर्म अभागे दम तोड़ें या, मैं अपना दम तोडूँगा ॥
देखें किसको मिलता है, अब तेरा आशीर्वाद-देना..
मेरे सर पे.............॥4॥

संत साधु बन के विचरुँ

संत साधु बनके विचरुँ, वह घड़ी कब आएगी।
चल पड़ूँ मैं मोक्ष पथ पर, वह घड़ी कब आएगी।।
हाथ में पिच्छी कमण्डल, ध्यान आतम राम का।
छोड़कर घर बार दीक्षा, की घड़ी कब आएगी।।संत साधु.....
आएगा वैराग्य मुझको, इस दुःखी संसार से।
त्याग दूँगा मोह ममता, वह घड़ी कब आएगी।।संत साधु.....
पाँच समिति तीन गुप्ति बाईस परीषह भी सहूँ।
भावना बारह जूँ भाऊँ, वह घड़ी कब आएगी।।संत साधु.....
बाह्य उपाधि त्याग कर, निज तत्त्व का चिन्तन करूँ।
निर्विकल्प होवे समाधि, वह घड़ी कब आएगी।।संत साधु.....

गुरुवर आप अनोखे चुम्बक जिसने सबको खींच लिया।
कलयुग में भी वसुंधरा को धर्मामृत से सींच दिया॥

नव दस माह कोख में रखकर, माँ ने मुझको पाला था।
किन्तु जन्म देकर फिर मुझको, भवसागर में डाला था॥

फिर गर्भस्थ किया गुरुवर ने, धर्म कोख में है पाला।
कैसे उनके गुण गाऊँ, मैं जिनने सब कुछ दे डाला॥

पाठ्यक्रम - ८

८ अ जैन कर्म सिद्धान्त-एक परिचय

जो आत्मा को परतंत्र करता हैं, दु:ख देता है, संसार में परिभ्रमण कराता है उसे कर्म कहते हैं। अनादि काल से जीव का कर्म के साथ सम्बन्ध चला आ रहा है, इन दोनों का अस्तित्व स्वत: सिद्ध है। ''मैं हूँ'' इस अनुभव से जीव जाना जाता है और जगत में कोई दरिद्र है कोई धनवान है, कोई रोगी है कोई स्वस्थ है इस विचित्रता से कर्म का अस्तित्व जाना जाता है।

वे कर्म मुख्य रूप से आठ प्रकार के हैं - (१) ज्ञानावरणी (२) दर्शनावरणी (३) वेदनीय (४) मोहनीय (५) आयु (६) नाम (७) गोत्र (८) अंतराय

(1) ज्ञानावरणी कर्म - जो कर्म ज्ञान को न होने दे अथवा ज्ञान की हीनाधिकता जिस कर्म के उदय से हो उसे ज्ञानावरण कर्म कहते हैं। जैसे एक व्यक्ति विद्वान और दूसरा मूर्ख, किसी को बार-बार पढ़ने पर याद होता है तो किसी को एक बार पढ़ने पर याद होता है। मूर्ति पर पड़ा हुआ कपड़ा जिस तरह मूर्ति का ज्ञान नहीं होने देता वैसे ही ज्ञानावरण कर्म का कार्य है।

दूसरों के गुणों को देखकर भीतर ही भीतर जलना, गुरु का नाम छिपाना, दूसरों के ज्ञान का आदर न करना, किताब, कॉपी आदि फाड़ देना, पढ़ने वालों को बाधा उत्पन्न करना इत्यादि अनेक कारणों से ज्ञानावरणी कर्म का आस्रव-बंध होता है।

(2) दर्शनावरणी कर्म - जो कर्म ज्ञान के पूर्व होने वाले दर्शन को न होने दे तथा जिस कर्म के उदय से बहुत निद्रा आए, गहन निद्रा आए, कम निद्रा आए उसे दर्शनावरण कर्म कहते हैं। द्वारपाल जैसे महल में प्रवेश ही नहीं करने देता है उसी प्रकार दर्शनावरणी कर्म भी पदार्थ का सामान्य अवलोकन (दर्शन) नहीं होने देता है।

जिनवाणी का अनादरपूर्वक श्रवण करना, दर्शन आदि में बाधा पहुँचाना, बहुत देर तक सोना, दिन में सोना, आलस्य करना, इन्द्रिय की विपरीत प्रवृत्ति करना इत्यादि कारणों से दर्शनावरणी कर्म का आस्रव-बंध होता है।

(3) वेदनीय कर्म - जिस कर्म के उदय से सुख और दु:ख रूप वेदन हो/अनुभव हो, उसे वेदनीय कर्म कहते हैं। पीड़ा होने पर दु:ख तथा अच्छे भोग, सामग्री मिलने पर सुख की अनुभूति होना वेदनीय कर्म का कार्य है। जैसे गुड़ की चाशनी लपटी तलवार को चाटने पर जीभ के कटने पर उसकी पीड़ा में दु:ख तथा गुड़ की मधुरता में सुख का अनुभव होता है।

स्वयं रोना एवं दूसरों को रुलाना, मारना, पीटना, बाँधना, दूसरों की निन्दा, विश्वासघात इत्यादि कार्यो से असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। सभी प्राणियों पर अनुकम्पा, अर्हत् पूजा, दान, तपस्वी की वैयावृत्य करना, विनयशीलता आदि कार्यों से साता वेदनीय कर्म का बंध होता है।

(4) मोहनीय कर्म - जिस कर्म के उदय से जीव पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को नहीं जान पाता उसे मोहनीय कर्म कहते हैं अथवा जिस कर्म के उदय से बुद्धि में भ्रम उत्पन्न होता है, गाफिलता हो उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

शरीर को ही जीव (आत्मा) मानना, अपने से पृथक् वस्तुओं को अपना मानना, संयम पालन में कष्ट मानना इत्यादि मान्यताएँ मोहनीय कर्म के उदय से होती हैं। जैसे शराब पिया हुआ व्यक्ति कभी माँ को पत्नी कहता है तो कभी पत्नी को माँ कहता है, इस तरह का विपरीत परिणमन मोहनीय कर्म कराता है। सच्चे धर्म की निंदा करना, धार्मिक कार्यों में अन्तराय पहुँचाना, अत्यधिक कषाय करना, बहुत बोलना, बहुत हँसना इत्यादिक कार्यों से मोहनीय कर्म का आस्रव व बंध होता है।

(5) आयु कर्म - जिस कर्म के उदय से मनुष्यादि भवों में/गतियों में रुकना होता है उसे आयु कर्म कहते हैं। जैसे दोनों पैरों में पड़ी हुई बेड़ी (सांकल) मनुष्य को स्वेच्छा से यहाँ-वहाँ नहीं जाने देती एक ही स्थान पर रोके रखती है।

बहुत आरम्भ करने व बहुत परिग्रह रखने से नरक आयु का, मायाचारी करने से तिर्यञ्च आयु का, अल्प आरंभ और परिग्रह से मनुष्य आयु का तथा सराग संयम, संयमासंयम रूप परिणामों से देव आयु का बंध होता है।

(६) नाम कर्म - जिस कर्म के उदय से अनेक प्रकार से शरीर की रचना होती है उसे नाम कर्म कहते हैं। मोटा-पतला, काला-गोरा, सुरूप-कुरूप इत्यादि कार्य नाम कर्म के माने जाते हैं। जैसे चित्रकार अनेक प्रकार के चित्र बनाता है उनमें रंग भरता है इसी तरह का कार्य नाम कर्म का है।

मन, वचन, काय की कुटिलता से अशुभ नाम कर्म का तथा मन, वचन काय की सरलता से शुभ नाम कर्म का बंध होता है

(७) गोत्र कर्म - जिस कर्म के उदय से उच्च कुलों में अथवा नीच कुलों में जन्म होता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं अथवा जिस

कर्म के उदय से उच्च आचरण में व नीच आचरण में प्रवृत्ति होती है उसे गोत्र कर्म कहते हैं। जैसे कुम्हार अनेक प्रकार के छोटे बड़े घड़े बनाता है उसी प्रकार गोत्र कर्म भी उच्च गोत्री व नीच गोत्री बनाता है।

दूसरों की निन्दा, अपनी प्रशंसा करने से जाति आदि का मद (घमंड) करने से नीच गोत्र का बंध होता है। आत्म निन्दा, पर प्रशंसा, निरभिमानता, नम्र वृत्ती रखने से उच्च गोत्र का बंध होता है।

(८) अन्तराय कर्म - जिस कर्म के उदय से दाता और पात्र के बीच लेन-देन में विघ्न उत्पन्न हो जाए उसे अंतराय कर्म कहते हैं अथवा वस्तु सामने होते हुए भी जिस कर्म के उदय से उसका ग्रहण, भोग, उपयोग न हो सके उसे अंतराय कर्म कहते हैं जैसे मुनिराज को आहार दान देना चाहे किन्तु मुनिराज के पड़गाहन का योग ही प्राप्त न हो, घर में मिठाई बनाई हो और बुखार हो जाए, मिठाई न खा सकें इत्यादि अन्तराय कर्म के कार्य हैं। इस कर्म को खजांची (कोषाध्यक्ष) की उपमा दी है।

प्राणियों की हिंसा करना, दूसरों की वस्तु चुरा लेना, दान आदि देने नहीं देना, निर्माल्य का ग्रहण करना इत्यादि कार्यों से अंतराय कर्म का बन्ध होता है।

उपरोक्त कर्मों का बन्ध चार प्रकार का होता है-

१. प्रकृति बन्ध २. स्थिति बंध ३. प्रदेश बंध ४. अनुभाग बंध

१. प्रकृति बन्ध - प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, बंधे हुए कर्मों में अपने स्वभाव के अनुसार प्रकृति पड़ जाना प्रकृति बंध है जैसे ज्ञानावर्णी कर्म का प्रकृति बंध ज्ञान को न होने देने रूप।

२. स्थिति बन्ध - बंधा हुआ कर्म कितने समय तक अपना फल देगा यह समय सीमा निर्धारण स्थिति बन्ध है, जैसे यह कर्म एक वर्ष तक अपना फल देगा ।

३. प्रदेश बन्ध - बन्धे हुए कर्म स्कंध में प्रदेशों की स्कंध संख्या प्रदेश बंध पर निर्भर करती है, जैसे अमुख कर्म में संख्यात अथवा असंख्यात प्रदेश हैं।

४. अनुभाग बन्ध - बन्धे हुए कर्म में फल देने की शक्ति की हीनाधिकता का निर्धारण अनुभाग बंध से होता है जैसे यह कर्म तीव्रता से उदय में आया अथवा मन्दता से यानि सिर दर्द बहुत तेज है अथवा हल्का-हल्का।

एक उदाहरण के माध्यम से इन चारों बन्धों को समझें- बाजार से एक नीबू खरीदा, नीबू का स्वभाव खट्टा है, प्रकृति बन्ध का परिणाम। नीबू एक माह तक खाने योग्य है-स्थिति बंध का परिणाम, नीबू बहुत खट्टा है- अनुभाग बंध का परिणाम, नीबू २०० पुद्गल परमाणु से मिलकर बना है अथवा इसमें ८ कली हैं, प्रदेश बंध का परिणाम है।

इस प्रकार शुभाशुभ कर्म के बंध को जानकर उनके बंध के कारण उनका फल जानकर विवेकपूर्वक कर्मों से बचने का, छुटकारा पाने का उपाय ही कर्म सिद्धान्त को पढ़ने-समझने का प्रयोजन है।

अहिंसा बिलछानी

जिन जिनालयों में कुएँ की सुविधा उपलब्ध नहीं है एवं अभिषेक ट्यूबवेल बोर के जल से किया जाता है जिससे बिलछानी (जिवाणी) की समस्या बनी रहती है और असंख्यात त्रस जीवों का घात होता है। जिस तरह कुएँ में बाल्टी के माध्यम से जिवाणी डाली जाती है उसी तरह जिवाणी यंत्र के माध्यम से बोरिंग में जिवाणी डाली जाती है।

इस यंत्र के निर्माण में स्टील के अलावा किसी रबर या चमड़े आदि का इस्तेमाल नहीं किया गया है इसलिए यह पूर्ण रूप से शुद्ध है, अशुद्धि का दोष नहीं लगेगा। पानी छानकर जो त्रस जीवों को जाने-अनजाने में घात हो जाता है, इस बिलछानी (जिवाणी) यंत्र द्वारा उसे वापस उसी स्थान पर पहुँचाया जा सकता है एवं असंख्यात जीवों के घात से बचा जा सकता है।

इस बिलछानी यंत्र के उपयोग से जीवों की रक्षा होगी, मंदिरों में अभिषेक के लिए एवं आचार्य संघ, मुनिसंघ, आर्यिका संघ, त्यागी-व्रतियों की आहारचर्या हेतु शुद्ध जल की प्राप्ति होगी।

इस यंत्र को श्री मंदिर जी में, त्यागी-व्रती आश्रमों में लगवाने (दान करने) से प्रतिदिन असंख्यात त्रस जीवों की रक्षा होगी एवं आगम की परम्परानुसार सातिशय पुण्य का संचय होगा। इस यंत्र का निर्माण ऋषभ जैन, विदिशा (म.प्र.) द्वारा भी किया जाता है।

उद्देश्य

अहिंसा जिवाणी यंत्र को देश के कोने-कोने में लगाना। पानी छानने, जिवाणी करने की जो आगम में परम्परा है वह लुप्त होती जा रही है उसके प्रति जागरूकता लाना।

इन्द्रिय सुख कैसा?

एक तेली तेल पैरने का कार्य करता था। उसके पास एक बूढ़ा बैल था। जिसके सहारे उसकी आजीविका चलती थी। अचानक बीमारी के कारण बैल की मृत्यु हो जाती है। उसके यहाँ एक सेठजी तेल लेने आते हैं। तो वह उदास होकर कहता है कि सेठजी, मेरा बैल मर गया है। मैं घान में तेल नहीं निकाल सकता। सेठजी ने कहा- कोई बात नहीं, तुम मुझसे रुपया उधार ले लो और नया बैल खरीद लाओ। वह नया बैल खरीद लाता है।दूसरे दिन फिर सेठजी तेल लेने आते हैं। तेली उदासी से कहता है सेठजी नया बैल तो निकम्मा निकल गया। वह एक ही स्थान पर खड़ा रहता है। आगे बढ़ता ही नहीं। सेठजी ने कहा- ऐसा करो एक लकड़ी में हरी घास बाँध देना और बैल के सामने ले जाना। उसने वैसे ही किया। बैल ने जैसे ही हरी घास देखी, घूमना शुरू किया। तेली का काम बन गया। वह बैल डंडे से बँधी घास को पाने के व्यामोह में सुबह से शाम तक चक्कर लगाता रहा पर उसे हरी घास हासिल न हो सकी।

ठीक इसी प्रकार संसारी जीव इन्द्रिय सुख को पाने की लालसा में चारों गतियों में परिभ्रमण करता रहता है। दुःख उठाता रहता है और अतीन्द्रिय हरी घास रूपी सुख से वंचित रह जाता है। उसी बैल की तरह।

विषापहार

द्विसंधान महाकाव्य के प्रणेता/रचयिता कविराज धनञ्जय पूजन में लीन थे। उनके सुपुत्र को सर्प ने डस लिया था। घर से कई बार खबर आने पर भी वे निस्पृह भाव से पूजन में पूर्णतया तन्मय रहे। इकलौते पुत्र की गंभीर स्थिति देख कुपित होकर उनकी धर्मपत्नी बच्चे को लेकर जिनमंदिर में आ गई और उसी मूर्छित अवस्था में पुत्र को पति के सामने डाल दिया।

पूजा से निवृत्त हो धनञ्जय ने विचार किया। जिनभक्ति का प्रभाव यदि आज नहीं दिखाया तो लोगों की श्रद्धा धर्म से उठ जाएगी। तत्काल ही वे भक्ति में लीन हो विषापहारस्तोत्र की रचना करते हुए प्रभु से कहने लगे-हे प्रभो! इस बालक का विष उतारने के लिए मैं मणि, मंत्र, औषधि की खोज में भटकने वाला नहीं मुझे तो आप रूप कल्पवृक्ष का ही आश्रय है सत्य है कि भगवन्! लोग विषापहार मणि, औषधियों, मंत्र और रसायन की खोज में भटकते फिरते हैं, वे नहीं जानते कि ये सब आपके ही पर्यायवाची नाम हैं। इधर स्तोत्र रचना हो रही थी उधर पुत्र का विष उतर रहा था। स्तोत्र पूरा होते ही बालक निर्विष होकर उठ बैठा, चारों ओर जैनधर्म की जय-जयकार गूँज उठी धर्म की अपूर्व प्रभावना हुई।

भजन

इतनी शक्ति हमें देना दाता,
मन का विश्वास कमजोर हो ना।
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे,
भूलकर भी कोई भूल हो ना॥
दूर अज्ञान के हों अन्धेरे,
तू हमें ज्ञान की रोशनी दे।
हर बुराई से बचते रहें हम,
जितनी भी दे भली जिन्दगी दे।
बैर हो न किसी का किसी से,
भावना मन में बदले की हो ना ॥
हम चलें......... ॥
हम अंधेरे में हैं रोशनी दे,
खो न दे खुद को ही दुश्मनी से।
हम सजा पाएँ अपने किये की,
मौत भी हो तो सह लें खुशी से।
दर्द गुजरा है कल फिर न गुजरे,
आने वाला वो कल ऐसा हो ना॥
हम चलें......... ॥
हम न सोचें हमें क्या मिला है,
हम ये सोचें किया क्या है अर्पण।
फूल खुशियों के बाँटें सभी को,
सबका जीवन ही बन जाए मधुवन।
अपनी करुणा का जल तू बहा कर,
कर दे पावन हर इक मन का कोना॥
हम चलें......... ॥
हर तरफ जुल्म है बेबसी है,
सहमा-सहमा-सा हर आदमी है।
पाप का बोझ बढ़ता ही जाए,
जाने कैसे ये धरती थमी है।
बोझ ममता का तू ये उठा ले,
प्यारी रचना का यूँ अन्त हो ना॥
हम चलें......... ॥
हम चलें नेक रस्ते पे हमसे,
भूलकर भी कोई भूल हो ना॥

रोने से कम होता है ये गम।
तो दुःख में बेशक रो लो तुम।।
किन्तु मुस्करा कर जीने वालों को।
सुखी मत समझ लेना तुम।।

जहाँ हर सिर झुक जाए उसे मंदिर कहते हैं,
जहाँ सब नदियाँ सिमट जाएँ उसे समुन्दर कहते हैं।
यहाँ मुश्किलों से भरी दुनिया है बंधुओं,
जो हर मुश्किल को पार कर जाए उसे सिकन्दर कहते हैं।

पाठ्यक्रम - ८

८ ब सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और मन्त्रीश्वर चाणक्य

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के अंतिम पाद में शक्तिशाली नन्दवंश का उच्छेद कर मौर्य वंश की स्थापना करने वाले प्रधान नायक ये दोनों थे। जो गुरु-शिष्य थे। चाणक्य राजनीति विद्या-विलक्षण एवं नीति विशारद ब्राह्मण पंडित था। चन्द्रगुप्त पराक्रमी एवं तेजस्वी क्षत्रिय वीर था। इस विरल मणि-कांचन संयोग को सुगन्धित करने वाला अन्य सुयोग यह था कि वह दोनों ही अपने-अपने कुल परम्परा तथा व्यक्तिगत आस्था की दृष्टि से जैन धर्म के प्रबुद्ध अनुयायी थे।

चाणक्य का जन्म ईसा पूर्व ३७५ के लगभग चणय नामक ग्राम में हुआ था। माता का नाम चणेश्वरी एवं पिता का नाम चणक था। चणक के पुत्र होने से उनका नाम चाणक्य हुआ। यह लोग जाति की अपेक्षा ब्राह्मण थे किन्तु धर्म की दृष्टि से पापभीरु जैन श्रावक थे। शिशु चाणक्य के मुँह में जन्म से ही दाँत थे, यह देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस लक्षण को देख भविष्य वक्ता ने इसे ''एक शक्तिशाली नरेश'' होना बताया। ब्राह्मण चणक श्रावकोचित क्रिया करने वाला था, संतोषी वृत्ति का धार्मिक व्यक्ति था वैसे ही उनकी सहधर्मिणी थी। राज्य वैभव को वे लोग पाप और पाप का कारण समझते थे। अतएव चणक ने शिशु के दाँत उखड़वा डाले। इस पर साधुओं ने भविष्य वाणी की, कि अब वह स्वयं राजा नहीं बनेगा, किन्तु अन्य व्यक्ति के माध्यम से राज्य शक्ति का उपयोग और संचालन करेगा। बड़े होने पर तात्कालिक ज्ञान केन्द्र तक्षशिला तथा उसके आस-पास निवास करने वाले आचार्यों से शिक्षण प्राप्त किया। तीक्ष्ण बुद्धिमान होने से समस्त विद्याओं एवं शास्त्रों में वह पारंगत हो गया। दरिद्रता धनहीनता से पीड़ित चाणक्य पाटलीपुत्र के राजा महापद्मनंद के पास पहुँचा। अपनी विद्वता से उसने राजा को प्रभावित किया एवं दान विभाग के प्रमुख का पद प्राप्त किया। किन्हीं कारणों से राजपुत्र के द्वारा किए गए अपमान से क्षुब्ध एवं कुपित चाणक्य ने भरी सभा में नंद वंश के समूल नाश की प्रतिज्ञा की और पाटलिपुत्र का परित्याग कर दिया। घूमते-घूमते वह मयूर ग्राम पहुँचा, वहाँ के मुखिया की इकलौती लाड़ली पुत्री गर्भवती थी, उसी समय उसे चन्द्रपान का विलक्षण दोहला उत्पन्न हुआ। जिसके कारण घर के लोग चिंतित थे। चाणक्य ने उसके दोहले को शांत करने का आश्वासन दिया और यह शर्त रखी कि यह लड़का हुआ तो उस पर मेरा अधिकार होगा जब चाहे उसे ले जा सकता हूँ। अन्य कोई उपाय न देखकर शर्त मान ली गई, तब चाणक्य ने एक थाली में जल भरवाकर उसमें पूर्ण चन्द्र को प्रतिबिम्बित कर गर्भिणी को इस चतुराई से पिला दिया कि उसे विश्वास हो गया कि उसने चन्द्रपान किया। कुछ दिनों बाद मुखिया की पुत्री ने एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। जिसका नाम चन्द्रगुप्त रखा गया। यह घटना ईसा पूर्व ३४५ के आसपास की है। विशाल साम्राज्य के स्वामी नंद वंश को नष्ट करना हँसी खेल नहीं था। यह चाणक्य जानता था फिर भी धुन का पक्का था अतएव धैर्य के साथ अपनी तैयारी में संलग्न हो गया। अपने कई वर्ष उसने धातु विद्या की सिद्धि एवं स्वर्ण आदि धन एकत्र करने में व्यतीत किए। आठ-दस वर्ष बाद पुनः चाणक्य उसी मयूर ग्राम में आया। वहाँ पर उसने खेलते हुए कुछ बालक देखे। कौतुक वश वह उनके खेल को देखने लगा। बाल राजा के अभिनय से वह अत्यन्त आकृष्ट हुआ पास जाकर उसने उस बालक को राजा बनने योग्य लक्षणों को पाया, तब मित्रों से उसका पता पूछने पर ज्ञात हुआ यह वही मुखिया का नाती है चन्द्रगुप्त तब अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ माता-पिता को अपने वचनों का स्मरण करा राजा बनाने के उद्देश्य वश उसे ले गया। कई वर्षों तक उसने चन्द्रगुप्त को विविध अस्त्र-शस्त्रों के संचालन, युद्ध-विद्या, राजनीति तथा अन्य उपयोगी ज्ञान-विज्ञान एवं शास्त्रों की समुचित शिक्षा दी एवं धीरे-धीरे युवा वीर साथी जुटा लिये।

ई.पू. 325 के लगभग चाणक्य के पथ प्रदर्शन में मगध राज्य की सीमा पर अपना एक छोटा-सा स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। कुछ दिनों पश्चात् इन्होंने छद्म भेष में नन्दों की राजधानी पाटलीपुत्र में प्रवेश कर आक्रमण कर दिया। चाणक्य के कूट कौशल के बाद भी नंदों की असीम सैन्य शक्ति के सम्मुख ये बुरी तरह पराजित हुए। औरे जैसे-तैसे प्राण बचाकर भागे। एक बार घूमते हुए रात्रि में उन्होंने एक झोपड़े में बुढ़िया की डाट सुनी कि हे पुत्र! तू भी चाणक्य के समान अधीर एवं मूर्ख है, जो गर्म-गर्म खिचड़ी को बीच से ही खा रहा है, हाथ न जलेगा तो क्या होगा। चाणक्य को समझ आयी कि सीधे राजधानी पर हमला बोलकर

मैने गलती की फिर उन्होंने नंद साम्राज्य के सीमावर्ती प्रदेशों पर अधिकार करना प्रारंभ किया। एक के पश्चात् एक ग्राम नगर, गढ़ छल-बल कौशल से जैसे भी बना हस्तगत करते चले गए। चन्द्रगुप्त के पराक्रम, रण कौशल एवं सैन्य संचालन पटुता, चाणक्य की कूट नीति एवं सदैव सजग गिद्ध दृष्टि के परिणामस्वरूप प्राय: सभी नन्दकुमार लड़ते-लड़ते वीरगति को प्राप्त हुए।

वृद्ध महाराज महापद्म चाणक्य को धर्म की दुहाई दे, सपरिवार सुरक्षित अन्यत्र चले गये। नंद दुहिता राजरानी सुप्रभा का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ हुआ और वह अग्रमहिषी बनी। इस प्रकार ई.पू. ३१७ में पाटलीपुत्र में नंदवंश का पतन और उसके स्थान पर मौर्य वंश की स्थापना हुई। व्यक्तिगत रुप से सम्राट चन्द्रगुप्त धार्मिक एवं साधु सन्तों को सम्मान करने वाला था। प्राचीन सिद्धान्त शास्त्र तिलोय पण्णत्ति में चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय कुलोत्पन्न मुकुटबद्ध माण्डलिक सम्राटो में अंतिम कहा गया है जिन्होंने दीक्षा लेकर अंतिम जीवन जैन मुनियों के रूप में व्यतीत किया। उनके गुरु आचार्य भद्रबाहु थे। जिन्होंने श्रवण बेलगोला में समाधि मरण ग्रहण किया। उसी स्थान के एक पर्वत पर कुछ वर्ष उपरांत चन्द्रगुप्त मुनिराज ने सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

लगभग २५ वर्ष राज्य भोग करने के पश्चात् ईसा पूर्व २९८ में अपने पुत्र बिम्बसार को राज्यभार सौंपकर और उसे गुरु चाणक्य के ही अभिभावकत्व में छोड़ दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। कुछ दिनों पश्चात् चाणक्य ने भी मन्त्रित्व का भार अपने शिष्य राधागुप्त को सौंपकर मुनि दीक्षा लेकर तपश्चरण के लिए चले गए थे। अंत समय में सल्लेखना पूर्वक देह त्याग किया।

सब कुछ तो मिल गया है, गुरु दर्शनों के बाद ।
अब और क्या मैं चाहूँ, गुरु दर्शनों के बाद ।।
भव-भव की आरजू थी, वो पूरी हो गयी है ।
ये जो मेरी जिन्दगी है, तेरे चरणों में खो गयी है।
अब और क्या मैं चाहूँ, गुरु दर्शनों के बाद ।
सब कुछ तो .....
दुनिया भी मिल गई है, मंजिल भी मिल गई है।
आँखों को तेरे चरणों की, जन्नत भी मिल गई है।
अब और क्या मैं देखूँ, गुरु को देखने के बाद ।
सब कुछ तो ......

पञ्चमहागुरु भक्ति

सुरपति शिर पर किरीट धारा, जिसमें मणियाँ कई हजारा।
मणि की द्युतिजल से धुलते हैं, प्रभु पद-नमता सुख फलते हैं॥ 1॥
सम्यक्त्वादिक वसु-गुण धारे, वसु-विध विधि-रिपु नाशन-हारे।
अनेक-सिद्धों को नमता हूँ, इष्ट-सिद्धि पाता समता हूँ ॥ 2॥
श्रुत-सागर को पार किया है, शुचि संयम का सार लिया है।
सूरीश्वर के पदकमलों को, शिर पर रख लूँ दु:ख-दलनों को ॥ 3॥
उन्मार्गी के मद-तम हरते, जिनके मुख से प्रवचन झरते।
उपाध्याय ये सुमरण कर लूँ, पाप नष्ट हो सु-मरण कर लूँ॥ 4॥
समदर्शन के दीपक द्वारा, सदा प्रकाशित बोध सुधारा।
साधु चरित के ध्वजा कहाते, दे-दे मुझको छाया तातैं॥ 5॥
विमल गुणालय-सिद्धजिनों को, उपदेशक मुनि-गणी गणों को।
नमस्कार पद पञ्च इन्हीं से, त्रिधा नमूँ शिव मिले इसी से ॥ 6॥
नमस्कार वर मन्त्र यही है, पाप नसाता देर नहीं है।
मंगल-मंगल बात सुनी है, आदिम मंगल-मात्र यही है ॥ 7॥
सिद्ध शुद्ध हैं जय अरहन्ता, गणी पाठका जय ऋषि संता।
करें धरा पर मंगल साता, हमें बना दें शिव सुख धाता॥ 8॥
सिद्धों को जिनवर चन्द्रों को, गण नायक पाठक वृन्दों को।
रत्नत्रय को साधु जनों को, वन्दूँ पाने उन्हीं गुणों को ॥ 9॥
सुरपति चूड़ामणि-किरणों से, लालित सेवित शतों दलों से।
पाँचों परमेष्ठी के प्यारे, पादपद्म ये हमें सहारे ॥ 10॥
महाप्रातिहार्यों से जिनकी, शुद्ध गुणों से सुसिद्ध गण की।
अष्ट मातृकाओं से गणि की, शिष्यों से उपदेशक गण की॥
वसु विध योगांगों से मुनि की, करूँ सदा थुति शुचि से मन की॥ ११॥

अञ्चलिका

पञ्चमहागुरु भक्ति का करके कायोत्सर्ग।
आलोचन उसका करूँ, ले प्रभु तव संसर्ग॥ 1॥

लोक शिखर पर सिद्ध विराजे अगणित गुणगण मण्डित है।
प्रातिहार्य आठों से मण्डित जिनवर पण्डित-पण्डित हैं॥
पञ्चाचारों रत्नत्रय से शोभित हो आचार्य महा।
शिव पथ चलते और चलाते औरों को भी आर्य यहाँ॥ २॥
उपाध्याय उपदेश सदा दे चरित बोध का शिव पथ का।
रत्नत्रय पालन में रत हो साधु सहारा जिनमत का॥
भाव भक्ति से चाव शक्ति से निर्मल कर-कर निज मन को।
वंदूँ पूजूँ अर्चन कर लूँ नमन करूँ मैं गुरुगण को ॥ 3॥
कष्ट दूर हो कर्म चूर हो बोधि लाभ हो सद्गति हो।
वीर-मरण हो जिनपद मुझको मिले सामने सन्मति ओ॥ 4॥

संस्मरण -बात घर कर गई

अधिकतर यह देखने में आता है कि यदि किसी व्यक्ति को कुछ बात लग जाती है तो वह उस कार्य को अवश्य ही करता है। क्योंकि यह उसका 'प्रेस्टीज प्वाइन्ट' बन जाता है। इसके लिए वह अपना जीवन तक दाव पर लगा देता है। यदि उसका उद्‌देश्य पारलौकिक हुआ तो समझो कल्याण निश्चित है।

बालक विद्याधर बचपन में बहुत स्वादिष्ट भोजन करने के शौकीन थे। वे मिर्च मसाला, नमक तेल, खटाई, बहुत खाया करते थे, तो परिवार वाले कहा करते थे कि तुम अभी इस प्रकार का शौक रखते हो आगे क्या करोगे? जब वे ब्रह्मचारी बने तो उन्होंने आजीवन नमक, मिर्च, तेल, खटाई का त्याग कर दिया क्योंकि वे समझ गये कि बिना रसना इन्द्रिय विजय के साधु बनना या निर्दोष व्रतों का पालन कठिन है। अर्थात् साधु को रस परित्याग आवश्यक है।

आज उनकी निर्दोष चर्या एवं त्याग तपस्या स्पष्ट देखने में आती है जो उनके संकल्प का परिणाम एवं बचपन की बात का असर हो सकता है। क्योंकि हर सफल व्यक्तित्व के पीछे कोई न कोई घटना अवश्य छिपी रहती है, जिस प्रकार महल या मंदिर के नीचे नींव।

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र-महिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्त-सुपाठका मुनिवरा रत्नत्रयाराधकाः,
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं, कुर्वन्तु ते (मे) मङ्गलम्॥१॥

अर्थ : (**इन्द्र-महिताः**) इन्द्रों द्वारा पूजित (**अर्हन्तः भगवन्तः**) अर्हन्त भगवान (**च**) और (**सिद्धीश्वराः**) सिद्धि के स्वामी (**सिद्धाः**) सिद्ध भगवान (**जिनशासनोन्नतिकराः**) जिनशासन की उन्नति करने वाले (**आचार्याः**)आचार्य परमेष्ठी (**श्रीसिद्धान्त-सुपाठकाः**) श्री युक्त सिद्धान्त को अच्छी तरह से पढ़ाने वाले (**पूज्या उपाध्यायकाः**) पूज्य उपाध्याय परमेष्ठी (**रत्नत्रया-राधकाः**) रत्नत्रय के आराधक (**मुनिवराः**) साधु परमेष्ठी (**एते पञ्च**) ये पाँच (**परमेष्ठिनः**) परमेष्ठी (**प्रतिदिनं**) प्रतिदिन (**ते मङ्गलम्**) तुम्हारा मङ्गल (**कुर्वन्तु**) करें।

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत-रत्नप्रभा-,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाऽम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिन सिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ २॥

अर्थः(**श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट-प्रद्योत-रत्नप्रभा-भास्वत्-पाद-नखेन्दवः**) लक्ष्मी से संयुक्त नम्रीभूत देवेन्द्रों और असुरेन्द्रों के मुकुटों के चमकदार रत्नों की कांति से सुशोभित चरणों के नखरूपी चन्द्रमा हैं जिनके और (**प्रवचनाम्भोधीन्दवः**) जो प्रवचनरूपी समुद्र को वृद्धिंगत करने के लिए चन्द्रमा के समान हैं (**स्थायिनः**) जो अपने स्वरूप में स्थित रहते हैं (**योगीजनैः स्तुत्या**) योगीजनों के द्वारा स्तुति को प्राप्त (**जिनसिद्ध-सूरि-अनुगताः**) अर्हन्त, सिद्ध, सूरि-आचार्य के अनुगामी (**पाठकाः**) उपाध्याय और (**साधवः**) साधुजन (**ये सर्वे**) ये सभी (**ते मंगलम्**) तुम्हारा मंगल (**कुर्वन्तु**) करें।

सम्यग्दर्शन - बोध - वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्ति - श्री - नगराऽधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्र्यालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ३॥

अर्थ :(**अमलम्**) निर्मल (**सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तं त्रिविधं**) सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप तीन प्रकार का (**पावनम् रत्नत्रयम्**) पवित्र रत्नत्रय (**मुक्तिश्री नगराधिनाथ जिनपति उक्तः**) मुक्तिरूपी लक्ष्मी के नगर के स्वामी जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहा गया (**अपवर्ग-प्रदः**) मोक्ष को देने वाला (**धर्मः**) जिनधर्म, (**सुक्तिसुधा**) शास्त्ररूपी अमृत/जिनागम, (**अखिलम् चैत्यम्**) समस्त जिन प्रतिमाएँ (**च**) और (**श्र्यालयं चैत्यालयं**) वैभव/शोभा के स्थान चैत्यालय (**चतुर्विधम्**) चार प्रकार (**प्रोक्तं**) कहे गए (**अमी**) ये सभी (**ते मंगलम्**) तुम्हारा मंगल (**कुर्वन्तु**) करें।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो, ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोतरा विंशति-
स्त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ४॥

अर्थ : (**त्रिभुवनख्याताः**) तीनों लोकों में विख्यात (**नाभेयादिजिनाधिपाः**) नाभिपुत्र ऋषभादि जिनस्वामी

(चतुर्विंशतिः) चौबीस तीर्थङ्कर **(श्रीमन्तः)** लक्ष्मीवान **(यः)** जो **(भरतेश्वरप्रभृतयः)** भरतेश्वरादि **(द्वादश-चक्रिणः)** 12 चक्रवर्ती **(यः विष्णु-प्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः)** जो 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 बलभद्र **(सप्तोतराविंशतिः)** सात अधिक बीस अर्थात् सत्ताईस इस प्रकार **(त्रैकाल्ये)** तीनों कालों में **(प्रथिताः)** प्रसिद्ध **(त्रिषष्टि पुरुषाः)** त्रेसठ शलाका पुरुष **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

ये सर्वौषधिऋद्धयः सुतपसो वृद्धिङ्गताः पञ्च ये,
ये चाष्टाङ्गमहानिमित्तकुशला येऽष्टौ विधाश्चारिणः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धिऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ५॥

अर्थ : (ये सुतपसः) जो श्रेष्ठ तप से **(वृद्धिङ्गताः)** वृद्धि को प्राप्त **(पञ्च)** पाँच **(सर्वौषधि ऋद्धयः)** सर्वौषधि ऋद्धि के धारी **(च)** और **(यः अष्टाङ्ग महानिमित्त कुशलाः)** जो अष्टाङ्ग महानिमित्तों में कुशल **(च अष्टौ)** और आठ **(विधाश्चारिणः)** आकाश आदि चारण ऋद्धियों के धारक **(पञ्च-ज्ञानधराः)** पाँच प्रकार के ज्ञानऋद्धि धारी **(त्रयः बलिनः अपि)** तीन प्रकार के बल ऋद्धि वाले **(यः बुद्धि-ऋद्धीश्वराः)** जो बुद्धि ऋद्धि के स्वामी **(एते सप्त)** ये सात **(सकलार्चिता गणभृतः)** सभी के द्वारा पूजित श्रेष्ठ गणधरदेव/मुनिजन **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनाऽमरगृहे मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः,
जम्बू-शाल्मलिचैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ६॥

अर्थ : (ज्योतिर्व्यन्तर-भावन-अमरगृहे) ज्योतिषियों, व्यन्तरों, भवनवासियों और वैमानिक देवों के निवास स्थान में **(मेरौ कुलाद्रौ स्थिताः)** मेरुओं पर, कुलाचलों में स्थित **(जम्बु-शाल्मलिचैत्यशाखिषु)** जम्बूवृक्ष, शाल्मलिवृक्ष, चैत्यवृक्ष की शाखाओं पर **(तथा वक्षार-रूप्याद्रिषु)** तथा वक्षारगिरि, विजयार्ध पर्वतों पर **(इष्वाकारगिरौ)** इष्वाकार/बाण के आकार वाले पर्वत पर **(च कुण्डलनगे)** और कुण्डल पर्वत पर **(च नन्दीश्वरे द्वीप)** और नन्दीश्वर द्वीप में **(मनुजोत्तरे शैले)** मानुषोत्तर पर्वत पर **(ये जिनगृहाः)** जो जिन चैत्यालय हैं, **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

कैलासे वृषभस्य निर्वृतिमही, वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्यतुग्जिनपतेः, सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे, नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ७॥

अर्थ : (कैलासे) कैलासपर्वत पर **(वृषभस्य)** ऋषभदेव की **(निर्वृतिमही)** निर्वाणभूमि है **(वीरस्य)** महावीर स्वामी की निर्वाणभूमि **(पावापुरे)** पावापुर में है **(वसुपूज्यतुग्जिनपतेः)** वसुपूज्य राजा के पुत्र वासुपूज्य की निर्वाणभूमि **(चम्पायाम्)** चम्पापुर में है **(अर्हतः नेमीश्वरस्य)** अरिहंत नेमिनाथ भगवान् की निर्वाणभूमि **(ऊर्जयन्तशिखरे)** ऊर्जयन्तपर्वत पर **(च)** और **(शेषाणाम् अर्हताम् अपि)** शेष तीर्थङ्करों की भी **(प्रसिद्धविभवाः)** प्रसिद्ध वैभववाली **(निर्वाण-अवनयः)** निर्वाणभूमियाँ **(सम्मेदशैल)** सम्मेदशिखर पर हैं **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ८॥

अर्थ : (धर्मात् एव) धर्म के प्रभाव से ही **(सर्पो हारलता)** सर्प गले का हार **(भवति)** हो जाता है **(असिलता)** तलवार **(सत्पुष्पदामायते)** सुंदर पुष्पों की माला बन जाती है **(विषं अपि)** विष भी **(रसायनं)** अमृत **(सम्पद्येत)** हो जाता है **(रिपुः)** शत्रु **(प्रीतिं विधत्ते)** प्रीति को धारण करता है। **(प्रसन्नमनसः)** प्रसन्न मन से **(देवाः)** देवगण **(वशं)** वश में **(यान्ति)** हो जाते हैं। **(वा)** और **(किं बहु ब्रूमहे)** बहुत क्या कहें **(धर्मात्)** उस धर्म से **(नभः अपि)** आकाश भी **(नगैः)** रत्नों से **(वर्षति)** बरसता है अर्थात् आकाश से रत्नों की वर्षा होने लगती है वह धर्म **(ते मङ्गलम्)** तुम्हारा मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

यो गर्भाऽवतरोत्सवो भगवतां जन्माऽभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मङ्गलम्॥ ९॥

अर्थ : (यः भगवताम्) जो भगवानों के **(गर्भावतरोत्सवः)** गर्भकल्याणक का उत्सव **(जन्माभिषेकोत्सवः)** जन्मकल्याणक का उत्सव **(यः परिनिष्क्रमेण विभवः जातः)** जो तपकल्याणक उत्सव के द्वारा वैभव हुआ **(यः केवलज्ञानभाक्)** जो केवलज्ञानकल्याणक को प्राप्त हुए **(च)** और **(यः कैवल्यपुर-प्रवेशमहिमा)** जो कैवल्यपुर मोक्ष में प्रवेश की महिमा अर्थात् निर्वाण कल्याणक **(स्वर्गिभिः)** देवों के द्वारा **(यः संभावितः)** जो पूजा की गई **(तानि पञ्च)** वे पाँचों **(कल्याणनि)** कल्याणक **(ते सततम्)** तुम्हारा हमेशा **(मङ्गलम्)** मङ्गल **(कुर्वन्तु)** करें।

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य-संपत्प्रदं,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्चसुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।१०।।

अर्थ : (इत्थम्) इस प्रकार **(सौभाग्य संपत्प्रदम्)** सौभाग्य रूपी सम्पत्ति के प्रदाता **(इदं श्री जिनमंगलाष्टकम्)** इस श्री जिन मङ्गलाष्टक को **(सुधियः)** विद्वान् **(तीर्थङ्कराणाम्)** तीर्थङ्करों के **(कल्याणेषु महोत्सवेषु)** कल्याणक महोत्सवों में **(यः)** जो **(उषः)** प्रातःकाल **(शृण्वन्ति च पठन्ति)** सुनते और पढ़ते हैं **(तैः सुजनैः)** उन सज्जनों के द्वारा **(धर्मार्थकामन्विता)** धर्म, अर्थ और काम से सहित **(लक्ष्मीः आश्रयते)** लक्ष्मी प्राप्त की जाती है और **(व्यपायरहिता)** विनाश रहित अर्थात् अविनश्वर **(निर्वाणलक्ष्मीः अपि)** मोक्ष लक्ष्मी भी **(आश्रयते)** प्राप्त करते हैं।

......

वैराग्य भावना

बीज राख फल भोगवै, ज्यों किसान जग माँहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥१॥
इह विधि राज करै नरनायक, भोगै पुण्य विशालो।
सुख सागर में रमत निरंतर, जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्म-संजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।
देखि शिरीगुरु के पदपंकज, लोचन अलि आनन्दे॥२॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरनन में दिठि दीनी॥
गुरु उपदेश्यो धर्म-शिरोमणी, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥३॥

मुनि-सूरज कथनी किरणावलि लगत भरम बुधि भागी।
भव-तन-भोग स्वरूप विचार्यो, परम धरम अनुरागी॥
इह संसार महावन भीतर, भरमत ओर न आवै।
जामन मरन जरा दव दाझै जीव महादुःख पावै॥४॥

कबहूँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन-भेदन भारी।
कबहूँ पशु परजाय धरै तहँ वध बंधन भयकारी॥
सुरगति में परसंपति देखें, राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय,सर्व सुखी नहिं कोई॥५॥

कोई इष्ट-वियोगी बिलखै, कोई अनिष्ट-संयोगी।
कोई दीन-दरिद्री विलखै, कोई तन के रोगी॥
किसही घर कलिहारी नारी, कै बैरी सम भाई।
किसही के दुःख बाहिर दीखें, किसही उर दुचिताई॥६॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संतति सों दुख उपजै, क्यों प्राणी सुख सोवै॥
पुण्य उदय जिनके-तिनके भी, नाहिं सदा सुख साता।
यो जगवास जथारथ देखें, सब दीखै दुखदाता॥७॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थङ्कर क्यों त्यागै।
काहे कों शिव साधन करते, संजमसों अनुरागै॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजे, तो भी शुद्ध न होई॥८॥

सात कुधातुभरी मल-मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अंतर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है?॥
नव-मल-द्वार स्त्रवैं निशि-वासर, नाम लिये घिन आवै।
व्याधि-उपाधि अनेक जहाँ-तहँ, कौन सुधी सुख पावै॥९॥

पोषत तो दुःख दोष करै अति, सोषत सुख उपजावै।
दुर्जन-देह-स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावै॥
राचन-जोग स्वरूप न याको, विरचन-जोग सही है।
यह तन पाय महा तप कीजे यामें सार यही है॥१०॥

भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति, सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगिनि विष से विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म-रतन के चोर चपल अति, दुर्गति-पंथ सहाई॥११॥

मोह-उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन मानै॥
ज्यों-ज्यों भोग संजोग मनोहर, मन-वांछित जन पावै।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवै॥१२॥

मैं चक्रीपद पाय निरंतर, भोगे भोग घनेरे।
तौ भी तनक भये नहिं पूरन, भोग मनोरथ मेरे॥
राजसमाज महा अघ-कारण, बैर बढ़ावन-हारा।
वेश्यासम लछमी अति चंचल, याका कौन पत्यारा॥१३॥

मोह महा-रिपु बैर विचार्यो, जग-जिय संकट डारे।
घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जियके हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥१४॥

छोड़े चौदह रत्न नवों निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक संपत्ति बहुतेरी जीरण-तृण सम त्यागी।
नीति-विचार नियोगी सुत कों, राज दियो बड़भागी॥१५॥

होय निशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरु चरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज भारी।
ऐसी संपत्ति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥१६॥

दोहा

परिग्रहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ।
निज स्वभाव में थिर भए, वज्रनाभि निरग्रंथ॥

......

कुछ भी ज्ञान न होने पर चिंता नहीं करना यही धर्म ध्यान है

पाठ्यक्रम - ९

९ अ निर्भय बनाने वाली भावना- बारह अनुप्रेक्षा

किसी वस्तु अथवा परिस्थिति के विषय में बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। वैराग्य रूप परिणामों को उत्पन्न करने के लिए अनुप्रेक्षा माता के समान मानी गई है।

अनुप्रेक्षा बारह होती हैं, इन्हें बारह-भावना भी कहा जाता है, इनके नाम क्रमशः
१. अनित्य भावना, २. अशरण भावना, ३. संसार भावना, ४. एकत्व भावना, ५. अन्यत्व भावना, ६. अशुचि भावना,
७. आस्रव भावना, ८. संवर भावना, ९. निर्जरा भावना, १०. लोक भावना, ११. बोधि दुर्लभ भावना और १२. धर्म भावना हैं।

1. अनित्य अनुप्रेक्षा - अनित्य का अर्थ नष्ट होने वाला, नाशवान। धन-परिवार आदि समस्त वैभव बिजली की चमक के समान क्षणभंगुर है, इन्हें कितना भी स्थायी रखने का प्रयास किया जाए ये स्थिरता को प्राप्त नहीं होते हैं। यौवनावस्था कुछ ही समय पश्चात् बुढ़ापे में परिवर्तित हो मृत्यु में ढल जाती है।

भावना का फल- इस प्रकार संसार, शरीर, भोगों की अनित्यता का चिंतन करने पर, अशुभ कर्मोदय से इष्ट वस्तुओं का वियोग होने पर, अनिष्ट वस्तुओं का संयोग होने पर मन संताप को प्राप्त नहीं होता, शरीर आदि पर पदार्थों की क्षणभंगुरता का ज्ञान होने से उनमें घमंड, मद पैदा नहीं होता, पर पदार्थों के प्रति राग भाव कम होता है। मोह की शृंखला टूट जाती है।

2. अशरण अनुप्रेक्षा - अशरण का अर्थ सहारा देने वाला नहीं। माता-पिता आदि परिजन, धन-सम्पत्ति, मंत्र-तंत्र, रागी-द्वेषी, देवी-देवता कोई भी मृत्यु से इस जीव को बचाने वाला नहीं है। बड़े-बड़े शक्तिशाली महापुरुष भी काल के गाल में समा गए।

भावना का फल- अतः इस संसार में कोई भी हमारा रक्षक नहीं हैं, ऐसा विचार करते हुए धर्म में बुद्धि लगाना चाहिए। सच्चे देव, गुरु, शास्त्र ही एकमात्र संसार के दुःखों से बचाने वाले हैं, वे ही एक मात्र शरण भूत है ऐसा विचार करना चाहिए।

3. संसार अनुप्रेक्षा - अज्ञान के कारण यह प्राणी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव रूप पंचपरिवर्तन कर रहा है। नरक गति में यह जीव निरंतर भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, शस्त्र घात आदि के कष्टों को सहन करता है। तिर्यञ्च गति में यह जीव छेदा-भेदा जाना, बोझा ढोना, एक स्थान पर बंधे रहना इत्यादि अकथनीय सैकड़ों दुःखों को, कष्टों को सहन करता है। मनुष्य गति में इष्ट पुत्रादि के वियोग से उत्पन्न दुःख, संतान का नहीं होना, खोटा पुत्र, कलहकारिणी स्त्री, धनहीनता, विकलांगता आदि नाना दुःखों को भोगता है। देवगति में इंद्रिय भोगों से तृप्त न होता हुआ, दूसरे देवों के वैभव से ईर्ष्या करता हुआ, मरण समय के पूर्व माला मुरझाने पर पीड़ा का अनुभव करता हुआ दुःखी होता है।

भावना का फल- अतः इस संसार में वास्तव में कहीं सुख नहीं है, मोह के कारण यह जीव विषय-भोग से उत्पन्न पीड़ा को ही सुख मान लेता है। ऐसा बार-बार चिंतन करता हुआ जीव सांसारिक विषय भोगों से उदासीन होता हुआ, सच्चे धर्म में प्रवृत्ति करता है।

4. एकत्व भावना - यह जीव अकेला ही जन्मता और मरता है, अकेला ही सारे पुण्य-पाप के फलों को भोगता है, जन्म से साथ रहने वाला शरीर भी अंत समय में यहीं छूट जाता है। यहाँ कोई भी जीवन भर साथ नहीं निभाता, थोड़े दिनों के ये सभी स्वार्थ-वश साथी बने हुए हैं, परगति को जाते समय कोई भी साथ नहीं जाता है।

भावना का फल- ऐसा विचार करता हुआ जीव स्त्री-पुत्रादि से राग भाव को कम करता है, उनके संयोग-वियोग में विशेष हर्ष-विषाद नहीं करता हुआ अपने स्वरूप का विचार करता है। पर निमित्त से अपने परिणामों को नहीं बिगाड़ता हुआ एकत्व/आत्म तत्त्व की आराधना करता है।

5. अन्यत्व अनुप्रेक्षा - मेरा यह परिवार, शरीर, मकान आदि वैभव ये सब मुझसे अत्यन्त भिन्न/अलग हैं। मैं चेतन स्वभाव वाला ज्ञानी हूँ अन्य सब पुद्गल जड़ स्वभाव वाले, अज्ञानी हैं।

इस प्रकार चिंतन करने से शरीरादि से राग भाव कम होता, पर के वियोग से उत्पन्न तनाव कम होता है, क्योंकि जो अपना है ही नहीं उसके अभाव में क्यों दु:खी होना।

6. अशुचि अनुप्रेक्षा - यह शरीर अत्यन्त अपवित्र है, गंदा है, घिनावने पदार्थ मल-मूत्र, पीव खून आदि को उत्पन्न करने वाला है, शुक्र शोणित से बना हुआ है। दुर्जन के समान स्वभाव वाले इस शरीर से मूर्ख लोग ही प्रीति रखते हैं।

इस प्रकार अशुचि भावना का चिंतन करने पर शरीर के प्रति राग भाव कम होता है, विषय-वासनाओं से मन दूर हट जाता है, रूप, बलादि का मद उत्पन्न नहीं होता हैं। रत्नत्रय के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है।

7. आस्रव अनुप्रेक्षा - कर्मों का आना आस्रव है। पाँच मिथ्यात्व, बारह अविरति, पन्द्रह योग और पच्चीस कषाय मुख्य रूप से आस्रव के कारण हैं। आस्रव इहलोक और परलोक दोनों में दु:खदायी है, इस प्रकार आस्रव के दोषों का चिंतन करना चाहिए।

ढोल बजा के बोल

ढोल बजा के बोल कि बाबा मेरा है।
जोर-जोर से बोल कि बाबा मेरा है।।
कोई बोलो बड़ा कोई बोले छोटा।
बाबा है अनमोल कि बाबा मेरा है।।
ताली बजा के बोल कि बाबा मेरा है।
कोई बोले उत्तर कोई बोले दक्षिण।।
कोई बोले पूरब कोई बोले पश्चिम।
वो तो है चहुँओर कि बाबा मेरा है।
कोई बोले मोटा कोई बोले पतला।
बाबा गोल मटोल कि बाबा मेरा है।
जोर-जोर से बोल कि बाबा मेरा है।
ढोल बजा के बोल कि बाबा मेरा है।।

अत: कछुए के समान इंद्रिय को वश में रखना चाहिए। समता भाव धारण कर, मोह-आकुलता का त्याग करना चाहिए।

8. संवर अनुप्रेक्षा - कर्म जिस द्वार से आ रहे हैं, उस द्वार को बंद कर देना सो संवर है। आत्म उत्थान के हेतु पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस प्रकार के धर्म का पालन करना चाहिए एवं बाईस परीषह सहन करना चाहिए। बारह भावनाओं का निरन्तर चिंतन करना चाहिए। यह संवर ही स्वर्ग एवं मोक्ष को देने वाला है, संवर सहित तप ही मुक्ति का कारण है। ऐसा विचार कर मोक्ष पुरुषार्थ में मन को स्थिर करना चाहिए।

9. निर्जरा अनुप्रेक्षा - आत्मा के साथ बंधे हुए कर्मो का एक देश झड़ना, थोड़ा-थोड़ा अलग होना निर्जरा है। वह निर्जरा दो प्रकार की है :- सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। पहली निर्जरा चारों गतियों में जीवों के कर्मोदय होने पर होती है, इससे मोक्षमार्ग संबंधी कोई कार्य संभव नहीं। दूसरी अविपाक निर्जरा से ही संसार परिभ्रमण मिटता है एवं मोक्ष दशा प्राप्त होती है। इस प्रकार निर्जरा भावना का चिंतन करते हुए कर्म निर्जरा हेतु उद्यम करना चाहिए।

10. लोक भावना -चौदह राजू प्रमाण ऊँचा पुरुषाकार यह लोक है जिसमें जीवादि छह द्रव्य रहते हैं, इसकी लम्बाई - चौड़ाई आकार आदि के विषय में चिंतन करना लोक भावना है। चतुर्गति युक्त यह लोक एकमात्र दु:ख का हेतु होने के कारण छोड़ने योग्य है ऐसा विचार करते हुए निज स्वरूप में लीन होना चाहिए।

11. बोधि दुर्लभ भावना - मोक्ष सुख के साधनभूत रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र) का प्राप्त होना बोधि कहलाता है, इस बोधि की दुर्लभता के विषय में चिंतन करना बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा है। तप की भावना, समाधि मरण और अंत में मोक्ष सुख की उपलब्धि अत्यन्त दुर्लभ है। ऐसा चिंतन करते हुए प्राप्त अवस्था की दुर्लभता को समझते हुए आगे-आगे पुरुषार्थ करना चाहिए।

12. धर्म अनुप्रेक्षा - संसारी प्राणियों को दु:ख से उठाकर, उत्तम सुख में जो धरता है, उसे धर्म कहते हैं। इस संसार में धर्म को छोड़कर अन्य कोई सच्चा मित्र नहीं है, धर्म की आराधना से ही दु:खों से छुटकारा, मोक्ष सुख की प्राप्ति संभव है। अत: ऐसा चिंतन करते हुए पाप कार्यों को छोड़ना चाहिए एवं धर्म में बुद्धि लगाना चाहिए।

संस्मरण - चित्र की सीख

चित्र यदि सही-सही आकार प्रकार ले लेता है, तो चित्त के परिवर्तन का कारण बन सकता है। चित्त का परिवर्तन ही जीवन की सही चित्रकारी है। जब बालक विद्याधर स्कूल में पढ़ते थे, उस समय वे चित्रकला भी सीखा करते थे। तब चित्र बनाना तो पूरा आता था, लेकिन नाक का नक्सा बिगड़ जाता था। बचपन के चित्रकार आचार्य विद्यासागर जी महाराज आज वीतरागता के चलते फिरते जीवंत तीर्थ का निर्माण कर रहे हैं। जो जिनशासन की न केवल नाक अपितु संपूर्ण अंगों की बेहतर चित्रकारी कर दिग्दिगन्त तक प्रभावना कर रहे हैं।

पाठ्यक्रम - ९

९ ब | जैन विद्वान परिचय

जैन शासन में ऐसे अनेक कवि और लेखक हुए हैं, जो श्रावक पद का अनुसरण करते हुए राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, जातीय एवं आध्यात्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफल हुए। जिन तथ्य या सिद्धान्तों को श्रुतधर, सारस्वत, प्रबुद्ध और परम्परा पोषक आचार्यों नेआगमिक शैली में विवेचित किया है, उन तथ्य या सिद्धान्तों की न्यूनाधिक रूप में अभिव्यक्ति कवि और लेखकों द्वारा भी की गई है। अत: कुछ विद्वानों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को इस लेख में प्रस्तुत किया जा रहा है।

महाकवि धनञ्जय

१. ईसा की सातवीं-आठवीं शताब्दी के लगभग (१२०० वर्ष पूर्व) द्विसंधान महाकाव्य के प्रणेता परम जैन कविराज धनञ्जय का जन्म हुआ था। इनकी माता का नाम श्री देवी, पिता का नाम वसुदेव तथा गुरु का नाम दशरथ माना गया है।

२. जीवन की प्रमुख घटना - जिस समय आपके इकलौते पुत्र को सर्प ने डस लिया था, उस समय आप जिन-पूजा में लीन थे। घर से समाचार आने पर भी आप जिन-पूजा में लीन रहे। तब धर्मपत्नी ने मूर्च्छित पुत्र को लाकर पति के सामने डाल दिया। पूजा से निवृत्त होकर, जिन-भक्ति के प्रभाव स्वरूप, तत्काल विषापहार स्तोत्र की रचना प्रारंभ की, रचना पूर्ण होते-होते पुत्र के शरीर का विष पूर्णत: उतर गया और वह निर्विष होकर खड़ा हो गया। चारों ओर जैन धर्म की जय-जयकार गूंज उठी तथा धर्म की अभूतपूर्व प्रभावना हुई।

३. आपने द्विसन्धान महाकाव्य, विषापहार स्तोत्र एवं धनञ्जय नाममाला ऐसे प्रधानत: तीन ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे।

महाकवि आशाधर जी

१. ईसा की तेरहवीं शताब्दी के लगभग (७०० वर्ष पूर्व), वि.सं. १२३०-३६ के लगभग दिगम्बर जैन परम्परा में संस्कृत भाषा के अद्वितीय विद्वान प. आशाधर जी का जन्म हुआ था। आप माण्डलगढ़ (मेवाड़) के मूल निवासी थे। इनके पिता का नाम सल्लक्षण एवं माता का नाम श्रीरत्नी था।

२. आशाधर जी का अध्ययन बड़ा ही विशाल था। इनके विद्यागुरु प्रसिद्ध विद्वान पण्डित महावीर थे। वे जैनाचार, आध्यात्म, दर्शन, काव्य, साहित्य, कोष, राजनीति, कामशास्त्र, आयुर्वेद आदि सभी विषयों के प्रकाण्ड विद्वान पण्डित थे। स्वयं गृहस्थ रहने पर भी बड़े-बड़े मुनि और भट्टारकों ने इनके ज्ञान की अपेक्षा शिष्यत्व स्वीकार किया था।

३. पण्डित आशाधर जी के तीन ग्रन्थ मुख्य हैं और सर्वत्र पाये जाते हैं। जिनयज्ञ कल्प, सागार धर्मामृत और अनगार धर्मामृत।

महाकवि बनारसी दास

१. ईसा की सोलहवीं शताब्दी (४०० वर्ष पूर्व) संवत् १६४३ में हिन्दी साहित्य के महाकवि बनारसी दास जी का जन्म एक धनी परिवार में हुआ था। इनके पिता खड़गसेन जवाहारात के व्यापारी थे। पुत्र के जन्म का नाम विक्रमाजीत था, काशी के पण्डित ने

अमृत के बदले जहर

एक इंस्पेक्टर स्कूल का निरीक्षण करने गया। निरीक्षण कर स्कूल की रिपोर्ट लिखी। सभी क्लासें अनुशंसित हैं और सभी कार्य समय पर किए जाते हैं। पढ़ाने का ढंग अध्यापकों का ठीक है। बच्चे होशियार हैं। स्कूल में साफ-सफाई है। लेकिन जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है। मात्र इस वाक्य ने ऊपर लिखे सभी वाक्यों पर पानी फेर दिया। वैसे ही भाव पूर्वक भगवान की पूजा की, तीर्थ वंदना की, व्रत-उपवास किए, उसके बदले थोड़ी इच्छा कर ली तो जैसे कि रावण ने विद्याधर की विभूति देखी थी और यह भावना कर ली कि मेरे तप का फल यही मिले। इसके समान ही वैभव सम्पन्न होऊँ। वह तो ऐसा हुआ कि जैसे गर्दभ के बदले हाथी को बेच दिया और राख के लिए चंदन को जला दिया। अत: धर्म कर हमारी इतनी-सी चाह भी अमृत को जहर रूप में परिवर्तित कर देती है।

उनका नाम बनारसी दास रखा।

२. कवि जन्मना श्वेताम्बर – साम्प्रदाय के अनुयायी थे। आध्यात्म ग्रंथ समयसार एवं गोम्मटसार ग्रन्थ को पढ़कर व सुनकर बनारसी दास जी दिगम्बर साम्प्रदाय के अनुयायी बन गए। बनारसी दास जी के नाम से निम्नलिखित रचनाएं प्रचलित है। नाममाला, समयसार नाटक, बनारसी विलास, अर्द्धकथानक, महाविवेक युद्ध, नवरस पद्यावली।

पं. टोडरमल

१. आचार्य कल्प प. टोडरमल जी का जन्म वि.सं. १७९७ को जयपुर में हुआ था। पिता का नाम जोगीदास और माता का नाम रमा या लक्ष्मी था। इनके गुरु का नाम बंशीधर जी मैनपुरी बतलाया जाता है।

२. टोडरमल जी बाल्यकाल से ही प्रतिभाशाली थे, गुरु जी इन्हें स्वयंबुद्ध कहते थे। वे व्याकरण के सूत्रों को गुरु से भी स्पष्ट व्याख्या करके सुनाते थे। छह माह में ही इन्होंने जैनेन्द्र व्याकरण को पूर्ण कर लिया था।

३. टोडरमल जी की कुल ११ रचनाएं हैं, जिनमें सात टीका ग्रन्थ और चार मौलिक ग्रन्थ हैं। मौलिक ग्रन्थ १. मोक्षमार्ग प्रकाशक, २. आध्यात्मिक पत्र, ३. अर्थ संदृष्टि, ४. गोम्मट सार पूजा।

टीका ग्रन्थ :-

- गोम्मट सार(जीवकाण्ड)
- गोम्मट सार (कर्मकाण्ड)
- लब्धिसार टीका
- क्षपणासार वचनिका
- त्रिलोकसार टीका
- आत्मानुशासन (वचनिका)
- पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय – इस ग्रन्थ की टीका अधूरी रह गई थी जिसे पण्डित दौलतराम कासलीवाल जी ने पूर्ण की।

गोखले की सत्यनिष्ठा

एक शिक्षक ने कक्षा के सभी विद्यार्थियों को कुछ सवाल घर से करके लाने के लिए दिए। दूसरे दिन शिक्षक ने सभी की कापियाँ देखीं तो केवल एक विद्यार्थी के सवाल सही निकले। शिक्षक उस विद्यार्थी को पुरस्कार देने लगे। उसने पुरस्कार तो लिया नहीं, उलटे रोने लगा। शिक्षक को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने रोने का कारण पूछा।

विद्यार्थी ने हाथ जोड़कर नम्रता से कहा, सर! आपने तो यह समझा होगा कि इन सवालों के जवाब मैंने अपनी बुद्धि से निकाले हैं किन्तु सच यह नहीं है। इन सवालों में मैंने अपने एक मित्र की मदद ली है। अब आप ही बताइए कि मैं पुरस्कार पाने लायक हूँ या दण्ड पाने लायक।

यह सुनकर शिक्षक बहुत प्रसन्न हुए और उसके हाथ में पुरस्कार देते हुए कहा–अब यह पुरस्कार मैं तुम्हें तुम्हारी सत्यनिष्ठा के लिए देता हूँ।

सच बोलने वाला यही बालक देशभक्त गोपाल कृष्ण गोखले के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

समाधि भावना

दिन-रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ॥
शत्रु अगर कोई हो, संतुष्ट उसको कर दूँ।
समता का भाव धरकर, सबसे क्षमा कराऊँ॥१॥

त्यागूँ आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥२॥

जागें नहीं कषाएँ, नहीं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ॥३॥

आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधु, रटना यही लगाऊँ॥४॥

धर्मात्मा निकट हों, चर्चा धर्म सुनावें।
वह सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ॥५॥

जीने की हो न वांछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ॥६॥

भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य-संपदा या पद इन्द्र का न चाहूँ॥७॥

रत्नत्रय का हो पालन, हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥८॥

......

<u>सुख के ५ भेद</u> : (१) इन्द्रिय सुख : जिसे सुखाभास कहते हैं, जो राजा-महाराजाओं को, इंद्रों को, साता वेदनीय कर्म के उदय से होता है। (२) सहज सुख : चतुर्थ गुणस्थान से मोक्षमार्गी जीवों को होता है। (३) अतीन्द्रिय सुख : जो निर्विकल्प समाधिस्थ मुनिराजों को होता है। (४) अनंत सुख : जो अर्हन्त परमेष्ठी के होता है। (५) अव्याबाध सुख : जो सिद्धों के होता है।

विद्याष्टकम्

सुविद्यावारीशो गणधरसमो ज्ञानचतुरः।
विधाता शिष्याणां शुभगुणवतां शास्त्रकुशलः॥
पुराणानां ज्ञाता नयपथचरो नीतिनिपुणः
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ १॥

अर्थ : (**सुविद्यावारीशः**) श्रेष्ठ विद्याओं के समुद्र हैं, (**गणधरसमः**) गणधर के समान (**ज्ञानचतुरः**) ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में दक्ष हैं, (**शुभगुणवतां**) अच्छे गुणकारी (**शिष्याणां विधाता**) शिष्य समुदाय के प्रमुख हैं, (**शास्त्रकुशलः**) समस्त शास्त्रों में कुशल हैं, (**पुराणानां ज्ञाता**) प्राच्य विद्याओं के मनीषी हैं, (**नयपथचरः**) अनेकान्तवाद के अनुयायी हैं और (**नीतिनिपुणः**) नीति-निपुण हैं, (**भवभयहरः**) जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे (**मे गुरुवरः**) परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज (**प्रकुर्यात्कल्याणं**) हमारा कल्याण करें।

मुमुक्षुर्ब्रह्मज्ञः सरलहृदयः शान्तकरणः।
स्वशिष्याणां शास्ता शुभगुणधरः सिद्धगणकः॥
सुयोगी धर्मज्ञः सरलसरलः कर्मकुशलः।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ २॥

अर्थ : (**मुमुक्षर्बह्मज्ञः**) जो परम श्रेष्ठ पद मोक्ष के अभिलाषी हैं, आत्म-तत्त्व के मर्मज्ञ हैं, (**सरलहृदयः**) जिनका हृदय अत्यन्त सरल है, (**शान्तकरणः**) शान्त परिणामी हैं, (**स्वशिष्याणां शास्ता**) अपने शिष्यों संघ के जो अनुशासक, नियंत्रक, प्राचार्य हैं, (**शुभगुणधरः**) प्रशस्त गुणों के धारक हैं, (**सिद्धगणकः**) उत्कृष्ट साधक तपस्वियों में अग्रगण्य हैं, (**सुयोगी**) मन-वचन-काय पर समान रूप से नियंत्रक, सुयोगी है, (**धर्मज्ञः**) धर्म के मर्मज्ञ हैं, (**सरलसरलः**) अतिशय सरल हैं, (**कर्मकुशलः**) आचार्यपद के दायित्वों के सम्पादन में अत्यधिक कुशल हैं, (**भवभयहरः**) जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे (**मे गुरुवरः**) परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज (**प्रकुर्यात्कल्याणं**) हमारा कल्याण करें।

अहिंसा सत्यार्थी शमदमपरो ज्ञानपथिकः।
मलप्पा - श्रीमन्त्योरजनि जनुषा गौरवकरः॥
प्रविद्यो विख्यातः सुरगुरु - समः वीत-वसनः।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ ३॥

अर्थ : (**अहिंसा सत्यार्थी**) जो अहिंसा और सत्य की उपासना में अहर्निश निरत हैं तथा (**शमदमपरः**) विकारों के शमनकर्ता और इन्द्रिय-विजेता हैं, (**ज्ञानपथिकः**) निरन्तर ज्ञान के मार्ग पर संचरणशील हैं। (**मलप्पा-श्रीमन्त्योरजनि जनुषा गौरवकरः**) जिनके (गृहस्थ अवस्था के पिता एवं माता होने का गौरव) क्रमशः श्री मलप्पा जी (समाधिस्थ मुनि श्री मल्लिसागर जी महाराज) एवं श्रीमंति जी (समाधिस्थ आर्यिका समयमतीजी माताजी) को प्राप्त है, (**प्रविद्यः विख्यातः**) जो विशेषज्ञ मनीषी हैं, विख्यात हैं, (**सुरगुरु-समः**) बृहस्पति के समान ज्ञानवान् हैं, (**वीतवसनः**) दिगम्बर मुद्राधारी हैं, (**भवभयहरः**) जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे (**मे गुरुवरः**) परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज (**प्रकुर्यात्कल्याणं**) हमारा कल्याण करें।

सदालग्गा-ग्रामे यो जनिमवाप्नोच्छारदि-तिथौ।
धरो विद्यायाः यो प्रथित-यशसोऽभूदनुपमः।।
ततो लब्ध्वा ज्ञानं उपनय-विधानस्य विधिना।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः।।४।।

अर्थ : (**सदालग्गा-ग्रामे**) सदलगा ग्राम कर्नाटक में (**यो जनिम-वाप्नोच्छारदि-तिथौ**) जिनका शरद पूर्णिमा की शुभ तिथि में जन्म हुआ और (**यः**) जो (बाल्यावस्था में) (**विद्यायाः धरः**) विद्याधर के नाम से (**प्रथित-यशसोऽभूदनुपमः**) अपूर्व, अनुपम यशस्वी हुए, (**उपनय-विधानस्य विधिना**) उपनयन विधान की विधि से (**ततः**) जिन्होंने (**ज्ञानं लब्ध्वा**) ज्ञान को प्राप्त किया। ऐसे (**भवभयहरः**) जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे (**मे गुरुवरः**) परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज (**प्रकुर्यात्कल्याणं**) हमारा कल्याण करें।

इतो लब्ध्वाऽऽचार्यं ऋषिवर-वरं 'देश'-भणितम्।
व्रतं ब्रह्माख्यं योऽलभत परमं ह्यात्म-रसिकः॥
ततोऽनुज्ञां प्राप्य गतवानसौ ज्ञानजलधिं।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ ५॥

अर्थ : (**इतः लब्ध्या**) ऐसा प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करके (**वरं**) श्रेष्ठ (**आचोर्यं ऋषिवर**) आचार्य ऋषिवर (**देश भणितम्**) देशभूषण महाराज से (**ब्रह्माख्यं व्रतं**) ब्रह्मचर्यव्रत (**योऽलभत**) धारण किया (**परमं ह्यात्म-रसिकः**) उत्कृष्ट

वर्तमान में रहने से सिरदर्द नहीं होता ।

आत्म रसिक (आचार्य-रत्न देशभूषण महाराज) **(ततः अनुज्ञा)** उनकी अनुमति **(प्राप्य)** पाकर **(ज्ञानजलधिं)** आचार्य ज्ञानसागर महाराज के पास **(गतवान् असौ)** पहुँचे। **(भव-भयहरः)** जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे **(मे गुरुवरः)** परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज **(प्रकुर्यात्कल्याणं)** हमारा कल्याण करें।

यशस्वी तेजस्वी सरसिजसमो रागरहितः।
यथाभानुर्नित्यं तपति सततं ह्युष्णकिरणः॥
तथैवायं पूज्यस्तपति भवने शुद्धचरणः।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ ६॥

अर्थ : जो **(यशस्वी)** यशस्वी, **(तेजस्वी)** तेजस्वी और **(सरसिजसमो)** कमल के समान **(रागरहितः)** निःस्पृह हैं। **(यथाभानुर्नित्यं)** जैसे सूर्य नित्य **(सततं)** निरंतर **(ह्युष्णकिरणः)** गर्म किरणों से **(तपति)** तपता है, **(तथैवायं)** उसी प्रकार **(पूज्यः)** ये पूज्य आचार्य श्री **(शुद्धचरणः)** अपने शुद्ध आगम-सम्मत आचरण से **(भवने)** सम्पूर्ण संसार में **(तपति)** तपस्यारत हैं। **(भवभयहरः)** जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे **(मे गुरुवरः)** परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज **(प्रकुर्यात्कल्याणं)** हमारा कल्याण करें।

प्रकृत्या सौम्यो यो हिमकरसमः शान्तिचषकः।
सुधीर्वाग्मी शिष्टः शुभगुणधनः शुद्धकरणः॥
महापीठासीनो बहुगुणनिधिर्लोभ - रहितः।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ ७॥

अर्थ : **(यः)** जो **(प्रकृत्या)** स्वभाव से **(सौम्यः)** सौम्य हैं, **(हिमकरसमः)** चन्द्रमा की किरणों की भाँति शीतल हैं, **(शान्तिचषकः)** शान्ति-सुधा-रस के पान करने वाले हैं, **(सुधीः)** उत्कृष्ट कोटि के विद्वान, **(वाग्मी)** वक्ता, **(शिष्टः)** शिष्ट **(शुभगुणधनः)** प्रशस्त गुणों के धारक एवं **(शुद्धकरणः)** निर्दोष चर्या वाले हैं, **(महापीठासीनः)** दिगम्बर जैन-आचार्य के महनीय आसन पर विराजमान हैं, **(बहुगुणनिधिः)** विविध प्रकार के गुणों की निधियाँ जिनके पास हैं और **(लोभ-रहितः)** किसी प्रकार का लोभ जिन्हें स्पर्श भी नहीं कर सका है, **(भवभयहरः)** जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे **(मे गुरुवरः)** परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज **(प्रकुर्यात्कल्याणं)** हमारा कल्याण करें।

क्रोध करने का अर्थ है दूसरों के द्वारा किए अपराध की सजा स्वयं को देना।

सुविद्या वागीशः निजगुरुकृतिक्रान्त-प्रवणः।
मुनीशैः संवन्द्यः विदित - महिमा मंगलकरः॥
चिरञ्जीव्यादेषा भव-भयभृतां मौलिशिखरः।
प्रकुर्यात्कल्याणं भवभयहरो मे गुरुवरः॥ ८॥

अर्थ : जो **(सुविद्या)** प्रशस्त विद्याओं में निपुण हैं, **(वागीशो)** वाणीभूषण हैं, **(निजगुरु)** अपने गुरु आचार्य ज्ञानसागरजी महाराज के **(कृतिक्रान्त-प्रवणः)** कृतित्व को उजागर करने में प्रवीण हैं, **(मुनीशैः संवन्द्य)** जो मुनिराजों के द्वारा अच्छी तरह वन्दनीय हैं, **(विदित-महिमा)** जिनकी महिमा प्रकट है, **(मंगलकरः)** मंगलकारी है **(चिरञ्जीव्यात्)** चिरकाल तक जीवित रहने वाले **(एषा)** ऐसे **(भव-भयभृतां)** संसार के भय से भरे हुए मानवों में **(मौलिशिखरः)** मुकुट शिखर की भाँति सुशोभित है, **(भवभयहरः)** जन्म, जरा, मृत्यु के भय को दूर करने वाले ऐसे **(मे गुरुवरः)** परम श्रेष्ठ गुरुवर आचार्य विद्यासागरजी मुनि महाराज **(प्रकुर्यात्कल्याणं)** हमारा कल्याण करें।

विद्यासागर आचार्यः प्रथितो भुवनत्रये।
ससंघाय नमस्तस्मै, नमस्तस्मै नमो नमः॥
विद्या सिन्ध्वष्टकमिदं, भक्त्या भागेन्दुना कृतम्।
महापुण्यप्रदं लोकैः प्रपठन् याति सदा सुखम् ॥ ९॥

अर्थ : **(विद्यासागर आचार्यः)** आचार्य विद्यासागर जी महाराज **(भुवनत्रये)** तीनों लोकों में **(प्रथितः)** प्रसिद्ध हैं, उन्हें उनके **(ससंघाय)** सम्पूर्ण संघ के साथ **(नमस्तस्मै)** सादर नमन है, **(नमस्तस्मै नमो नमः)** त्रि-बार नमोऽस्तु।

(इदं) यह **(विद्यासिन्ध्वष्टकं)** विद्यासागर अष्टकम् शीर्षक स्तवन **(भक्त्या)** अतिशय भक्तिपूर्वक **(भागेन्दुना)** डॉ. भागचन्द जैन भागेन्दु के द्वारा **(कृतं)** रचा गया है। यह भव्य स्तवन **(लोकैः)** लोक के द्वारा **(महापुण्यप्रदं)** महान् पुण्यप्रदाता है, **(याति)** इसके **(प्रपठन्)** पठन-पाठन से **(सदा सुखम्)** सदा ही सुख सुलभ होते हैं।

''सुनो बेटा!
यही
कलियुग की सही पहचान है
जिसे
'खरा' भी अखरा है सदा
और
सतयुग तू उसे मान
बुरा भी
'बूरा'-सा लगा है सदा।''

नीति अमृत

हाथ देख मत देख लो, मिला बाहुबल पूर्ण।
सदुपयोग बल का करो, सुख पाओ सम्पूर्ण।।१।।
देख सामने चल अरे , दीख रहे अवधूत।
पीछे मुड़कर देखता , उसको दिखता भूत।।२।।
उगते अंकुर का दिखा, मुख सूरज की ओर।
आत्म बोध हो तुरत ही, मुख संयम की ओर।।३।।
हित-मित-नियमित-मिष्ट ही, बोल वचन मुख खोल।
वरना सब संपर्क तज, समता में जा डोल।।४।।
कूप बनो तालाब ना, नहीं कूप मंडूक।
बरसाती मेंढक नहीं, बरसो घन बन मूक।।५।।
हीरा मोती पद्म ना , चाहूँ तुमसे नाथ।
तुम सा तम तामस मिटा, सुखमय बनूँ प्रभात।।६।।
संत पुरुष से राग भी शीघ्र मिटाता पाप।
ऊष्ण नीर भी आग को, क्या ना बुझाता आप।।७।।
लगाम अंकुश बिन नहीं हय गय देते साथ।
व्रत श्रुत बिन मन कब चले , विनम्र करके माथ।।८।।
भले कूर्म गति से चलो, चलो कि ध्रुव की ओर।
किन्तु कूर्म के धर्म को, पालो पल-पल और ।।९।।
खुला खिला हो कमल वह, जब लौं जल सम्पर्क।
छूटा सूखा धर्म बिन, नर पशु में ना फर्क।।१०।।

भू पर निगले नीर में, ना मेंढक को नाग।
निज में रह बाहर गया, कर्म दबाते जाग।।११।।
पेटी भर ना पेट भर, खेती कर नाऽखेट।
लोकतंत्र में लोक का , संग्रह हो भरपेट।।१२।।
सार-सार का ग्रहण हो, असार को फटकार।
नहीं चालनी तुम बनो, करो सूप सत्कार।।१३।।
मात्रा मौलिक कब रही, गुणवत्ता अनमोल।
जितना बढ़ता ढोल है, उतना बढ़ता पोल।।१४।।
दूर दिख रही लाल-सी, पास पहुँचते आग।
अनुभव होता पास का, ज्ञान दूर का दाग।।१५।।
खिड़की से क्यों देखता, दिखे दुखद संसार।
खिड़की में अब देख ले, मिले सुखद साकार।।१६।।
स्वर्ण पात्र में सिंहनी, दुग्ध टिके नाऽऽन्यत्र।
विनय पात्र में शेष भी, गुण टिकते एकत्र।।१७।।
थक जाना ना हार है, पर लेना है श्वास।
रवि निशि में विश्राम ले, दिन में करे प्रकाश।।१८।।
यम दम शम सम तुम धरो, क्रमशः कम श्रम होय।
नर से नारायण बनो, अनुपम अधिगम होय।।१९।।
स्वीकृत हो मम नमन ये, जय-जय-जय-जयसेन।
जैन बना अब जिन बनूँ, मन रटता दि-रैन।।२०।।

संगति का प्रभाव

देखिए, संगति का प्रभाव कि साधक अवस्था में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही मोक्ष का कारण है और राग बंध का कारण है। लेकिन सम्यग्दर्शनादि को भी राग के साथ होने से बंध का कारण कह देते हैं और राग ने संगति की रत्नत्रय की इस अपेक्षा से प्रशस्त राग को भी परम्परा से मोक्ष का कारण कहते हैं।

उदाहरण : दो मित्र थे। एक सरागता का उपासक, दूसरा वीतरागता का उपासक। अब दोनों वीतराग मंदिर में दर्शन करने गए। दोनों ने वीतरागी जिन प्रतिमा को नमस्कार किया तो जो सरागी देवता का उपासक था उसको लाभ हुआ लेकिन कदाचित उनके सरागी मंदिर जाने का प्रसंग बन जाए और वह सोचे कि मेरे मित्र ने मेरे मंदिर में नमस्कार किया था अतः वह भी सरागी प्रतिमा को नमस्कार कर ले तो हानि किसको होगी? वीतरागी देव के उपासक को। इसी प्रकार सम्यग्दर्शनादि ने राग की संगति करी तो वह बंध का कारण कहा गया। और राग ने सम्यग्दर्शनादि की संगति करी तो वह प्रशस्त राग (पुण्य) परम्परा से मोक्ष का कारण कहा गया।

उदाहरण : चार विद्वानों की मंडली में एक मूर्ख बैठा हो तो आप उसे क्या कहेंगे? विद्वानों की मंडली बैठी है। तब क्या वह मूर्ख भी विद्वान हो गया? नहीं। ऐसे ही चार मूर्खों की मंडली में एक विद्वान बैठा हो तो क्या कहेंगे? मूर्खों की मंडली बैठी है। तो क्या विद्वान भी मूर्ख हो गया? नहीं। लेकिन व्यवहार में ऐसा कहा जाता है। ठीक इसी प्रकार मोक्षमार्ग में भी ऐसा कथन होता है।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

१. स्पर्शन इंद्रिय किसे कहते हैं। उसके विषय भी बताइए ?
२. तीन इन्द्रिय जीव के कोई चार नाम बताएं ?
३. कमठ और मरुभूति की घटना बताइए ?
४. पार्श्वनाथ भगवान के गर्भ, जन्म एवं मोक्ष कल्याणक की तिथि क्या थी ?
५. सम्यक् चारित्र किसे कहते हैं, उसकी प्राप्ति का क्या उपाय है ?
६. सेठ जी ने चारों बहुओं को क्या काम सौंपा, कैसे ?
७. द्रव्य श्रावक - भाव श्रावक किसे कहते हैं ?
८. वादिराज मुनिराज ने कौन से काव्य की रचना की उसका क्या परिणाम निकला ?
९. वेदनीय कर्म किसे कहते हैं वह कैसे बंधता है ?
१०. चार प्रकार के कर्म बन्ध कौन से हैं समझाइए ?
११. कवि के पुत्र का विष कैसे दूर हुआ ?
१२. चन्द्रगुप्त कौन था उसका अंतिम समय कैसे व्यतीत हुआ ?
१३. संसार अनुप्रेक्षा का क्या स्वरूप है ?
१४. एकत्व भावना भाने का क्या फल है ?
१५. पं. टोडरमल जी का संक्षिप्त परिचय बताइए?

ब. श्लोक एवं छंदों को पूर्ण करें।

१. जीवन के .... दिखा देना।
२. यदर्चाभावेन .... भवतु मे।
३. कंचन .... भण्डारी।
४. हाथ में .... आएगी।
५. हम न .... मधुबन ।
६. नमस्कार .... नहीं है।
७. सर्पो .... मंगलम।
८. मुनिसूरज .... पावै ।
९. जागे .... भगाऊँ।
१०. सार .... सत्कार ॥

स. परिभाषा लिखें।

१. चक्षु इन्द्रिय २. रत्नत्रय ३. भावलिंगी साधु
४. नाम कर्म ५. अशुचि अनुप्रेक्षा
६. बोधि दुर्लभ भावना

द. अन्यत्र खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ पढें और पढ़ाएँ।

१. द्रव्य इंद्रिय और भाव इन्द्रिय किसे कहते हैं वे कैसी होती हैं ?
२. इन्द्रियों के विषयों को ग्रहण करने की क्षमता कितनी होती है ?
३. एकेन्द्रिय आदि जीवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य अवगाहना कितनी है?
४. सुभौम चक्रवर्ती एवं राजा अरविंद की घटना कैसी है ?
५. पार्श्वनाथ भगवान संबंधी कोई १० नई जानकारी बताएँ?
६. तीर्थ क्षेत्र किसे कहते हैं उनके भेद प्रभेद कौन से हैं ?
७. कोई १५ सिद्ध क्षेत्र एवं १५ अतिशय क्षेत्रों के नाम बताएँ?
८. श्री सम्मेद शिखर जी क्षेत्र की विशेषताएँ बताएँ?
९. कुण्डलपुर जी सिद्ध क्षेत्र की कथा किस प्रकार है ?
१०. पं. दौलत राम जी, पं. द्यानत राय जी एवं पं. सुमेरूचन्द्र जी दिवाकर कौन थे, उनकी प्रमुख कृतियों के नाम लिखें?

जब जीवन का अंत हो, मेरे सामने एक संत हो...
मेरे होठों पर अरिहंत हो, महावीर का वह पंथ हो ।
कषायों की आग में जलता जलता आया हूँ ।।
वासना की राह में चलता चलता आया हूँ ।
दु:ख भरी इस यात्रा का सुखद अंत हो ।।
जब जीवन का अंत हो...
तन में जब तक श्वास है, मन में एक विश्वास है ।
मुक्ति की ही प्यास है, पंडित मरण की आस है ।।
तन अचल और मन अमल हो, अब ना कोई द्वंद हो।
जब जीवन का अंत हो...
धर्म में मेरी प्रीत हो, वेदना में जीत हो।
आगम का संगीत हो, प्रभु का नाम गीत हो ।।
साधना के नंदन वन में, भावना बसंत हो ।
जब जीवन का अंत हो...

''उपाय की उपस्थिति ही पर्याप्त नहीं है, उपादेय की प्राप्ति के लिए अपाय की अनुपस्थिति भी अनिवार्य है। और वह अनायास नहीं, प्रयास-साध्य है।'' (पृ. २३०)

पाठ्यक्रम - १०

१०.अ सृष्टि का उत्थान-पतन : काल परिवर्तन

मनुष्यादि प्राणियों को किसने बनाया ? ये कब से हैं और कब तक रहेंगे ? इत्यादि प्रश्नों के समाधान हेतु अनेक दर्शन व मत हमारे सामने हैं। कुछ दर्शनकार कहते हैं ब्रह्मा नाम वाले ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों की रचना की। कुछ कहते हैं पृथ्वी आदि पंचभूतों से मिलकर जीव की रचना होती है और पंचभूतों के पृथक् - पृथक् होने पर जीव नष्ट हो जाता है। कुछ वैज्ञानिक मनुष्य को बंदर का ही सुधरा हुआ रूप मानते हैं अर्थात् लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य बंदर ही था धीरे-धीरे वह मनुष्य बन गया। उपरोक्त मान्यताएं अज्ञानियों द्वारा प्रचलित होने से असत्य ही हैं। वास्तव में सृष्टि के सभी प्राणी अनादि काल से हैं और आगे अनन्त काल तक रहेंगे, उन्हें कोई बना नहीं सकता और न ही कोई नष्ट कर सकता है। क्योंकि सत्ता का कभी उत्पादन तथा नाश नहीं होता। मनुष्यादि पर्याए हैं, जो बदलती रहती हैं जैसे मनुष्य मर कर बंदर हो सकता है, हाथी हो सकता है, बंदर मरकर मनुष्य हो सकता है इत्यादि। कालक्रम के परिवर्तन के अनुसार उनकी उम्र, लंबाई, चौड़ाई, आहारादि में परिवर्तन देखा जाता है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल-परिवर्तन उत्सर्पिणी काल एवं अवसर्पिणी काल के रूप में होता है। जिसमें जीवों की आयु, बल, बुद्धि तथा शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से वृद्धि होती रहे उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इसके छह भेद हैं- १. दुषमा-दुषमा काल, २. दुषमा काल, ३. दुषमा-सुखमा काल, ४. सुषमा-दुषमा काल, ५. सुषमा काल, ६. सुषमा-सुषमा काल। जिसमें जीवों की आयु, बल, बुद्धि और शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से हानि होती रहे वह अवसर्पिणी काल है। इसके छह भेद हैं-

१. सुषमा-सुषमा काल, २. सुषमा काल ३. सुषमा-दुषमा काल
४. दुषमा-सुषमा काल ५. दुषमा काल ६. दुषमा - दुषमा काल।

दस कोड़ा - कोड़ी सागर का उत्सर्पिणी और इतने ही वर्षों का अवसर्पिणी काल होता है। दोनों ही मिलकर बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है। वर्तमान में जहाँ हम रह रहे हैं वह भरत क्षेत्र है यहाँ पर अभी अवसर्पिणी काल चल रहा है। यहाँ पर हुए/ हो रहे परिवर्तन को हम केवली भगवान द्वारा कहे गए वचनों के अनुसार समझने का प्रयास करेंगे।

सुषमा - सुषमा काल

अवसर्पिणी का यह प्रथम काल है, इस काल में सुख ही सुख होता है यह काल भोग प्रधान होता है, इसे उत्कृष्ट भोग-भूमि का काल भी कहते हैं।

० नर-नारी युगल (जोड़े के) के रूप में जन्म लेते हैं। इस युगल के जन्म लेते ही पुरुष (पिता) को छींक एवं स्त्री (माता) को जंभाई आती है। जिससे दोनों का मरण हो जाता है एवं शरीर कर्पूरवत् उड़ जाता है।

० जन्म लेने वाले युगल शिशुओं का शय्या में अगूंठा चूसते तीन दिन, उपवेशन (बैठना सीखने) में तीन दिन, अस्थिर गमन में तीन दिन, स्थिर गमन में तीन दिन, कला गुण प्राप्ति में तीन दिन, तारुण्य में तीन दिन और सम्यक् ग्रहण की योग्यता में तीन दिन इस प्रकार कुल इक्कीस(२१) दिनों का काल जन्म से पूर्ण वृद्धि होते हुए व्यतीत होता है। इनका व्यवहार आपस में पति-पत्नी के समान ही होता है।

० मनुष्य अक्षर, गणित, चित्र, शिल्पादि चौसठ कलाओं में स्वभाव से ही अतिशय निपुण होते हैं। मनुष्यों में नौ हजार हाथियों के बराबर बल पाया जाता है। इनका अकाल मरण नहीं होता है। ये विक्रिया से अनेक रूप बना सकते हैं। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई ६००० धनुष प्रमाण होती है, शरीर स्वर्ण के समान कांतिवाला, मल-मूत्रादि से रहित होता है। सभी मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का शरीर समचतुरस्र संस्थान वाला एवं वज्रवृषभ नाराच संहनन वाला होता है। इस काल के जीव अत्यन्त अल्पाहारी होते हैं। तीन दिन के अनशन के बाद चौथे दिन हरड़ अथवा बेर के बराबर आहार ग्रहण करते हैं। इन जीवों की उत्कृष्ट आयु

तीन पल्य (असंख्यात वर्ष) प्रमाण होती है।

इस प्रकार की स्थिति वाला चार कोड़ा - कोड़ी सागर प्रमाण यह प्रथमकाल व्यतीत होता है इसके बाद अवसर्पिणी का द्वितीय काल प्रारम्भ होता है।

सुषमा - काल

प्रथम काल की अपेक्षा इस काल में सुख, आयु, शक्ति, अवगाहना आदि की हीनता पाई जाती है इसे मध्यम भोग-भूमि का काल माना गया है।

1. इस काल में उत्पन्न युगलों का पाँच-पाँच दिन अँगूठा चूसने आदि में व्यतीत होने पर कुल पैंतीस (३५) दिन पूर्ण वृद्धि होने में लगता है। मनुष्यों की उत्कृष्ट ऊँचाई घटकर चार हजार धनुष प्रमाण ही बचती है। शरीर का वर्ण शंख के समान श्वेत होता है एवं उत्कृष्ट आयु दो पल्य प्रमाण होती है।
2. इस काल में जीव दो दिन के बाद बहेड़ा के बराबर आहार ग्रहण करते हैं यह आहार अमृतमय होता है।

इस प्रकार तीन कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण वाला द्वितीय काल व्यतीत होता है। उत्सेध आदि के क्षीण होते-होते तीसरा सुषमा-दुषमा काल प्रवेश करता है।

सुषमा - दुषमा काल

द्वितीय काल की अपेक्षा इस काल में सुख आदि की हीनता पाई जाती है इसे जघन्य भोग भूमि का काल कहा जाता है।

1. इस काल में उत्पन्न युगल सात-सात दिन उपवेशन आदि क्रिया में व्यतीत करते हुए उनचास (४९) दिन में पूर्ण युवास्था को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर की ऊँचाई २००० धनुष प्रमाण तथा शरीर नील कमल के समान वर्ण वाला होता है।
2. मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु १ पल्य एवं आहार एक दिन के बाद आँवले के बराबर होता है।
3. कुछ कम पल्य के आठवें भाग प्रमाण तृतीय काल के शेष रहने पर प्रथम कुलकर उत्पन्न होता है फिर क्रमशः चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। जिनके द्वारा कर्मभूमि की व्यवस्था की जाती है। इस काल का शेष वर्णन प्रथम-द्वितीय काल के सदृश्य ही जानना चाहिए।

इस प्रकार दो कोड़ा-कोड़ी सागर वाला तृतीय काल व्यतीत होने पर सम्पूर्ण लोक प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुषों के जन्म योग्य चतुर्थ काल प्रवेश करता है।

दुषमा - सुषमा काल

काल के ह्रास क्रम से भोग भूमि का समापन तथा कर्म भूमि का प्रारंभ इस दुषमा-सुषमा काल से हो जाता है इस काल में विशेष रूप से निम्न परिवर्तन देखा जाता है -

1. यह काल कर्म प्रधान होता है। कल्पवृक्ष समाप्त हो जाते हैं, असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य इन षट् कर्मों के द्वारा मनुष्य अपनी आजीविका चलाते हैं। सामाजिक व्यवस्थाएं विवाह संस्कार आदि प्रारंभ हो जाते हैं।
2. बालक-बालिकाओं का पृथक्-पृथक् जन्म होने लगता है, माता-पिता उनका पालन-पोषण करते हैं। यथायोग्य काल में बच्चे वृद्धि को प्राप्त होते हैं। उनका व्यवहार आपस में भाई-बहन के समान होता है।
3. सभी शलाका पुरुष (तीर्थङ्कर आदि) एवं महापुरुष (कामदेव आदि) इसी काल में उत्पन्न होते हैं।
4. मनुष्यों के शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई पाँच सौ अथवा पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण होती है। मनुष्य प्रतिदिन कवलाहार करते हैं, इस काल में मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि की होती है।
5. दुःख की अधिकता और सुख की अल्पता के कारण यह काल दुषमा-सुषमा कहलाता है।
6. इस प्रकार ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण वाला यह चतुर्थ काल व्यतीत होता है। इसके बाद आयु, शक्ति, बुद्धि आदि की हानि के क्रम से पंचम दुषमा काल प्रारंभ होता है।

दुषमा काल

भगवान महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् तीन वर्ष आठ माह पंद्रह दिन पूर्ण होने पर दुषमा नामक पंचमकाल प्रवेश करता है इस काल में प्रायः दुःख ही मिलता है। अभी हुण्डा अवर्पिणी काल का पाँचवाँ दुषमा काल चल रहा है। इस काल में

निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं।

1. इस काल में मनुष्य हीन संहनन धारी, मंद बुद्धि एवं वक्र (कुटिल) परिणामी होवेंगे। मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष एवं शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई सात हाथ होगी।

2. अंतिम कल्की द्वारा मुनिराज से शुल्क स्वरूप आहार के समय प्रथम ग्रास मांगने पर अन्तराय करके तथा पंचमकाल का अन्त आने वाला है ऐसा जानकर वे मुनिराज सल्लेखना ग्रहण करेंगे। उस समय वीरागंज नामक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निदत्त एवं पंगुश्री नामक श्रावक-श्राविका होंगे। ये चारों ही सल्लेखना धारण कर स्वर्ग में देव होंगे। उस दिन क्रोध को प्राप्त हो असुर देव कल्की को मार देता है, सूर्यास्त के समय अग्नि नष्ट हो जावेंगी। अर्थात् पूर्वाह्ण में धर्म का नाश, मध्याह्ण में राजा का नाश एवं अपराह्ण में अग्नि नष्ट हो जाती है। इस प्रकार धर्म के पूर्ण नाश के साथ ही २१ हजार वर्ष प्रमाण वाला यह पंचम काल समाप्त हो जाएगा। इसके पश्चात् अत्यन्त दु:ख पूर्ण छटवाँ दुषमा-दुषमा काल प्रारंभ होएगा।

दुषमा-दुषमा काल

पंचम काल के व्यतीत होने पर अत्यन्त दु:खप्रद, नरक तुल्य, छटवाँ काल प्रारंभ होवेगा। इस काल में मनुष्यों की निम्नलिखित स्थिती होएँगी।

1. मनुष्य धर्म-कर्म से भ्रष्ट, पशुवत् आचरण करने वाले होवेंगे। वे नग्न रहेंगे और वनों में विचरण करेंगे। बंदर- जैसे रूप वाले, कुबड़े, काने, दरिद्र, अनेक रोगों से सहित, अति कषाय युक्त, दुर्गन्धित शरीर वाले होंगे।

2. इनके शरीर का वर्ण धूम्र के समान काला होगा एवं शरीर की ऊँचाई उत्कृष्ट तीन हाथ एवं कम होते-होते एक हाथ हो जाएगी। आयु अधिकतम बीस वर्ष होएगी। इस काल में मनुष्य नरक और तिर्यञ्च गति से ही आकर पश्चात् मरकर वही पहुचेंगे।

इस प्रकार धर्म-कर्म एवं मानवीय सभ्यता का ह्रास होते-होते जब इस छटवे काल के मात्र ४९ दिन शेष बचेंगे तब जन्तुओं को भयदायक घोर प्रलय होगा। यहीं पर अवसर्पिणी काल का अन्त हो जाएगा। इसके पश्चात् उत्सर्पिणी काल का प्रारंभ होता है।

विशाल अवगाहना के प्रमाण

पूर्व काल में मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की विशाल अवगाहना की सिद्धि हेतु कुछ तर्क व प्रमाण इस प्रकार हैं।

1. राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के पुरातत्त्व विभाग की खोज के अनुसार समुद्र में डूबी द्वारिका के मकानों की ऊँचाई २०० से ६०० मीटर तक है एवं इनके कमरों के दरवाजे ३० मीटर (लगभग १०० फुट) ऊँचे हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसमें रहने वाले मनुष्य ५०-६० फुट ऊँचे होंगे ही, जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान नेमिनाथ की अवगाहना १० धनुष = ६० फीट थी।

2. ज्ञात जानकारी के अनुसार मास्कों के म्यूजियम में २-३ लाख वर्ष पुराना नरकंकाल रखा है जिसकी ऊँचाई २३ फुट है एवं बड़ोदा (गुजरात) के म्यूजियम में एक छिपकली का अस्थिपंजर रखा है जो १०-१२ फीट लम्बा है।

3. फ्लोरिडा में दस लाख वर्ष पुराना एक बिल्ली का धड़ मिला है जिसमें बिल्ली के दाँत सात इंच लम्बे हैं।

4. रोम के पास कैसल दी गुड्डों में तीन लाख साल पुरानी हाथियों की हड्डी मिली है। इनमें से कुछ हाथी दाँत १० फुट की लंबाई के हैं। अत: विचारणीय है कि जब हाथी का दाँत 10 फुट लम्बा तो हाथी कितना लंबा हो सकता है।

विशेष जानकारी हेतु गूगल पर 'स्केलेटन' सर्च करें।

पात्र के भेद

पात्र के तीन भेद हैं- १. सुपात्र २. कुपात्र ३. अपात्र
सुपात्र - सम्यग्दर्शन एवं व्रतों से सहित।
कुपात्र - सम्यग्दर्शन से रहित एवं व्रतों से सहित।
अपात्र - सम्यग्दर्शन एवं व्रतों से रहित।
सुपात्र के तीन भेद हैं -
उत्तम सुपात्र - भावलिंग-द्रव्यलिंग से सहित रत्नत्रयधारी मुनि।
मध्यम सुपात्र - सम्यक्त्व सहित प्रतिमाधारी श्रावक, आर्यिका।
जघन्य सुपात्र - सम्यक्त्व सहित अव्रती श्रावक।

**''प्रत्येक व्यवधान का
सावधान हो कर
सामना करना
नूतन अवधान को पाना है
या यूँ कहें इसे -
अन्तिम समाधान को पाना है।''** (पृ. ७४)

पाठ्यक्रम - १०

१०.ब जैनाचार (रात्रि भोजन त्याग एवं जल गालन)

जैन श्रावक की पहचान के तीन चिह्न कहे गए हैं। उसमें सर्वप्रथम प्रतिदिन देव दर्शन, दूसरा रात्रि भोजन त्याग और तीसरा छान कर पानी पीना है।

रात्रि भोजन त्याग का अर्थ - सूर्य अस्त होने के पश्चात् चारों प्रकार के आहार (भोजन) का त्याग करना है।

वे चार प्रकार के आहार- १. खाद्य - दाल, रोटी, भात आदि।
२. स्वाद - इलायची, लौंग, सौंफ आदि।
३. लेय - रबड़ी, लपसी, दही आदि।
४. पेय - जल, रस, दूध आदि।

जो श्रावक रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग करता है उसे एक वर्ष में छह महीने के उपवास का फल मिलता है।

दिन का बना भोजन रात में करने से अथवा रात में बना भोजन रात में करने से रात्रि भोजन का दोष तो लगता ही है किन्तु रात में बना भोजन दिन में करने से भी रात्रि भोजन का दोष लगता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार- सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड नाम की अदृश्य किरणें होती हैं। इन किरणों के धरती पर पड़ते ही अनेक सूक्ष्म जीव यहाँ - वहाँ भाग जाते हैं अथवा उत्पन्न ही नहीं होते, किन्तु सूर्य अस्त होते ही वे कीटाणु बाहर निकल आते हैं, उत्पन्न हो जाते हैं। रात्रि में भोजन करने पर वे असंख्यात सूक्ष्म त्रस जीव जो भोजन में मिल गए थे मरण को प्राप्त हो जाते हैं अथवा पेट में पहुँचकर अनेक रोगों को जन्म देते हैं। चिकित्सा शास्त्रियों का अभिमत है कि कम से कम सोने से तीन घंटे पूर्व तक भोजन कर लेना चाहिए। रात्रि में भोजन करते समय यदि चींटी पेट में चली जाए तो बुद्धि नष्ट हो जाती है, जुँओं से जलोदर रोग उत्पन्न हो जाता हैं, मक्खी से वमन हो जाता है, मकड़ी से कुष्ट रोग उत्पन्न हो जाता है तथा बाल गले में जाने से स्वर भंग एवं कंटक आदि से कण्ठ में (गले में)पीड़ा आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत: स्वास्थ्य की रक्षा हेतु भी रात्रि भोजन का त्याग अनिवार्य है।

धार्मिक दृष्टिकोण-रात्रि में बल्ब आदि का प्रकाश होने पर भी जीव हिंसा के दोष से बच नहीं सकते, बरसात के दिनों में साक्षात् देखने में आता है कि रात्रि में बल्व जलाते ही सैकड़ों कीट - पंतगे उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि दिन में बल्व (लट्टू)जलाने पर उत्पन्न नहीं होते। सूक्ष्म जीव तो देखने में ही नहीं आते। तथा रात्रि के अंधकार में भोजन करने पर सैकड़ों जीवों का घात होना संभव हैं अत: धर्म, स्वास्थ्य तथा कुल परम्परा की रक्षा हेतु रात्रि भोजन का त्याग नियम से करना चाहिए।

रात्रि भोजन से उत्पन्न पाप के फलस्वरूप जीव उल्लू, कौआ, बिलाव, गिद्ध पक्षी, सूकर, गोह आदि अत्यन्त पाप रूप अवस्था दुर्गति को प्राप्त होता है तथा मनुष्य अत्यन्त विद्रूप शरीर वाला, विकलांग, अल्पायु वाला और रोगी होता है एवं भाग्य हीन, आदर हीन होता हुआ नीच कुलों में उत्पन्न होकर अनेक दु:खों को भोगता है।

जल गालन- जल स्वयं जलकायिक एकेन्द्रिय जीव है एवं उस जल में अनेक त्रस जीव पाए जाते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि नग्न आँखों से दिखाई नहीं पड़ते। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से देखकर एक बूंद जल में 36,450 जीव बताए हैं। जैन ग्रंथों के अनुसार उक्त जीवों की संख्या काफी अधिक (असंख्यात) है। ऐसा कहा जाता है कि एक जल की बूंद में इतने जीव पाए जाते हैं कि वे यदि कबूतर की तरह उड़ें तो पूरे जम्बूद्वीप को व्याप्त कर लें। उक्त जीवों के बचाव के लिए पानी छानकर ही पीना चाहिए।

जल को अत्यन्त गाढ़े (जिससे सूर्य का विम्ब न दिखे) वस्त्र को दुहरा करके छानना चाहिए। छन्ने की लंबाई, चौड़ाई से डेढ़ गुनी होनी चाहिए।

छना हुआ जल एक मुहूर्त (४८ मिनट) तक, सामान्य गर्म जल छह (६) घंटे तक तथा पूर्णत: उबला जल चौबीस (२४) घंटे तक उपयोग करना चाहिए। इसके बाद उसमें त्रस जीवों की पुन: उत्पत्ति की संभावना रहने से उनकी हिंसा का दोष

लगता हैं।

छने हुए जल में लौंग, इलायची आदि पर्याप्त मात्रा में (जिससे पानी का स्वाद व रंग परिवर्तित हो जाए) डालने पर वह पानी प्रासुक हो जाता है एवं उसकी मर्यादा छह घंटे की मानी गई हैं।

श्री सरस्वती नाम स्तोत्रम्

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्य कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल भावेन, पूजनीया सरस्वती ॥ 1॥

अर्थ : (**सरस्वत्याः**) सरस्वती देवी की (**प्रसादेन**) कृपा से (**मानवाः**) विद्वान जन (**काव्यं**) काव्य रचना (**कुर्वन्ति**) करते हैं (**तस्मात्**) इसलिए (**निश्चल-भावेन**) अटल भक्तिभाव से (**सरस्वती**) सरस्वती देवी (**पूजनीया**) पूज्यनीय है।

श्री सर्वज्ञ मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषणी।
अज्ञान तिमिरं हन्ति, विद्या बहु विकासनी ॥ 2॥

अर्थ : (**श्रीसर्वज्ञ-मुखोत्पन्ना**) श्री सर्वज्ञ प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न (**बहुभाषिणी**) अनेक भाषारूप (**विद्या-बहु-विकासिनी**) अनेक विद्याओं को प्रकट करने वाली (**भारती**) ऐसी सरस्वती देवी (**अज्ञानतिमिरं**) अज्ञानरूपी अन्धकार को (**हन्ति**) नाश करती है।

सरस्वतीमया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कन्ध समारूढ़ा, वीणा पुस्तक धारिणी ॥ 3॥

अर्थ : (**दिव्या**) मनोहर (**कमल-लोचना**) कमल के समान सुन्दर दो नेत्रों वाली अर्थात् दो नयों वाली (**हंसस्कन्ध-समारूढा**) हंस के शरीर पर सवारी करने वाली अर्थात् भेदविज्ञानी आत्मा के ऊपर विराजमान (**वीणा-पुस्तक-धारिणी**) दिव्यध्वनिरूपी वीणा और आगमरूपी पुस्तक को कर कमलों में धारण करने वाली (**सरस्वती-मया दृष्टा**) सरस्वती देवी का मैंने दर्शन किया।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीय च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थ हंसगामिनी ॥ 4॥

अर्थ : सरस्वती देवी का (**प्रथमं भारती नाम**) पहला नाम भारती (**द्वितीयं सरस्वती**) दूसरा सरस्वती (**तृतीयं शारदादेवी**) तीसरा शारदादेवी (**च**) और (**चतुर्थ हंसगामिनी**) चौथा हंसगामिनी (क्षीर-नीर-विवेकशीला) है।

पंचमं विदुषांमाता, पष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी ॥ 5॥

अर्थ : (**पंचम विदुषां माता**) पाँचवाँ विद्वानों की माता (**षष्ठं वागीश्वरी**) छठवाँ नाम वागीश्वरी (**सप्तमं कुमारी**) सातवाँ कुमारी (**तथा**) और (**अष्टमं ब्रह्मचारिणी**) आठवाँ नाम ब्रह्मचारिणी (**प्रोक्तं**) कहा गया है।

नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत् ॥ 6॥

अर्थ : (**नवमं जगन्माता**) नवाँ जगत की माता/जगदम्बा माता (**च**) और (**दशमं ब्राह्मिणी**) दशवाँ ब्राह्मिणी (**तथा**) तथा (**एकादशं ब्रह्माणी**) ग्यारहवाँ ब्रह्माणी (**तु**) और (**द्वादशं वरदा**) बारहवाँ नाम वरदा/वरदान देने वाली (**भवेत्**) है।

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते ॥ 7॥

अर्थ : (**त्रयोदशं नाम वाणी**) तेरहवाँ नाम वाणी (**चतुर्दशं भाषा**) चौदहवाँ भाषा (**च**) और (**पंचदशंश्रुतदेवी**) पंद्रहवाँ श्रुतदेवी (**षोडशं गौः**) सोलहवाँ नाम गौ (**निगद्यते**) कहा गया है (**एव**) वास्तव में ये सोलह सरस्वती देवी के नाम हैं।

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत् ॥ 8॥

अर्थ : (**यः**) जो भव्यपुरुष (**प्रातः उत्थाय**) प्रातःकाल उठकर (**एतानि**) इन (**श्रुतनामानि**) जिनशास्त्र/सरस्वती के नामों को (**पठेत्**) पढ़ता है (**तस्य**) उस पर (**माता शारदा**) जिनवाणी/सरस्वती माता (**संतुष्यति**) प्रसन्न होती है और (**वरदा**) वर प्रदान करने वाली (**भवेत्**) होती है।

सरस्वति नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥ 9॥

अर्थ : (**वरदे!**) हे वरदायिनी! (**काम-रूपिणी**) इच्छित रूप को धारण करने वाली (**सरस्वति!**) हे सरस्वती! (**तुभ्यं**) तेरे लिए (**नमः**) नमस्कार हो (**विद्यारंभं**) मैं विद्या का प्रारम्भ (**करिष्यामि**) करूँगा (**मे**) मुझे विद्या प्राप्ति में (**सदा**) हमेशा (**सिद्धिः**) सिद्धि/सफलता/समृद्धि (**भवतु**) हो।

पाठ्यक्रम - १०

१०.स हमारे पथ प्रदर्शक : आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी

दिगम्बर आम्नाय के प्रधान आचार्य, कलिकाल सर्वज्ञ, परम आध्यात्मिक संत कुन्दकुन्द स्वामी हुए जिनके विषय में विद्वानों ने सर्वाधिक खोज की, जिनमें मुख्य विवरण इस प्रकार है :-

१. आप द्रविड़ देशस्थ कौण्डकुण्डपुर ग्राम के निवासी थे इस कारण कोण्डकुण्ड अथवा कुन्दकुन्द नाम से प्रसिद्ध हुए।

२. कुन्दकुन्दाचार्य के अन्य चार नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, ऐलाचार्य व गृद्धपिच्छाचार्य थे।

३. आचार्य कुन्दकुन्द का काल लगभग अठारह सौ वर्ष (१८००) पूर्व विक्रम संवत् १३८ - २२२ के मध्य माना गया है।

४. आप श्री जिनचन्द्र के शिष्य तथा उमास्वामी के गुरु थे।

५. आचार्य कुन्दकुन्द के पास चारण ऋद्धि थी। वे धरती से चार अंगुल ऊपर गमन करते थे तथा उन्होंने विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर केवली (तीर्थङ्कर) की साक्षात् वंदना की व उपदेश सुने।

६. विदेह क्षेत्र से लौटते हुए आचार्य श्री की पिच्छिका मार्ग में ही गिर पड़ी तब उन्होंने गृद्ध पक्षी के पंखों की पिच्छिका धारण की। तबसे आप गृद्धपिच्छिकाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

७. विदेह क्षेत्र से लौट आने पर आचार्य महोदय सिद्धान्त के अध्ययन में, लेखन में इतने तन्मय हो गए कि उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहा। गर्दन झुकाए हुए अध्ययन की उत्कटता के कारण उनकी गर्दन टेढ़ी पड़ गई और लोग उन्हें वक्रग्रीवाचार्य के नाम से संबोधित करने लगे। जब उन्हें अपनी इस अवस्था का ज्ञान हुआ तब अपने योग साधना के द्वारा उन्होंने अपनी ग्रीवा ठीक कर ली थी।

८. आचार्य कुन्दकुन्द ने चौरासी पाहुड की रचना की थी, जिनमें बारह उपलब्ध हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, दर्शन पाहुड़ आदि से सहित अष्टपाहुड़, बारसाणुवेक्खा, सिद्ध, सुद, आइरिय, जोई, णिव्वाण, पंचगुरु और तित्थयर भक्ति ये सभी प्राकृत भाषा की रचनाएँ हैं एवं षट्खण्डागम ग्रन्थ पर परिकर्म नाम से बारह हजार श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी गई जो अनुपलब्ध है।

९. प्राकृत भाषा के अतिरिक्त तमिल भाषा पर भी आचार्य श्री का अधिकार था। तमिल भाषा में आपकी सर्वमान्य रचना ''कुरल काव्य'' के नाम से प्रसिद्ध है यह अध्यात्म, नीति का सुंदर ग्रन्थ है। दक्षिण देश में यह तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध है।

१०. एक बार कुन्दकुन्दाचार्य अपने विशाल संघ (५९४ साधु) सहित गिरनार यात्रा को पहुंचे। उसी समय शुक्लाचार्य के नेतृत्व में श्वेताम्बर संघ भी पहुँचा। श्वेताम्बर आचार्य अपने को प्राचीन मानते थे और चाहते थे कि पहले हमारा संघ यात्रा करे। शास्त्रार्थ के द्वारा निर्णय न होने पर संघ समूह ने निर्णय लिया कि इस पर्वत की रक्षिका देवी जो निर्णय दे वही सर्वमान्य होगा। तब कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने मंत्र बल से गिरनार पर्वत पर सरस्वती देवी को आमंत्रित किया, उसने दिगम्बर संप्रदाय की प्राचीनता सिद्ध की। सभी ने उनके निर्णय को स्वीकारा और दिगम्बर संघ ने सर्वप्रथम यात्रा की।

मीठो-मीठो बोल

मीठो-मीठो बोल थारो काँई बिगड़े।
काँई बिगड़े थारो काँई बिगड़े।।
वीरा-वीरा बोल थारो काँई बिगड़े।
काँई बिगड़े थारो काँई बिगड़े।।
आ जीवन मा दम नहीं।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल..........।।
सोच समझ ले स्वारथ रो संसार।
लाख जतन कर छूटेला घर बार।।
तू जान ले पहचान ले मारी मान ले।
संसार किसी का घर नहीं।।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल..........।।
युग-युग से गुरु कहते बारंबार।
एक बार तू कर ले मन में विचार।।
तू चेत जा, तू जान जा, पहचान जा।
संसार किसी का घर नहीं।।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल..........।।

- **उपयोग की भूमिका में राग-द्वेष का उत्पन्न न होना ही सही स्वाध्याय/ निश्चय स्वाध्याय है**
- **समता ही परम ध्यान है। शास्त्रों का विस्तार समता की प्राप्ति के लिए ही है।**

सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।१।।
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।२।।
सुख-दुख बैरी-बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में नहीं खेद, नहिं ममता हो।।३।।
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ।।४।।
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो।।५।।
मोक्ष मार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से।।६।।
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ पापों को शान्त।।७।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके शीलाचरण विलीन किया।।८।।
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी-पीकर विषयों की मदिरा मुझ में पागलपन आया।।९।।
मैंने छली और मायावी हो, असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो मुँह पर आया वमन किया।।१०।।
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।११।।
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।१२।।
दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहें।।१३।।
जो भव दुख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान्।।१४।।
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य दर्शी वह देव रहे मम हृदय समीप।।१५।।
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी, परम देव मम हृदय रहे।।१६।।
देख रहा जो निखिल विश्व को कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह देव करें मम हृदय पवित्र।।१७।।
कर्म कलंक अछूत न जिसको कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो परम शरण मुझको वह आप्त।।१८।।
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त।।१९।।
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्तसे रहित शान्तशिव, परम शरण मुझको वह आप्त।।२०।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको, परम शरण मुझको वह देव।।२१।।
तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।।२२।।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम।।२३।।
बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।।२४।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।२५।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है।।२६।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहे कैसे।।२७।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर-पदार्थ, जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग।।२८।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।२९।।
स्वयं किए जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो स्वयं किए निष्फल होते।।३०।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि।।३१।।
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, 'अमित गति' वह देव महान्।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।३२।।

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं।।

......

जीवन की सफलता इसमें है कि किसी की गुलामी किए बिना जीवन बिताए। पराधीन को जीवित कहें तो फिर मृतक कौन है?

कुन्दकुन्द के समयसार का सार हमें जो बता रहे।
समन्तभद्र-सा डंका घर-घर द्वार-द्वार जो बजा रहे।।
भोले-भाले जन को हैं जो चलते-फिरते धाम।
ऐसे गुरु विद्यासिन्धु को मेरा शत-शत बार प्रणाम।।

सच्चा मित्र कौन

एक दिन राजा ने अपने बेटे राजकुमार को मन्त्रियों के माध्यम से यह आदेश कहलवाया कि राजकुमार हमारे देश से निकल जाए। और देश की प्रजा को भी यह आदेश दे दिया कि कोई भी राजकुमार को शरण नहीं देगा, जो शरण देगा उसे राज दण्ड दिया जाएगा।

राजकुमार ने विचार किया ऐसे संकट के समय अपने मित्रों के पास जाना चाहिए। राजकुमार के तीन मित्र थे। पहले मित्र का नाम नित्य मित्र, दूसरे मित्र का नाम पर्व मित्र एवं तीसरे मित्र का नाम नमस्कार मित्र था। नित्यमित्र प्रतिदिन राजकुमार के राज्य में आता-जाता था। इसलिए राजकुमार उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। सहयोग देता था। खान-पान भी साथ करता था। गुप्त से गुप्त बात के लिए भी पर्दा नहीं था। पर्व मित्र विशेष पर्वों में राजकुमार से मिलने आता था। भोजन कर वापस चला जाता। नमस्कार मित्र जब कभी मार्ग में मुलाकात हो जाती तो राजकुमार से नमस्कार कर लेता था।

राजकुमार सर्वप्रथम नित्य-मित्र के घर पहुँचा तो मित्र ने देखते ही अपने घर के दरवाजे बन्द कर लिए। राजकुमार को बहुत बुरा लगा। राजकुमार पर्व-मित्र के पास पहुँचा, उसे अपनी कहानी सुनाई तो मित्र ने कहा राजकुमार आप तो नाश्ता-पानी करो और जाओ क्योंकि आप जानते हैं मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं कहीं राजा ने दण्ड दे दिया तो इन बच्चों का क्या होगा! अब राजकुमार सीधे नमस्कार मित्र के पास गया उसने प्रारम्भ से अन्त तक अपनी सारी कहानी सुना दी। मित्र कहता आखिर आपकी गलती क्या हुई? राजकुमार कहता यह तो मुझे भी ज्ञात नहीं है। नमस्कार मित्र कहता है आओ पहले भोजन करो फिर जो होगा देखा जाएगा। दोनों भोजन करके उठते ही हैं कि राजा के सिपाही आ जाते हैं और नमस्कार मित्र से कहते हैं आपने राजकुमार को शरण दी है अतः आप दोनों राजा के पास चलें। राजा के सामने नमस्कार मित्र को पेश किया, राजा कहता है आपने इसे शरण क्यों दी? नमस्कार मित्र कहता पहले आप यह बताइए कि राजकुमार से क्या अपराध हुआ? राजा नमस्कार मित्र से कहता इसका अपराध कुछ भी नहीं है। मैं तो यह परीक्षा कर रहा था कि राजकुमार का सच्चा मित्र कौन है। अब मुझे ज्ञात हो गया कि तुम इसके सच्चे मित्र हो। अतः राजकुमार को राजा और तुम्हें मन्त्री पद दिया जाता है और मैं संन्यास धारण करने जा रहा हूँ।

यह तो दृष्टान्त है, भाव यह है कि विद्वानों ने इस शरीर को नित्य मित्र कहा है जिसकी हम दिन-रात सेवा करते हैं फिर भी बुढ़ापे में दगा दे जाता है। परिवार को पर्व-मित्र कहा है जो थोड़ी-बहुत सहायता करते रहते हैं। तथा धर्म को नमस्कार मित्र कहा है। दुःख में, सुख में तथा परलोक में भी सच्चा साथी धर्म ही होता है। अतः हर व्यक्ति को धर्म, नमस्कार-मित्र पर ही विश्वास रखना चाहिए यही सच्चा मित्र है।

शिक्षा- संकट के समय ही मित्र की पहचान होती है, स्वार्थी मित्र संकट के समय दूर हो जाते हैं, अतः ऐसे मित्रों से बचना चाहिए। जो संकट में सहायता करे वही सच्चा मित्र है अतः उसी से मित्रता करनी चाहिए।

श्री विद्यासागर विनम्र

श्री विद्यासागर विनम्र वे चरण हाँ विनम्र वे चरण
इन्हें नमन ...२, इनको शत्-शत् नमन ...२
बड़े भाग्य से तो दर्श मिलता है
किस्मत ही वालों को मिलता है...२
जिस धरा पर पग पड़े वो
तीर्थ से न कम, हाँ वो तीर्थ से न कम
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर ....॥१॥

वीतराग भेष देखो अचम्भा
चांद-सूरज भी करते परिकम्मा
ऐसे साधु हमको मिले रात दिन हां मिले रात-दिन
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर ....॥२॥

ज्ञान के हैं सूर्य प्यारे गुरुजी
छवि ऐसी है जैसे प्रभुजी
जिन्हें देख कर मन हो गया प्रसन्न
हां-हां हो गया प्रसन्न,
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर ....॥३॥

शुभ घड़ी आज ऐसी आई है
गुरू की कृपा दृष्टि छाई है
आज मेरा जीवन हो गया है धन्य
हां-हां हो गया है धन्य,
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर ....॥४॥

पाठ्यक्रम - ११

११.अ विश्व संरचना के प्रमुख घटक - द्रव्य

जिसका कभी नाश न हो ऐसी त्रिकालवर्ती वस्तु द्रव्य कहलाती है। द्रव्य सत् लक्षण वाला, उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त होता है। गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है। द्रव्य में भेद करने वाले धर्म को गुण और द्रव्य के विकार को पर्याय कहते हैं। उदाहरण - सोना सत् होने से द्रव्य, पीलापन, भारीपन सदा साथ रहने से गुण, मुकुट कुण्डल आदि नाशवान् होने से पर्याय कहलाती है तथा कुण्डल का बनना-उत्पाद, मुकुट का मिटना-व्यय, इन दोनों दशाओं में स्वर्ण का ज्यों का त्यों रहना ध्रौव्य है। द्रव्य छह होते हैं:-

१. **जीव द्रव्य** - जो इन्द्रिय आदि चार प्राणों के द्वारा जीता था, जीता है एवं जीएगा उसे जीव कहते है।

२. **पुद्गल द्रव्य** - स्पर्श-रस-गंध और वर्ण वाला पुद्गल द्रव्य होता है। हमारे आस-पास जो कुछ भी देखने में आ रहा है वह सब पुद्गल द्रव्य का ही परिणमन है जैसे टेबल, पुस्तक, शरीर इत्यादि।

३. **धर्म द्रव्य** - चलते हुए जीव एवं पुद्गल के चलने में जो उदासीन निमित्त कारण है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे पानी मछली के चलने में सहायक है, पटरी, रेल के चलने में सहायक है।

४. **अधर्म द्रव्य** - ठहरते हुए जीव एवं पुद्गल के ठहरने में जो सहायक कारण। वह अधर्म द्रव्य है। जैसे- ठहरने वाले पथिक के लिए पेड़ की छाया, हवाई जहाज के लिए हवाई अड्डा ठहरने में निमित्त कारण है।

५. **आकाश द्रव्य** - सभी द्रव्यों को रहने के लिए जो स्थान दे/ अवकाश दे उसे आकाश द्रव्य कहते हैं। जैसे मनुष्यों को रहने के लिए मकान, पक्षियों के रहने के लिए घोंसला स्थान देता है।

६. **काल द्रव्य** - जो परिणमन करते हुए जीवादि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी कारण है उसे काल द्रव्य कहते हैं। सेकंड, मिनट, घण्टा आदि काल द्रव्य की पर्याए हैं। जैसे घूमते हुए चक्र की कील।

छहों द्रव्य लोकाकाश में सर्वत्र पाये जाते हैं अर्थात् लोकाकाश में ऐसा एक भी स्थान नहीं है जहाँ छहों द्रव्य न पाये जाते हों। अलोकाकाश में मात्र आकाश द्रव्य पाया जाता है।

जीव द्रव्य अनन्त हैं, उनसे पुद्गल परमाणु अनन्त हैं। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य एक-एक हैं। काल द्रव्य असंख्यात है। आकाश द्रव्य एक है, छह द्रव्यों के निवास स्थान की अपेक्षा लोकाकाश और अलोकाकाश ये दो भेद आकाश के हो जाते हैं।

एक अविभागी पुद्गल आकाश के जितने स्थान को घेरता है उसे प्रदेश कहते हैं। एक जीव द्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं। जीव संकोच - विस्तार स्वभाव वाला होने से छोटे से छोटे शरीर में अथवा बड़े से बड़े शरीर में भी रह सकता है। पुद्गल द्रव्य संख्यात, असंख्यात व अनन्त प्रदेश वाला होता है। धर्म द्रव्य व अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं एवं आकाश द्रव्य अनन्त प्रदेशी है। काल द्रव्य एक प्रदेश वाला है अत: काल द्रव्य को अप्रदेशी कहा गया है शेष द्रव्य सप्रदेशी जानना चाहिए।

परस्पर जीवों का उपकार करना ही जीव द्रव्य का उपकार हैं। शरीर, वचन, मन, प्राणापान, सुख, दुख, जीवन, मरण ये सब पुद्गल द्रव्य के उपकार हैं। गति और स्थिति में निमित्त होना यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है। वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व ये काल द्रव्य के उपकार हैं। प्रत्येक द्रव्य में प्रति समय होने वाला परिवर्तन वर्तना कहलाता है। परिस्पंदन रहित द्रव्य की पूर्व पर्याय की निवृत्ति, नवीन पर्याय की उत्पत्ति परिणाम है। परिस्पंदन रूप परिणमन क्रिया कहलाती है। छोटे - बड़े के व्यवहार को परत्व-अपरत्व कहते हैं।

प्रत्येक कार्य समय पर होता है इसलिए उतावली नहीं करना चाहिए
जिस प्रकार वृक्ष में चाहे जितना भी पानी डाला जाए पर वह समय पर ही फल देता है
समय एवं धैर्य हमारी समस्याओं को स्वयमेव सुलझा देते हैं।

६०. गुरु-प्रार्थना

गुरुदेव दया करके, मुझे जग से छुड़ा देना।
पा जाऊँ मैं आतम को, वो राह दिखा देना॥
करुणानिधि नाम तेरा, करुणा को जगाओ तुम,
मैत्री के भावों को, हे नाथ जगा दो तुम।
प्रतिपल समता में रहूँ, संवर ये सिखा देना॥
गुरुदेव दया..........॥
लाखों को तारा है, मुझको भी तारो तुम,
मैं शरण पड़ा तेरी, मेरी ओर निहारो तुम।
मेरा जनम-मरण छूटे, वो भक्ति जगा देना॥
गुरुदेव दया..........॥
मैं अनादि से घायल हूँ, उपचार कराओ तुम,
हो जाऊँ निरोग सदा, औषध वो पिलाओ तुम।
पा जाऊँ परम पद को, वो राह चला देना॥
गुरुदेव दया..........॥
टूटी हुई वीणा के सब, तार मिला दो तुम,
गाऊँ मैं मधुर संगीत, वो साज बना दो तुम।
ये गीत जो बिछुड़ा है, गायक से मिला देना॥
गुरुदेव दया..........॥
बहती हुई सरिता की, आवाज मिटाओ तुम,
अंतस में हे स्वामी, ज्योति प्रकटाओ तुम।
ये बूँद जो बिछुड़ी है, सागर से मिला देना॥
गुरुदेव दया..........॥
......

श्री विद्यासागर जी

श्री विद्यासागर जी गुरुवर हमारे,
संसार सिंधु के तुम हो किनारे।
तू ज्ञान सागर की पहली लहर है,
जाना कहाँ है ये तुमको खबर है।
हमको भी ले चल मुक्ति की मंजिल,
जीवन की नैया है तेरे सहारे।
श्री विद्यासागर......।।
तुम वीतरागी हो वैराग्यदायी,
श्री जैन शासन की महिमा बताई।
लाखों को तारा हमने पुकारा,
आवाज सुन लो गुरुवर हमारे।
श्री विद्यासागर......।।
तुम हो अहिंसा धर्म के मसीहा,
तुम स्वाती की बूँद मैं हूँ पपीहा।
हमको पिला दो हमको जिला दो,
अध्यात्म अमृत वचन ये तुम्हारे।
श्री विद्यासागर......।।
सम्यक्त्व समता के आलय तुम्हीं हो,
माँ भारती के हिमालय तुम्हीं हो।
पथ तुमसे पावन उपकारी जीवन,
हम अश्रु जल से चरणा पखारें।
श्री विद्यासागर......।।

संशय विपर्यय अनध्यवसाय

एक सेठजी थे। उन्होंने कुत्ते के दो पिल्ले खरीदे। जो कि देखने में बहुत सुंदर थे। जब तीन ठगों ने उनको देखा तो वे सोचने लगे कि ये कुत्ते के बच्चे कितने सुंदर हैं। इन्हें किसी भी तरह सेठजी से ले लेना चाहिए। इसके लिए वे तीनों मिलकर एक योजना बनाते हैं। तीनों एक-एक फर्लांग की दूरी पर खड़े हो जाते हैं और जब सेठजी उधर से निकलते हैं तो पहला ठग कहता है- अरे सेठजी, ये बिल्ली के बच्चे कहाँ से लाए? सेठजी इस बात पर ध्यान नहीं देते और सोचते हैं- पता नहीं क्या कह रहा है। यह अनध्यवसाय की स्थिति है।

जब सेठजी एक फर्लांग और आगे जाते हैं तो दूसरा ठग उनको मिलता है। वह भी अपनी पूर्व नियोजित योजना के अनुसार उनसे कहता है- सेठजी! ये बिल्ली के बच्चे कितने सुंदर हैं। आप इन्हें कहाँ से लाए हैं? सेठजी यह सुनकर संशय में पड़ जाते हैं। कि पहले भी उस व्यक्ति ने टोका था, और अब यह भी वही बात कह रहा है। जाने ये बिल्ली के बच्चे हैं या कुत्ते के? सेठजी यही विचारते हुए जब कुछ और आगे बढ़े तो तीसरा ठग उन्हें मिला। वह भी उसी बात को दोहराता है। तब सेठजी को यह निश्चय हो जाता है कि ये कुत्ते के नहीं, बिल्ली के ही बच्चे हैं। यही विपरीत ज्ञान है।

इसी प्रकार जब हम सुनते हैं शरीर ही आत्मा है। लेकिन उस पर कुछ ज्यादा गौर नहीं करते। यह अनध्यवसाय है। फिर सुनते हैं कि शरीर में आत्मा है लेकिन है या नहीं है इस बात का संशय होना संशय ज्ञान है। लेकिन तभी कोई यह कहे कि आत्मा कुछ नहीं होती। उसे किसने देखा। शरीर आत्मा एक ही है। ऐसा निश्चय हो जाना ही विपरीत ज्ञान है।

पाठ्यक्रम - ११

११.ब | जीवों की भावात्मक परिणति - छह लेश्या

जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती हैं। उसको लेश्या कहते है।

लेश्या के छह भेद हैं - १. कृष्ण, २. नील, ३. कापोत, ४. पीत, ५. पद्म, और ६. शुक्ल

१. कृष्ण लेश्या :- सदा बुरे विचार करना, बात-बात में क्रोध करना, दूसरों से घृणा करना, दया धर्म से रहित होना, वैर भाव रखना, सदा शोक संतप्त रहना, शत्रुता को न छोड़ना,लड़ना आदि जिसका स्वभाव हो आदि कृष्ण लेश्या वालों के लक्षण हैं।

२. नील लेश्या - आलसी, बुद्धिहीन, कामी, भोगी, डरपोक, ठग, परवंचना में दक्ष, आहारादि संज्ञाओं में आसक्त, अति लोभी, सदा मान-सम्मान पाने के भाव आदि नील लेश्या वालों के लक्षण हैं।

३. कापोत लेश्या - परनिन्दा,आत्म-प्रशंसा, बात-बात में नाराज होना, शोकाकुल होना आदि कापोत लेश्या वालों के लक्षण हैं।

४. पीत लेश्या - दयालु, विवेकी, संतोषी, तीव्र बुद्धिमान होना, सबसे प्रेम करना आदि पीत लेश्या वालों के लक्षण हैं।

५. पद्म लेश्या - सदा प्रसन्न रहना, सदा परोपकार करना, देवपूजा - दानादि करना, त्याग के भाव रखना आदि पद्म लेश्या वालों के लक्षण हैं।

६. शुक्ल लेश्या - राग-द्वेष से रहित होना, प्राणी मात्र के प्रति स्नेह भाव रखना, शोक-निंदा आदि से रहित होना आदि शुक्ल लेश्या वालों के लक्षण हैं।

लेश्याओं का उदाहरण - छह मित्र एक बगीचे में गए। वहाँ उन्होंने आम से लदा हुआ वृक्ष देखा, पहला मित्र बोला- चलो इस वृक्ष को उखाड़ डालें और पेट भर आम खाएँ।

दूसरे मित्र ने कहा - वृक्षों को उखाड़ने से क्या प्रयोजन, केवल बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटने से ही हमारा काम हो जाएगा। तीसरे ने कहा- यह भी उचित नहीं है, हमारा काम तो छोटी-छोटी टहनियों के काटने से ही हो जाएगा। चौथे मित्र ने कहा- टहनियों को तोड़ने से क्या लाभ, केवल गुच्छों को तोड़ना ही पर्याप्त है। पाँचवाँ मित्र बोला- हमें गुच्छों से क्या प्रयोजन, केवल पके फल तोड़ लेना ही अच्छा है। तब अन्त में छठा मित्र गम्भीर होकर बोला- आप सब क्या सोच रहे हैं। हमें जितने फल चाहिए उतने तो नीचे ही पड़े हैं, फिर व्यर्थ में फल तोड़ने से क्या लाभ ।

इस दृष्टान्त से लेश्याओं का स्वरूप समझ में आ जाता है। पहले मित्र के परिणाम कृष्ण एवं छठे मित्र के परिणाम शुक्ल लेश्या के प्रतीक हैं। यह उदाहरण केवल परिणामों की तारतम्यता का सूचक है।

सबके दिन सदा एक से नहीं रहते

जैसे नाव में बैठने वाले व्यक्ति हिलते हैं तो कोई प्रश्न करे कि ये व्यक्ति क्यों हिल रहे हैं? तो उत्तर होगा कि नौका के हिलने से ये व्यक्ति हिल रहे हैं। तब पुन: प्रश्न उत्पन्न होता है कि नौका क्यों हिलती है? तो कहेंगे- पानी हिल रहा है। और पानी क्यों हिलता है? वायु के चलने से।

ठीक इसी प्रकार एक ही जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव क्यों आते हैं, सबके दिन सदा एक से क्यों नहीं रहते? कभी बाह्य संयोग अनुकूल होते हैं तो कभी प्रतिकूल। ऐसा क्यों? अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों का मिलना-बिछुड़ना कर्म आश्रित है। कर्म अनुकूल होते हैं तो सारे संयोग अनुकूल होते हैं और कर्म प्रतिकूल हो तो सारे संयोग प्रतिकूल होते हैं। कर्मों में ऐसी भिन्नता क्यों होती है? कर्म सदा एक से क्यों नहीं रहते। देखो, सुबह से शाम तक अपने परिणामों में कितनी तारतम्यता रहती है और परिणामों की भिन्नता से कर्म भी भिन्न-भिन्न बँधते हैं और जैसे कर्म बँधते हैं वैसा ही उनका फल देखने में आता है। कभी शुभ का उदय तो कभी अशुभ का उदय। अत: सबके दिन सदा एक से नहीं रहते।

तीन लोक का वर्णन करने वाला महान ग्रन्थ - 'तिलोयपण्णत्ती'

ईसा की द्वितीय शताब्दी (सन् १७६) के आसपास के यशस्वी आगम ज्ञाता विद्वान आचार्य यतिवृषभ द्वारा तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ की रचना की गई। तिलोयपण्णत्ती में तीन लोक के स्वरूप, प्रकार, विस्तार, क्षेत्रफल और युगपरिवर्तन आदि विषयों का निरूपण किया गया है। प्रसंगवश जैन सिद्धांत, पुराण और भारतीय इतिहास विषयक सामग्री भी निरुपित है। यह ग्रन्थ ९ महाधिकारों में विभक्त है।

१- सामान्य जगत्स्वरूप,	२- नारकलोक,	३- भवनवासलोक,
४- मनुष्यलोक,	५- तिर्यकलोक,	६- व्यन्तरलोक,
७- ज्योतिर्लोक,	८- सुरलोक	९- सिद्धलोक।

इन नौ महाधिकारों के अतिरिक्त अवान्तर अधिकारों की संख्या १८० है।

प्रथम महाधिकार में २८३ गाथाएँ हैं और तीन गद्य - भाग हैं। दृष्टिवाद- सूत्र के आधार पर त्रिलोक की मोटाई, चौड़ाई और ऊँचाई का निरूपण किया है।

दूसरे महाधिकार में ३६७ गाथाएँ हैं, जिनमें नरकलोक के स्वरूप का वर्णन है।

तीसरे महाधिकार में २४३ गाथाएँ हैं। इनमें भवनवासी देवों के प्रासादों में जन्म शाला, औषधशाला, लतागृह आदि का वर्णन है।

चतुर्थ महाधिकार में २९६१ गाथाएँ हैं। इनमें मनुष्य लोक का वर्णन करते हुए आठ मंगलद्रव्य, कल्पवृक्ष, तीर्थंकरों की जन्मभूमि, नक्षत्र, समवशरण आदि का विस्तृत वर्णन है।

पॉचवें महाधिकार में ३२१ गाथाएँ हैं। जम्बूद्वीप, आदि का विस्तार सहित वर्णन है।

छठे महाधिकार में १०३ गाथाएँ हैं। इनमें व्यन्तरों के निवास क्षेत्र, उनके अधिकार क्षेत्र, उनके भेद, चिह्न, उत्सेध, अवधिज्ञान आदि का वर्णन है।

सातवें महाधिकार में ६१९ गाथाएँ हैं, जिनमें ज्योतिषी देवों का वर्णन है।

आठवें महाधिकार में ७०३ गाथाएँ हैं। जिनमें वैमानिक देवों के निवास स्थान, आयु, परिवार, शरीर, सुखभोग आदि का विवेचन है।

नवम महाधिकार में सिद्धों के क्षेत्र, उनकी संख्या, अवगाहना और सुख का प्रस्पण किया गया है। मध्य में सूक्तिगाथाएँ भी प्राप्त होती हैं।

यथा-अन्धा व्यक्ति कूप में गिर सकता है, बधिर उपदेश नहीं सुनता है, तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य इस बात का है, कि जीव देखता और सुनता हुआ नरक में जा पड़ता है।

भजन

करना मन ध्यान महामंत्र णमोकार।
पहिली बार बोलो मन णमो अरिहंताणं-२।।
होवे पाप का नाश महामंत्र णमोकार-२।।१।।
दूजी बार बोलो मन णमो सिद्धाणं-२
होवे आतम ज्ञान महामंत्र णमोकार-२।।२।।
तीजी बार बोलो मन णमो आयरियाणं-२
होवे गुरु का ज्ञान महामंत्र णमोकार-२।।३।।
चौथी बार बोलो मन णमो उवज्झायाणं-२
होवे ज्ञान विकास महामंत्र णमोकार-२।।४।।
पाँचवी बार बोलो मन णमो लोए सव्वसाहूणं-२
होवे भव से पार महामंत्र णमोकार-२।।५।।

पलकें ही पलकें बिछायेंगे,जिस दिन मेरे गुरुवर घर आएँगे ।
हमतो हैं गुरुवर तेरे जन्मों से दीवाने रे ॥
मीठे-मीठे भजन सुनाएँगे, जिस दिन... ॥
घर को कोना-कोना मैंने फूलों से सजाया,
तोरण द्वार बंधाया घी का दीपक जलाया ॥
भक्तजनों को बुलाएंगे-२, जिस दिन मेरे...।
मन-वच-तन से वंदन करके चरण पखारूँ-२
धूप-दीप की थाल सजाके आरती उतारूँ-२
भक्ति के रस में समाएंगे-२, जिस दिन...।
अब तो एक लगन रे स्वामी प्रेम सुधा बरसा दो ,
जन्म-जन्म की मैली चादर अपने रंग रंगा दो -२
जीवन को सफल बनाएंगे-२, जिस दिन...।

पाठ्यक्रम - ११

११.स जैन पर्व तथा त्योहार

दशलक्षण पर्व – जैन श्रावकों का सबसे पवित्र पर्व दशलक्षण अथवा पर्यूषण पर्व है। यह पर्व प्रतिवर्ष में तीन बार माघ, चैत एवं भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है। ये दश दिन दशलक्षण धर्म के दिन कहे जाते हैं। दश धर्मों के नाम पर ही इन पर्वों का नाम उद्घोषित किया जाता है इनके नाम उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य एवं उत्तम ब्रह्मचर्य पर्व है। इन दिनों श्रावक लोग यथाशक्ति व्रतों का पालन करते हैं, पूजन-पाठ कर संयम के साथ दिन व्यतीत करते हैं।

भादों शुक्ला चतुर्दशी को अनन्त चतुर्दशी कहते हैं, इस दिन प्राय: सभी जैन श्रावक व्रत-उपवास करते हैं। अश्विनी कृष्णा प्रतिपदा के दिन अथवा अन्य किसी दिन क्षमावाणी पर्व मनाते हैं, अपने द्वारा हुए अपराधों की एक-दूसरों से क्षमा मांगते हैं एवं परस्पर गले मिलते हैं। यह पर्व अनादि अनिधन माना गया है। जैन सिद्धान्तानुसार अवसर्पिणी काल के अंत में भरत-ऐरावत क्षेत्र के आर्य खण्ड में महाप्रलय होता है। उसके बाद नवीन सृष्टि का प्रारंभ शुभ दिन माघ सुदी पंचमी से होता है। अत: आर्यखण्ड की इस पुन: स्थापना के स्मरण रूप भी यह पर्व मनाया जाता है।

अष्टाह्निका पर्व – यह पर्व कार्तिक, फाल्गुन और आषाढ़ माह के अन्त के आठ दिनों (शुक्ल पक्ष की अष्टमी से पूर्णिमा तक) में मनाया जाता है। अष्टम द्वीप नन्दीश्वर में स्थित बावन जिनालयों की पूजा करने चतुर्णिकाय के देव इन दिनों यहाँ आते हैं। चूंकि मनुष्य वहां नहीं जा सकते इसलिए उक्त दिनों में पर्व मनाकर यहीं पर पूजन करते हैं। इन दिनों में मुख्य रूप से सिद्ध चक्र मण्डल विधान का आयोजन किया जाता है। साधु संघों में नंदीश्वर भक्ति का पाठ किया जाता है। साधु एवं श्रावक गण इन दिनों यथाशक्ति व्रत उपवास रखते हैं।

महावीर जयन्ती – चैत्र शुक्ला त्रयोदशी (१३) भगवान महावीर की जन्म तिथि है। इसे सम्पूर्ण जैन समाज मिलकर बड़े धूम-धाम से मनाती है। केन्द्रीय सरकार के सभी सरकारी कार्यालयों की छुट्टी रहती है। प्रात:काल प्रभात फेरी निकाली जाती है। दोपहर को नगर में विशाल जुलूस, शोभायात्रा निकाली जाती है जिसमें श्री जी का विमान भी रहता है। लौटकर आने के पश्चात् श्री जी का अभिषेक होता है एवं रात्रि में भगवान के जीवन एवं उपदेश पर विद्वानों द्वारा व्याख्यान, कवि सम्मेलन, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि होते हैं। इस दिन प्राय: सभी श्रद्धालु जैन श्रावक व्यापारिक प्रतिष्ठान बंद रखते हैं एवं जिनधर्म की प्रभावना में अपना सहयोग प्रदान करते हैं। इस दिन अस्पताल आदि संस्थाओं के लिए दान एवं रोगियों के लिए दूध, फल, औषध आदि भी नि:शुल्क वितरण किए जाते हैं।

श्रुत पञ्चमी पर्व – भगवान महावीर के मुक्त हो जाने के लगभग ६०० वर्ष पश्चात् जब अंगश्रुतज्ञान लोप हो गया। तब गिरनार पर्वत की गुफा में निवास करने वाले धरसेनाचार्य महाराज के मन में श्रुत संरक्षण का विचार आया। निमित्त ज्ञान से उन्होंने जाना कि मेरी आयु अल्प रह गई है, मेरे बाद इस अंगज्ञान का लोप हो जावेगा। अत: योग्य शिष्यों को मुझे अंग आदि श्रुत का ज्ञान करा देना चाहिए। ऐसा विचार कर उन्होंने महिमा नगरी के यति सम्मेलन में पत्र भेजा। पत्र प्राप्त कर अर्हद्बलि आचार्य ने नरवाहन और सुबुद्धि नामक मुनिराज को उनके पास भेजा। ये दोनों मुनि जिस दिन आचार्य धरसेन के पास पहुंचने वाले थे, उसकी पिछली रात्रि को स्वप्न में उन्होंने दो हष्ट पुष्ट, सुडौल और सफेद बैलों को बड़ी भक्ति से अपने पांवों में पड़ते देखा। सवेरा होते ही दो मुनियों ने जिनकी उन्हें चाह थी, आकर गुरु चरणों में सिर झुकाकर स्तुति की। दो-तीन दिनों के पश्चात् उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्त्तव्य बुद्धि का परिचय प्राप्त कर दोनों को दो विद्याएं सिद्ध करने के लिए दी। गुरु आज्ञानुसार वे गिरनार पर्वत पर भगवान नेमिनाथ की निर्वाण शिला पर पवित्र मन से विद्या सिद्ध करने बैठ गए। मंत्र साधन का अवधि पूरी होने पर दो देवियां उनके पास आईं। इन देवियों में एक देवी तो आँखों से अन्धी थी और दूसरी के दाँत बड़े और बाहर निकले थे। देवियों के असुन्दर रूप को देख इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने सोचा देवों का तो ऐसा रूप होता नहीं फिर ऐसा क्यों ? तब इन्होंने मंत्रों की जाँच की, मंत्रों की

गलती का उन्हें भास हुआ। फिर उन्होंने ने शुद्ध कर जपा। अबकी बार उन्हें दो देवियाँ सुन्दर वेष में दिखाई पड़ीं। गुरु के पास आकर उन्होंने समस्त वृत्तान्त सुनाया। धरसेनाचार्य बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्होंने परीक्षा हेतु जानबूझ कर ही हीनाधिक मात्राओं वाला मंत्र दिया था। परीक्षा में उत्तीर्ण शिष्यों को सब तरह योग्य पा उन्हें खूब शास्त्राभ्यास कराया तथा ग्रन्थ समाप्ति पर भूतों द्वारा मुनियों की पूजा करने पर नरवाहन मुनि का नाम भूतबलि तथा सुबुद्धि मुनि की अस्त-व्यस्त दंत पंक्ति सुव्यवस्थित हो जाने से उनका नाम पुष्पदन्त रखा। आषाढ़ शु. ११ को अध्ययन पूरा हो जाने पर धरसेन गुरु से विदा ले दोनों गिरनार के निकट अंकलेश्वर आ गए वहाँ चातुर्मास किया। कुछ समय पश्चात् उन मुनिराजों ने षट्खण्डागम नामक सिद्धान्त ग्रंथ को लिपिबद्ध कर ज्येष्ठ शु. पंचमी को पूर्ण किया। उस दिन बहुत उत्सव मनाया गया। तभी से प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को श्रुत (ग्रन्थों) की पूजा की जाती है तथा शास्त्रों को निकालकर धूप में सुखाया जाता है तथा वेष्टन आदि बदले जाते हैं।

रक्षाबन्धन पर्व -भगवान अरनाथ तीर्थङ्कर के काल में जब बलि आदि चार ब्राह्मण मंत्रियों ने धार्मिक द्वेष वश श्री अकम्पनाचार्य को ७०० मुनियों के संघ सहित जीवित जला देने की इच्छा से हस्तिनापुर के बाहर मुनि संघ के चारों ओर धुएँदार अग्नि जला दी, साधुगण अपने ऊपर महाविपत्ति समझकर आत्मध्यान में लीन हो गए। तब श्री विष्णुकुमार मुनि, जो कि विक्रिया ऋद्धि के धारक थे, धार्मिक प्रेम वश एवं साधर्मी वात्सल्य वश तुरन्त हस्तिनापुर आए। और अपने शरीर को विक्रिया ऋद्धि से बौने ब्राह्मण का रूप बना कर बलि मंत्री से अपने लिए तीन पैर (३ कदम) पृथ्वी माँगी। उसने देना स्वीकार कर लिया तब उन्होंने विक्रिया से बड़ा रूप बना कर दो पैर (कदम) में ही मानुषोत्तर पर्वत तक सारी पृथ्वी नाप ली। तीसरा चरण बलि के कहने पर उसकी पीठ पर रखा। इस प्रकार पृथ्वी पर अधिकार पाकर उन्होंने तुरन्त अकम्पनाचार्य के संघ के चारों ओर से अग्नि हटवाकर उनकी विपत्ति दूर की। जनता को इससे शान्ति, संतोष हुआ, उपसर्ग दूर होने पर श्रावकों ने दूध की समयौ का हल्का आहार तैयार किया और मुनियों को दिया क्योंकि धुएँ से उनके गले भी भर आए थे। वह दिन श्रावण शुक्ला १५ का था। अत: उस दिन से प्रतिवर्ष उनके स्मरण में ''वात्सल्य पर्व'' चालू हुआ और मुनि रक्षा के स्मरण स्वरूप रक्षा सूत्र हाथ में बाँधा जाता है। राखी धर्म की रक्षार्थ एक दूसरे की कलाई में बाँधी जाती है। अत: रक्षा सूत्र बहन-भाई को ही बाँधे ऐसा कोई नियम नहीं है। धर्म की रक्षार्थ, परस्पर में प्रेमभावना से रक्षासूत्र बाँधना लोक व्यवहार की अपेक्षा से मिथ्यात्व नहीं है।

दीपावली पर्व - विक्रम सं. से ४७० वर्ष पहले कार्तिक वदी अमावस्या के प्रात: से कुछ समय पहले अंतिम तीर्थङ्कर श्री भगवान महावीर पावापुरी से निर्वाण को प्राप्त हुए थे अर्थात मोक्ष गए। उस समय रात्रि का कुछ अन्धकार शेष था। अतएव देवों ने तथा मनुष्यों ने वहाँ पर अगणित दीपक जलाकर प्रकाश करके मोक्ष उत्सव मनाया। तदनुसार तबसे ही प्रतिवर्ष भारत में कार्तिक वदी अमावस्या को अनेक दीपकों का प्रकाश करके दीपावली उत्सव मनाया जाता है। चतुर्दशी की रात्रि व्यतीत होने पर प्रात: भगवान महावीर की पूजा करके निर्वाण लाडू चढ़ाया जाता है। शाम को उनके प्रधान शिष्य गौतम गणधर को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। मुक्ति और ज्ञान ही जैन धर्म में सबसे बड़ी लक्ष्मी मानी जाती है।

प. गुलाबचन्द जी पुष्प के लेखानुसार - दीपावली के दिन संध्याबेला में घर में सामान्य पूजन श्रावक कर सकता है, शुद्धि पूर्वक यह पूजन सूर्यास्त के पहले ही कर लेना चाहिए। पूजन करने का स्थान शुद्ध होना चाहिए जहाँ अटैच शौचालय न हो, जूते-चप्पल न पहुँचते हों, भोजन न किया जाता हो। उपर्युक्त शुद्ध स्थल को जल से स्वच्छ कर, चौकी लगाकर उस पर जिनवाणी स्थापित कर, मंगल कलश एवं दीपक की स्थापना करें। मंगलाष्टक पढ़ते हुए दिग्बंधन करके अपनी मन्त्र शुद्धि पूर्वक, कार्य का शुभारम्भ करें। तत् पश्चात् गणधर भगवान की पूजा करना चाहिए। महावीराष्टक पढ़कर दीप प्रज्वलन आदि करें। आर्य ग्रन्थों में चित्रों की पूजा का विधान नहीं है अत: चित्र की पूजा न करके जिनवाणी की स्थापना कर पूजन सम्पादित करना चाहिए। किन्तु सज्जा हेतु यदि तीर्थङ्कर आदि का चित्र लगाया जाता है तो अनुचित नहीं है। कम से कम पाँच कल्याणकों की अपेक्षा पाँच दीप प्रज्वलित करना चाहिए। अन्यत्र यह व्यवस्था भी दृष्टिगोचर होती है चौमुखी सोलह दीपक १६x४ = ६४ ऋद्धियों का प्रतीक मानकर तथा दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का प्रतीक मानकर दीप प्रज्ज्वलित किए जाते हैं।

ये जरूरी नहीं है हर रोज मंदिर जाने से इंसान धार्मिक बन जाए,
लेकिन कर्म ऐसे होने चाहिए कि इंसान जहाँ भी जाए मंदिर वहाँ बन जाए ।

परमानंद स्तोत्रम्

परमानन्द- संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥१॥

अर्थ : (**परमानन्द-संयुक्तं**) परम आनन्द से युक्त (**निर्विकारं**) राग-द्वेषादि विकारीभावों से रहित निर्विकार (**निरामयम्**) निरांमय/जन्म-जरा-मृत्युरूपी रोग से रहित (**निजदेहे व्यवस्थितम्**) स्वयं अपने शरीर में स्थित आत्मा को (**ध्यानहीनाः**) ध्यान से रहित व्यक्ति (**न पश्यन्ति**) नहीं देखते हैं।

अनन्त- सुख- संपन्नं, ज्ञानामृत- पयोधरम्।
अनन्त-वीर्य- संपन्नं, दर्शनं परमात्मनः॥२॥

अर्थ : (**परमात्मनः**) उत्कृष्ट आत्मा/परमात्मा का (**दर्शनं**) देखना/अनुभव करना (**अनन्तसुखसंपन्नं**) अनन्तसुख सहित (**ज्ञानामृतपयोधरम्**) ज्ञानामृतरूपी मेघ वाला (**अनन्तवीर्यसम्पन्नं**) अनन्तबल से युक्त है।

निर्विकारं निराबाधं, सर्व- संग विवर्जितम्।
परमानन्द- संपन्नं, शुद्ध- चैतन्य- लक्षणम्॥३॥

अर्थ : वह परमात्मा (**निर्विकारं**) विकार से रहित (**निराबाधं**) बाधा से रहित (**सर्वसङ्ग-विवर्जितम्**) सम्पूर्ण बाह्य-अंतरंग परिग्रह से रहित (**परमानन्द-सम्पन्नं**) परमानन्द से संयुक्त और (**शुद्धचैतन्यलक्षणम्**) शुद्ध चैतन्यरूप लक्षण वाला है।

उत्तमा स्वात्मचिन्तास्यात्, देहचिन्ता च मध्यमा।
अधमा कामचिन्ता स्यात्, परचिन्ता धमाधमा।।४।।

अर्थ : (**स्वात्मचिन्ता**) अपने आत्मा की चिंता करना (**उत्तमा**) उत्कृष्ट है (**देह-चिन्ता**) शरीर की चिंता करना (**मध्यमा**) मध्यम है (**कामचिन्ता**) विषय-भोग की चिन्ता करना (**अधमा**) जघन्य है (**पर चिन्ता**) दूसरों की चिंता करना (**अधमाधमा**) जघन्य से जघन्य है।

निर्विकल्प- समुत्पन्नं, ज्ञान- मेव सुधारसम्।
विवेक-मञ्जलिं कृत्वा, तत् पिबंति तपस्विनः॥५॥

अर्थ : (**तपस्विनः**) साधुजन (**निर्विकल्पसमुत्पन्नं**) विकल्प से रहित होने पर उत्पन्न होने वाले तत् उस (**ज्ञानम् सुधारसम् एव**) ज्ञानरूपी अमृतरस को ही (**विवेकमञ्जलिं**) विवेकरूपी अञ्जलि को (**कृत्वा**) बनाकर (**पिबन्ति**) पीते हैं।

सदानन्द- मयं- जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्द- कारणम्॥६॥

अर्थ : (**यः**) जो निश्चय से (**जीवं**) जीव को (**सदानन्दमयं**) सदा आनन्द में लीन (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वह पण्डित है (**सः**) वह (**परमानन्दकारणम्**) परम आनन्द का कारण (**निजात्मानं**) अपनी आत्मा का (**सेवते**) सेवन करता है।

नलिन्यांच यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः॥७॥

अर्थ : (**यथा**) जिस प्रकार (**नलिन्यां**) कमलिनी में (**नीरं**) जल (**सर्वदा**) हमेशा (**भिन्नं**) अलग रहता है उसी प्रकार (**अयं आत्मा स्वभावेन**) यह आत्मा स्वभाव से (**देहे**) शरीर में (**निर्मलः**) कर्ममल से स्वच्छ (**तिष्ठति**) रहता है।

द्रव्य- कर्म- मलै- र्मुक्तं, भावकर्म- विवर्जितम्।
नोकर्म रहितं विद्धि, निश्चयेन चिदात्मनः॥८॥

अर्थ : (**निश्चयेन**) निश्चय से (**चिदात्मनः**) इस चेतन आत्मा का स्वरूप (**द्रव्यकर्म-मलैर्मुक्तं**) ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्मरूपी मलों से रहित (**भावकर्म-विवर्जितम्**) रागादि भावकर्मों से रहित और (**नोकर्मरहितं**) शरीरादि नोकर्मों से रहित (**विद्धि**) जानो।

आनंदं ब्रह्मणो रूपं, निजदेहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यंधा इव भास्करम्॥९॥

अर्थ : (**इव जात्यन्धाः**) जैसे जन्म से अन्धे मनुष्य (**भास्करम्**) सूर्य को (**न पश्चन्ति**) नहीं देखते/जानते हैं वैसे (**निजदेहे व्यवस्थितम्**) अपने शरीर में स्थित (**ब्रह्मणः**) आत्मा के (**आनन्दं रूपं**) आनन्दस्वरूप को (**ध्यानहीना न पश्यन्ति**) ध्यान से रहित जीव नहीं देखते/जानते हैं।

तद्धयानं क्रियते भव्यै-, र्मनो येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चामत्कार लक्षणम्॥१०॥

अर्थ : (**भव्यैः**) भव्यजीवों के द्वारा (**तद्धयानं**) उस आनन्द स्वरूप परमात्मा का ध्यान (**क्रियते**) किया जाता है (**येन**) जिससे (**मनः**) मन (**विलीयते**) उसी में विलीन हो जाता है और (**तत्क्षणं**) उसी समय (**चित्-चमत्कार-लक्षणम्**) चैतन्य चमत्कार लक्षण वाला (**शुद्धं**) शुद्ध आत्मतत्त्व (**दृश्यते**) दिखाई देता है/अनुभव में आता है।

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्य शीघ्रं परमात्मतत्त्वं, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव॥११॥

अर्थ : (**ये**) जो (**प्रधानाः मुनयः**) श्रेष्ठ मुनि (**ध्यानलीनाः**) ध्यान में लीन होते हैं (**ते**) वे (**नियमात्**) नियम से (**दुखहीनाः**) दुःखों से रहित (**भवन्ति**) होते हैं तथा (**शीघ्रं**) जल्दी से (**परमात्मा तत्त्वं**) परमात्मतत्त्व को (**सम्प्राप्य**) प्राप्तकर (**एकं क्षणं एव**) एक क्षण में ही (**मोक्षं**) मोक्ष को (**व्रजन्ति**) प्राप्त करते हैं/जाते हैं।

आनंदरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्तसंकल्प विकल्पमुक्तम्।
स्वभावलीना निवसन्ति नित्यं, जानाति योगि स्वयमेवतत्त्वं॥१२॥

अर्थ : (**समस्त-संकल्प-विकल्प-मुक्तम्**) सम्पूर्ण संकल्प-विकल्पों से रहित (**आनन्दरूपं**) आनन्दरूप (**परमात्मतत्त्वं**) परमात्मतत्त्व को (**योगी**) योगी (**नित्यं**) हमेशा (**जानाति**) जानता है इसलिए (**स्वभावलीनाः**) स्वभाव में लीन योगिजन (**स्वयमेव**) स्वयं ही (**तत्त्वम्**) आत्मस्वभाव में (**निवसन्ति**) निवास करते हैं।

चिदानन्द- मयं शुद्धं, निरा- कारं निरामयम्।
अनंत- सुख- संपन्नं, सर्वसंग- विवर्जितम्॥१३॥
लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः, कथितः परमेश्वरैः॥१४॥

अर्थ : (**परमेश्वरैः**) तीर्थङ्कर भगवन्तों के द्वारा (**अयं**) यह आत्मा (**निश्चय**) निश्चयनय की विवक्षा में (**निराकारं**) आकार रहित (**निरामयम्**) व्याधि रहित (**अनन्तसुख-सम्पन्नं**) अनन्तसुख से युक्त (**सर्वसङ्गविवर्जितम्**) सम्पूर्ण अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग परिग्रह से रहित (**चिदानन्दमयं**) आत्मानन्दरूप (**शुद्धं**) समस्त कर्ममल से रहित पवित्र (**लोकमात्रप्रमाणः**) लोक के बराबर परिमाण वाला और (**व्यवहार**) व्यवहारनय की विवक्षा में (**तनूमात्रः**) शरीर के बराबर (**कथितः**) कहा गया है इसमें (**हि**) नियम से (**न संशयः**) संशय नहीं है।

यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरी भूत्वा, निर्विकल्पसमाधिनाः॥१५॥

अर्थ : (**निर्विकल्पसमाधिना**) विकल्प रहित ध्यान के द्वारा यह आत्मा (**यत्क्षणं**) जिस समय (**स्वस्थचित्तः**) स्वस्थ मन होता हुआ (**स्थिरीभूत्वा**) स्थिर होकर (**शुद्धं**) शुद्ध आत्मस्वरूप को (**दृश्यते**) देखता है (**तत्क्षणं**) उसी समय (**गतविभ्रमः**) आत्म विषयक भ्रम से दूर हो जाता है।

स एव परमं ब्रह्म, स एव जिन- पुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः॥१६॥

अर्थ : (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ब्रह्म**) परम ब्रह्म है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**जिनपुङ्गवः**) जिन श्रेष्ठ है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं तत्त्वं**) परम तत्त्वरूप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमः गुरुः**) उत्कृष्ट गुरु है।

स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मनः॥१७॥

अर्थ : (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ज्योतिः**) परमं ज्योति/केवल ज्ञान स्वरूप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं तपः**) इच्छा निरोधरूप उत्कृष्ट तप है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमं ध्यानं**) उत्कृष्ट शुक्लध्यान है (**सः**) वह आत्मा (**एव**) ही (**परमात्मनः**) परमात्मा का स्वरूप है।

स एव सर्वकल्याणं, स एव सुखभाजनम्।
स एव शुद्धचिद्रूपं, स एव परमः शिवः॥१८॥

अर्थ : (**सः एव**) वही आत्मा (**सर्व-कल्याणं**) सब कल्याण स्वरूप (**सः एव**) वही आत्मा (**सुखभाजनम्**) सुख प्राप्त करने वाली (**सः एव शुद्ध-चिद्रूपं**) वही शुद्ध ज्ञानदर्शन चेतनारूप है (**सः एव**) वही आत्मा (**परमं शिवः**) उत्कृष्ट मोक्ष स्वरूप है।

स एव परमानंदः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः॥१९॥

अर्थ : (**सः एव**) वही आत्मा (**परमान्दः**) उत्कृष्ट आनन्दरूप है (**सः एव**) वही आत्मा (**सुखदायकः**) सुखों को देने वाली है (**सः एव**) वही आत्मा (**परमज्ञानं**) उत्कृष्ट केवलज्ञानरूप (**सः एव**) वही आत्मा (**गुणसागरः**) गुणों का समुद्र है।

परमाह्लाद- संपन्नं, रागद्वेष- विवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः॥२०॥

अर्थ : (**सः अहं**) वह मैं (**परमाह्लद-सम्पन्नं**) उत्कृष्ट आनन्द से युक्त (**रागद्वेषविवर्जितम्**) राग-द्वेष से रहित हूँ ऐसा (**यः**) जो (**देहमध्येषु**) कार्मण तैजस औदारिकादि शरीरों में स्थित (**तं**) उस आत्मा को (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वही पण्डित/ज्ञानी है।

आकार- रहितं शुद्धं, स्वस्वरूप व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्ट- गुणोपेतं, निर्विकारं निरञ्जनम्॥२१॥
तत्सद्दर्शनं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्द- चैतन्यं, यो जानाति स पण्डितः॥२२॥

अर्थ : (**शुद्धं**) द्रव्यकर्म, भावकर्म और शरीरादि नोकर्म से रहित शुद्ध (**आकाररहितं**) आकार रहित (**स्व-स्वरूप-व्यवस्थितम्**) अपने स्वरूप में स्थित (**अष्टगुणोपेतं**) अष्टगुणों से युक्त (**निर्विकारं**) विकार रहित (**निरंजनम्**) कर्म कालिमा से रहित निरंजन (**सिद्धं**) सिद्धों को (**महीयसे**) महान्/विशाल (**प्रकाशाय**) केवलज्ञानरूपी प्रकाश के लिए (**यः**) जो (**सहजानन्दचैतन्यं**) सहजानन्दरूप चैतन्य (**निजात्मानं**) अपनी आत्मा को (**तत्सदृशं**) उन सिद्धों समान (**जानाति**) जानता है (**सः पण्डितः**) वह पण्डित है।

पाषाणेषु यथा हेमं, दुग्ध- मध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः॥२३॥

अर्थ : (**यथा**) जैसे (**पाषाणेषु**) पत्थरों में (**हेम**) सोना (**यथा**) जैसे (**दुग्धमध्ये**) दूध में (**घृतम्**) घी (**यथा**) जैसे (**तिलमध्ये**) तिलों में (**तैलं**) तेल (**तथा**) वैसे (**देहमध्ये**) शरीर में (**शिवः**) परमात्मा है।

काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पण्डितः॥२४॥

अर्थ : (**यथा**) जैसे (**काष्ठमध्ये**) लकड़ी में (**वह्निः**) अग्नि (**शक्तिरूपेण**) शक्तिरूप से (**तिष्ठति**) रहती है वैसे ही (**अयं**) यह (**आत्मा**) आत्मा (**शरीरेषु**) शरीरों में (**तिष्ठति**) रहती है ऐसा (**यः**) जी (**जानाति**) जानता है (**स पण्डितः**) वह पण्डित/ज्ञानी है।

पाठ्यक्रम - १२

१२.अ संसार परिभ्रमण का मूल कारण - कषाय

आत्मा से पुद्गल कर्म चिपक जाते हैं और उदय में आने पर अनेक प्रकार से दु:ख देते हैं। सामान्यत: कषाय चार प्रकार की है - (१) क्रोध कषाय, (२) मान कषाय, (२) माया कषाय, (२) लोभ कषाय।

क्रोध कषाय -

अपने और पर के घात आदि करने रूप क्रूर परिणाम करने को क्रोध कहते हैं। गुस्सा, रोष, क्षोभ, आवेश आदि इसी के रूप है। क्रोध जलते हुए अंगारे की तरह है, जिसे दूसरे की तरफ फेंकने पर पहले अपना हाथ ही जल जाता है।

परम तपस्वी द्वीपायन मुनि क्रोध के कारण ही नरक गति गए। तुंकारी (जिसे कोई तू नहीं बोल सकता था) ने अनेक प्रकार के कष्ट भोगे। राजा अरविन्द क्रोध के कारण स्वयं अपनी तलवार के घात से मरण को प्राप्त हो नरक गया।

मान कषाय -

अहंकार, गर्व, घमण्ड करने को मान कषाय कहते हैं। ज्ञान, पूजा, कुल, धन रूपादि से दूसरों को तिरस्कृत करना, नीचा दिखाने का भाव रखना आदि मान के स्वरूप हैं।

मारीचि को अहंकार (मान कषाय) के कारण अनेक दुर्गतियों में भटकना पड़ा। रावण विद्याधर अहंकार के कारण मरकर नरक गया। दुर्गन्धा नाम की कन्या ने अनेक दु:ख भोगे।

माया कषाय -

दूसरों को ठगने के लिए जो कुटिलता या छल-कपट आदि किए जाते हैं, उसे माया कषाय कहते है। मायाचारी व्यक्ति के जप-तप, पूजा-विधान, व्रताचरण आदि सभी धार्मिक अनुष्ठान मोक्षमार्ग में अकार्यकारी/निष्फल है।
मायाचार के कारण की मृदुमति नामक मुनिराज हाथी की पर्याय को प्राप्त हुए। नारद महापुरुष नरकगामी हुआ।

लोभ कषाय-

धन-धान्यादि पर पदार्थों की प्राप्ति के लिए तीव्र आकांक्षा या गृद्धि लोभ कषाय है। लोभ से बड़ा कोई दूसरा अवगुण नहीं है इसे सब पापों का बाप कहा है। तृष्णा या लालच इसी के पर्यायवाची शब्द हैं।

एक और रत्नमयी बैल की चाह रखने वाला सेठ मरकर खजाने में सर्प हुआ फिर मरकर नरक गया। वेश्या ने ब्राह्मण को पाप का बाप कौन है ज्ञात कराया। क्रोधादि चारों कषायों के शक्ति, कार्य, स्थिती तथा सम्यक्त्वादि घातने की अपेक्षा चार-चार भेद कुल सोलह हो जाते हैं।

१. अनन्तानुबन्धी क्रोध   २. अनन्तानुबन्धी मान   ३. अनन्तानुबन्धी माया   ४. अनन्तानुबन्धी लोभ
५. अप्रत्याख्यान क्रोध   ६. अप्रत्याख्यान मान   ७. अप्रत्याख्यान माया   ८. अप्रत्याख्यान लोभ
९. प्रत्याख्यान क्रोध   १०. प्रत्याख्यान मान   ११. प्रत्याख्यान माया   १२. प्रत्याख्यान लोभ
१३. संज्वलन क्रोध   १४. संज्वलन मान   १५. संज्वलन माया   १६. संज्वलन लोभ

उपरोक्त कषायों की शक्तियों के दृष्टान्तों को हम सारणी में समझने का प्रयास करें।

कषाय की अवस्था	क्रोध	मान	माया	लोभ	फल
अनन्तानुबन्धी	शिला रेखा	शैल	बांस की जड़	किरमजी का रंग	नरक
अप्रत्याख्यान	पृथ्वी रेखा	अस्थि	मेढ़े के सींग	अक्ष मल	तिर्यंच
प्रत्याख्यान	धूलि रेखा	बेंत	गोमूत्र	कीचड़	मनुष्य
संज्वलन	जल रेखा	लता	खुरपा	हल्दी	देव

जिंदगी तीन घण्टे की मूवी के समान नहीं है, थोड़ा-सा तीसरा नेत्र खोलिए।

अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्व व चारित्र दोनों का घात करती है, अप्रत्याख्यान कषाय देश संयम का तथा प्रत्याख्यान कषाय सकल संयम का घात करती हैं। संज्वलन कषाय यथाख्यात चारित्र का घात करती है अर्थात् यथाख्यात चारित्र नहीं होने देती।

उपरोक्त सोलह कषायों के अतिरिक्त नौ नो कषाय भी आगम में कही गई हैं। जिनके नाम क्रमशः हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसक वेद हैं।

हँसने को हास्य कहते हैं। मनोहर वस्तुओं में प्रीति होना रति है। अरति इससे विपरीत है। उपकार करने वाले से सम्बन्ध टूट जाने पर जो विकलता होती है वह शोक है। उद्वेग का नाम भय है। ग्लानि को जुगुप्सा कहते हैं। पुरुष में आकांक्षा उत्पन्न होना स्त्रीवेद है। स्त्री की आकांक्षा होना पुरुष वेद है। स्त्री-पुरुष दोनों की अभिलाषा से सहित परिणाम नंपुसक वेद हैं।

जैन तत्त्व - विवेचन

तत्त्व शब्द भाववाची है, जो पदार्थ जिस रूप में है उसके उसी स्वरूप, भाव का होना ''तत्त्व'' कहलाता है जैसे जीव का चेतनपना, ज्ञान दर्शन स्वभाव, जल का शीतलपना आदि।

तत्त्व सात होते हैं - १. जीव तत्त्व, २. अजीव तत्त्व,
३. आस्रव तत्त्व, ४. बंध तत्त्व,
५. संवर तत्त्व, ६. निर्जरा तत्त्व, ७. मोक्ष तत्त्व।

इनमें से जीव का लक्षण चेतना है जो ज्ञानादिक के भेद से अनेक प्रकार की है। जीव से विपरीत लक्षण वाला अजीव है। शुभ और अशुभ कर्मों के आने के द्वार रूप आस्रव है। आत्मा और कर्म के प्रदेशों का परस्पर मिल जाना बन्ध है। आस्रव का रोकना संवर है। कर्मों का एकदेश अलग होना निर्जरा है और सब कर्मो का आत्मा से अलग हो जाना मोक्ष है।

सब फल जीव को मिलता है अत: प्रारम्भ में जीव को लिया गया है। अजीव जीव का उपकारी है यह दिखलाने के लिए जीव के बाद अजीव का कथन किया। आस्रव जीव और अजीव दोनों को विषय करता है अत: इन दोनों के बाद आस्रव का ग्रहण किया। बन्ध आस्रव पूर्वक होता है इसलिए आस्रव के बाद बन्ध का कथन किया। व्रत, गुप्ति आदि धारण करने वाले जीव में बन्ध नहीं होता अत: संवर बन्ध का उल्टा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिए बन्ध के बाद संवर का कथन किया। संवर होने पर निर्जरा होती है इसलिए संवर के बाद निर्जरा कही। मोक्ष अन्त में प्राप्त होता है इसलिए उसका कथन अन्त में किया।

अथवा मोक्ष का प्रकरण होने से मोक्ष का कथन आवश्यक है वह संसार पूर्वक होता है और संसार के प्रधान कारण आस्रव और बन्ध हैं तथा मोक्ष के प्रधान कारण संवर और निर्जरा हैं।

इन सात तत्त्वों को एक उदाहरण के माध्यम से समझ लें। एक यात्री बस, जिसमें ड्राइवर (चलाने वाला) हो गया जीव, बस हो गई अजीव, यात्रियों का बस में प्रवेश करना आस्रव, सीट पर बैठ जाना बन्ध, दरवाजे का बंद हो जाना संवर मंजिल आने पर यात्रियों का क्रम-क्रम से बाहर निकलना निर्जरा, अंत में ड्राइवर सहित विशेष की संज्ञा नहीं है अपितु पूर्ण रूप से कर्मों से रहित दशा का प्राप्त होना ही मोक्ष है।

भजन

अब सौंप दिया इस जीवन को, भगवान तुम्हारे चरणों में।
मैं हूँ शरणागत प्रभु तेरा रहे, ध्यान तुम्हारे चरणों में॥

मेरा निश्चय बस एक यही, मैं तुम चरणों का पुजारी बनूँ।
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का सब प्यार तुम्हारे चरणों में॥
जो जग में रहूँ ऐसे रहूँ ज्यूं जल में कमल का फूल रहे।
है मन वच काया हृदय अर्पण भगवान तुम्हारे चरणों में॥

मैं निर्भय हूँ तुझ चरणों में आनन्द मंगल है जीवन में।
आतम अनुभव की सम्पत्ति प्रभु मिल गई है तुम चरणों में॥
मेरी इच्छा है बस एक प्रभु इक बार तुझे मिल जाऊँ मैं।
इस सेवक की हर रग का हो तार तुम्हारे हाथों में॥

पाठ्यक्रम - १२

१२.ब चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी

दिगम्बर साधु सन्त परम्परा में वर्तमान युग में अनेक तपस्वी, ज्ञानी ध्यानी सन्त हुए। उनमें आचार्य शान्तिसागरजी महाराज एक ऐसे प्रमुख साधु श्रेष्ठ तपस्वी रत्न हुए हैं, जिनकी अगाध विद्वत्ता, कठोर तपश्चर्या, प्रगाढ़ धर्म श्रद्धा, आदर्श चारित्र और अनुपम त्याग ने धर्म की यथार्थ ज्योति प्रज्वलित की। आपने लुप्तप्राय, शिथिलाचारग्रस्त मुनि परम्परा का पुनरुद्धार कर उसे जीवन्त किया, यह निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा आपकी ही कृपा से अनवरत रूप से आज तक प्रवाहमान है।

जन्म – दक्षिण भारत के प्रसिद्ध नगर बेलगाँव जिला चिक्कोड़ी तालुका (तहसील) में भोजग्राम है। भोजग्राम के समीप लगभग चार मील की दूरी पर विद्यमान येलगुल गाँव में नाना के घर आषाढ़ कृष्णा 6, विक्रम संवत् 1929 सन् 1872 बुधवार की रात्रि में शुभ लक्षणों से युक्त बालक सातगौड़ा का जन्म हुआ था। गौड़ा शब्द भूमिपति-पाटिल का द्योतक है। पिता भीमगौड़ा और माता सत्यवती के आप तीसरे पुत्र थे इसी से मानो प्रकृति ने आपको रत्नत्रय और तृतीय रत्न सम्यक् चारित्र का अनुपम आराधक बनाया।

बचपन – सातगौड़ा बचपन से ही वैरागी थे। बच्चों के समान गन्दे खेलों में उनकी कोई रुचि नहीं थी। वे व्यर्थ की बात नहीं करते थे। पूछने पर संक्षेप में उत्तर देते थे। लौकिक आमोद-प्रमोद से सदा दूर रहते थे, धार्मिक उत्सवों में जाते थे। बाल्यकाल से ही वे शान्ति के सागर थे। छोटी-सी उम्र में ही आपके दीक्षा लेने के परिणाम थे परन्तु माता-पिता ने आग्रह किया कि बेटा! जब तक हमारा जीवन है तब तक तुम दीक्षा न लेकर घर में धर्मसाधना करो। इसलिए आप घर में रहे।

व्यवसाय – मुनियों के प्रति उनकी अटूट भक्ति थी। वे अपने कन्धे पर बैठाकर मुनिराज को दूधगंगा तथा वेदगंगा नदियों के संगम के पार ले जाते थे। वे कपड़े की दुकान पर बैठते थे, तो ग्राहक आने पर उसी से कहते थे कि-कपड़ा लेना है तो मन से चुन लो, अपने हाथ से नाप कर फाड़ लो और बही में लिख दो। इस प्रकार उनकी निस्पृहता थी। आप कभी भी अपने खेतों में से पक्षियों को नहीं भगाते थे। बल्कि खेतों के पास पीने का पानी रखकर स्वयं पीठ करके बैठ जाते थे। फिर भी आपके खेतों में सबसे अधिक धान्य होता था। वे कुटुम्ब के झंझटों में नहीं पड़ते थे। उन्होंने माता-पिता की खूब सेवा की और उनका समाधिमरण कराया।

संयम पथ – माता-पिता के स्वर्गस्थ होते ही आप गृह विरत हो गए एवं मुनिश्री देवप्पा स्वामी से 41 वर्ष की आयु में कर्नाटक के उत्तूर ग्राम में ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी सन् 1913 को क्षुल्लक के व्रत अंगीकार किए। आपका नाम शांतिसागर रखा गया। क्षुल्लक अवस्था में आपको कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा था, क्योंकि तब मुनिचर्या शिथिलताओं से परिपूर्ण थी। साधु आहार के लिए उपाध्याय द्वारा पूर्व निश्चित गृह में जाते थे। मार्ग में एक चादर लपेट कर जाते थे आहार के समय उस वस्त्र को अलग कर देते थे आहार के समय घण्टा बजता रहता था जिससे कोई विघ्न न आए।

महाराज ने इस प्रक्रिया को नहीं अपनाया और आगम की आज्ञानुसार चर्या पर निकलना प्रारम्भ किया। गृहस्थों को पड़गाहन की विधि ज्ञात न होने से वे वापस मंदिर में आकर विराज जाते इस प्रकार निराहार 4 दिन व्यतीत होने पर ग्राम में तहलका मच गया तथा ग्राम के प्रमुख पाटील ने कठोर शब्दों में उपाध्याय को कहा-शास्त्रोक्त विधि क्यों नहीं बताते ? क्या साधु को निराहार भूखा मार दोगे! तब उपाध्याय ने आगमोक्त विधि बतलाई एवं पड़गाहन हुआ।

नेमिनाथ भगवान के निर्माण स्थान गिरनार जी की वंदना के पश्चात् इसकी स्थायी स्मृति रूप अपने एलक दीक्षा ग्रहण की एलक रूप में आपने नसलापुर में चातुर्मास किया, वहाँ से चलकर ऐनापुर ग्राम में रहे। उस समय यरनाल में पञ्चकल्याणक महोत्सव (सन् 1920) होने वाला था वहाँ जिनेन्द्र भगवान के दीक्षा कल्याणक दिवस पर आपने अपने गुरुदेव देवेन्द्रकीर्ति जी से मुनिदीक्षा ग्रहण की। समडोली में नेमिसागर जी की ऐलक दीक्षा व वीरसागर जी की मुनि दीक्षा के अवसर पर समस्त संघ ने महाराज को आचार्य पद (सन् 1924) से अलंकृत कर अपने आप को कृतार्थ किया। गजपंथा में चातुर्मास के बाद सन् (1934)

में पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इस अवसर पर उपस्थित धार्मिक संघ ने महाराज को चारित्र चक्रवर्ती पद से अलंकृत किया।

सल्लेखना – जीवन पर्यन्त मुनिचर्या का निर्दोष पालन करते हुए 84 वर्ष की आयु में दृष्टि मंद होने के कारण सल्लेखना की भावना से आचार्य श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरी जी पहुँचे। वहाँ पर उन्होंने 13 जून को विशाल धर्मसभा के मध्य आपने सल्लेखना धारण करने के विचारों को अभिव्यक्त किया। 15 अगस्त को महाराज ने आठ दिन की नियम-सल्लेखना का व्रत लिया जिसमें केवल पानी लेने की छूट रखी। 17 अगस्त को उन्होंने यम सल्लेखना या समाधिमरण की घोषणा की तथा 24 अगस्त को अपना आचार्य पद अपने प्रमुख शिष्य श्री १०८ वीरसागर जी महाराज को प्रदान कर घोषणा पत्र लिखवाकर जयपुर (जहाँ मुनिराज विराजमान थे) पहुँचाया। आचार्य श्री ने ३६ दिन की सल्लेखना में केवल १२ दिन जल ग्रहण किया।

१८ सितम्बर १९५५ को प्रात: ६.५० पर ॐ सिद्धोऽहं का ध्यान करते हुए युगप्रवर्तक आचार्य श्री शान्तिसागर जी ने नश्वर देह का त्याग कर दिया। संयम-पथ पर कदम रखते ही आपके जीवन में अनेक उपसर्ग आए जिन्हें समता पूर्वक सहन करते हुए आपने शान्तिसागर नाम को सार्थक किया।

कुछ उपसर्गों एवं परीषहों की संक्षिप्त झलकियाँ इस प्रकार हैं –

1. क्षुल्लक दशा में कोगनोली के मंदिर में ध्यानस्थ शान्तिसागर जी के शरीर से विशाल विषधर लिपट गया। बहुत देर तक क्रीड़ा करने के पश्चात् शांत भाव से वापस चला गया।

2. मध्याह्न का समय था कोन्नूर की गुफा में महाराज सामायिक कर रहे थे एक उड़ने वाला सर्प आया और महाराज की जंघाओं के बीच छिप गया। वह लगभग तीन घंटे तक उपद्रव करता रहा। लेकिन आचार्य श्री ने अपनी स्थिर मुद्रा को भंग नहीं किया।

3. द्रोणगिरी के पर्वत पर रात्रि में महाराज जब ध्यान करने बैठे तभी एक सिंह आ गया वह प्रात: लगभग 8-9 बजे तक महाराज के सामने ही बैठा रहा। इस प्रकार मुक्तागिरी पर्वत पर भी जब महाराज ध्यान में रहते थे, शेर झरने पर पानी पीने आ जाता था। आचार्यश्री का कहना था कि भय किस बात का? यदि वह पूर्व का बैरी न हो और हमारी ओर से कोई बाधा या आक्रमण न हो तो वह क्यों आक्रमण करेगा? बिना किसी भय के आत्मलीन रहते थे।

4. कोन्नूर के जंगल में महाराज धूप में बैठकर सामायिक कर रहे थे, इतने में एक बड़ा सा कीड़ा उनके पास आया और उनके पुरुष चिह्न से चिपट कर वहाँ का रक्त-चूसने लगता है। खून बहने लगा किन्तु महाराज डेढ़ घण्टे तक अविचल ध्यान में बैठे रहे।

5. जंगल के मंदिर में ध्यान करते वक्त असंख्य चीटियाँ उनके शरीर पर चढ़ गईं एवं देह के कोमल अंग-उपांग को एक-दो घंटे ही नहीं सारी रात खाती रहीं तब वे महापुरुष साम्य भाव से परीषह सहन करते रहे।

6. एक अविवेकी श्रावक जो कपड़े से गर्म दूध का बर्तन पकड़े हुए था उसने वह उबलता दूध महाराज की अंजुलि में डाल दिया। उष्णता की असह्य पीड़ा से महाराज की अंजुलि छूट गई और वे नीचे बैठ गए, किन्तु उनकी मुख मुद्रा पर क्रोध की एक रेखा तक नहीं उभरी।

7. श्रावक की अज्ञानता के कारण नौ दिन तक पर्याप्त जल नहीं मिला। जिसके कारण उनकी छाती पर फफोले पड़ गए पर वे गंभीर और शांत बने रहे। दसवें दिन मात्र जल लेकर ही बैठ गए। दस-बारह वर्ष तक महाराज दूध और चावल ही मात्र लेते रहे। एक दिन किसी श्रावक ने पूछा-महाराज आप और कुछ आहार में क्यों नहीं लेते, तब महाराज बोले-जो आप देते हैं वही मैं लेता हूँ। दूसरे दिन श्रावकों ने दाल-रोटी आदि सामग्री देनी चाही तो भी महाराज ने नहीं ली। पुन: पूछने पर बताया कि आटा, मसाला कब पिसा हुआ था? रात्रि में पिसा हुआ अन्न रात्रि भोजन के दोष का कारण बनता है। अत: पुन: मर्यादित भोजन प्राप्त होने पर ग्रहण करने लगे। आचार्य श्री ने गृहस्थ अवस्था में ही 38 वर्ष की आयु में घी-तेल का आजीवन त्याग कर दिया था, उनके नमक, शक्कर, छाछ आदि का भी त्याग था तथा उन्होंने 35 वर्ष के मुनि जीवन में 27 वर्ष 3 माह 23 दिन (9938) तक उपवास धारण किए।

8. बम्बई सरकार ने हरिजनों के उद्धार के लिए एक हरिजन मंदिर प्रवेश कानून सन् 1947 में बनाया। जिसके बल पर हरिजनों को जबरदस्ती जैन मंदिरों में प्रवेश कराया जाने लगा। जब आचार्य श्री को यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्होंने इसे जैन संस्कृति, जैन धर्म पर आया उपसर्ग जानकर, जब तक यह उपसर्ग दूर नहीं होगा तब तक के लिए अन्नाहार का त्याग कर दिया। आचार्य

श्री की श्रद्धा एवं त्याग के परिणामस्वरूप लगभग तीन वर्ष पश्चात् इस कानून को हटा दिया गया। तभी आचार्य श्री ने 1105 दिन के बाद 16 अगस्त 1951 रक्षाबन्धन के दिन अन्नाहार को ग्रहण किया।
9. दिल्ली में दिगम्बर मुनियों के उन्मुक्त विहार की सरकारी आज्ञा नहीं थी। अत: 10-20 आदमी हमेशा महाराज के विहार के वक्त साथ ही रहते थे। आचार्य महाराज को चतुर्मास के दो माह व्यतीत होने पर जब यह बात ज्ञात हुई तो महाराज ने स्वयं एक फोटोग्राफर को बुलवाया और ज्ञात समय के पूर्व अकेले ही शहर में निकल गए तथा जामामस्जिद, लाल किला, इंडिया गेट, संसद भवन आदि प्रमुख स्थानों पर खड़े होकर उन्होंने अपना फोटो खिचवाया। समाज में अपवाद होने लगा कि महाराज को फ ोटो खिचवाने का शौक है। इस विषय में महाराज से पूछे जाने पर उन्होंने कहा-हमारे शरीर की स्थिति तो जीर्ण अधजले काठ के समान है इसके चित्र की हमें क्या आवश्यकता और वह चित्र हम कहाँ रखेंगे। श्रावकों का कर्त्तव्य है कि इन चित्रों को सम्हाल कर रखें जिससे भविष्य में मुनि विहार की स्वतंत्रता का प्रमाण सिद्ध हो सके। हमारे इस उद्योग से सभी दिगम्बर जैन मुनियों में साहस आएगा, दिगम्बर जैनधर्म की प्रभावना होगी। हमारे ऊपर उपसर्ग भी आए तो हमें कोई चिन्ता नहीं। अच्छे कार्य करते हुए भी यदि अपवाद आए तो उसे सहना मुनि धर्म है न कि उसका प्रतिवाद करना।
१०. आगम ग्रन्थों की सुरक्षा को दृष्टि में रखते हुए आचार्य श्री के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से सिद्धान्त ग्रन्थों को ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कराया गया। अनेकों भव्य आत्माओं ने आचार्य श्री से व्रत-संयम ग्रहण कर अपने जीवन का उद्धार किया।

बड़ों की शिक्षा और एकता

एक दिन की बात है पक्षियों का पूरा परिवार बैठा था। तभी वह देखता है कि यहाँ तो जाल बिछा हुआ है अब बचना मुश्किल है, तब सभी वृद्ध (दादाजी) पक्षी से कहते हैं कि अब इससे बचने का कोई उपाय बताओ। तब वह वृद्ध पक्षी बोला मैंने तुम्हें पहले भी कहा था कि आप लोग अपनी सुरक्षा के लिए कुछ सोचा करो तब आप लोगों ने मेरी बात नहीं मानी और कहते थे कि हम जवान हैं, शक्तिशाली हैं हमारी चिन्ता मत करो। अब बताओ अपनी शक्ति। पक्षी बोले दादाजी हमें माफ कर दो और बचने का कोई उपाय बताओ। दादाजी कहते हैं ठीक है सोचता हूँ। समय निकलता गया रात हो गई पक्षी बोले दादाजी नींद नहीं आ रही है, आपने कुछ सोचा या नहीं, दादाजी बोले शोर-गुल मत करो, मुझे शान्ति से एकान्त में सोचने दो। जल्दी-जल्दी नहीं सोचा जा सकता - जिस प्रकार डॉक्टर मरीज को शान्ति से गम्भीरता के साथ एकान्त में देखता है, ऐसा नहीं करता कि परिवार वाले कहें कि इतना पैसा ले लो और जल्दी-जल्दी देख लो और ठीक कर दो। किन्तु डॉक्टर साहब तो अपने अनुसार शान्ति से देखते हैं, इसलिए आप भी सब मुझे सोचने दो।

थोड़ी देर बात दादाजी कहते हैं कि एक युक्ति सोची है। उसका प्रयोग सबको मिलकर करना है वैसे शरीर तो पर के आश्रित है फिर भी बुद्धि का प्रयोग करोगे तब बच सकते हो। क्योंकि वह शिकारी प्रात: निश्चित रूप से आएगा और वह सबको जिन्दा झोली में भरकर ले जाएगा। अब आप पचासों को क्या करना है यह मैं बतलाता हूँ। वह शिकारी किसी को भी पहले जाल से निकाल कर झोली में रख सकता है उस समय आपको मृत जैसा आचरण करना है जिससे वह समझेगा कि यह तो मरा हुआ है वह झोली में न रखकर नीचे रख देगा, वह एक-एक करके सबको निकालेगा आप लोग मन में गिनते रहना जैसे ही वह अन्तिम साथी को निकाले और पचास की गिनती बोले सब एक साथ उड़ जाना। प्रात: काल शिकारी आता है और एक साथ पचास पक्षियों को देख प्रसन्न हो जाता है, वह एक को जाल से निकालता है और देखता है कि यह तो मर गया वह नीचे रख देता है, एक-एक करके सभी को देखता है सभी को मृत समझ नीचे रख देता है, अन्तिम पक्षी को जैसे ही रखता है वैसे ही वे दादाजी के सिखाए अनुसार एक साथ उड़ जाते हैं। इस प्रकार दादाजी की बुद्धि एवं सब पक्षियों की एकता के कारण सबके प्राण बच गए। अत: वृद्धों के अनुभव एवं गुरुओं के वचन कार्यकारी होते हैं।

शिक्षा- अपने नायक की आज्ञा मानना चाहिए एवं आपस में एकता रखनी चाहिए।

सिरितित्थयर भत्ति (आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी)

थोस्सामि हं जिणवरे, तित्थ-यरे केवली अणंतजिणे।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ॥ 1॥
अर्थ : (**जिणवरे**) जो कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने में श्रेष्ठ (**केवली**) केवलज्ञान से युक्त (**अणंतजिणे**) अनन्तसंसार को जीतने वाले (**णर-पवर-लोय महिए**) मनुष्यों में श्रेष्ठ चक्रवर्ती आदि लोगों से पूजित (**विहुय-रय-मले**) ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज और मोहनीय-अन्तरायरूपी मल को दूर करने वाले तथा (**महप्पण्णे**) महाप्राज्ञ-उत्कृष्ट ज्ञानवान् ऐसे (**तित्थ-यरे**) तीर्थङ्करों की (**हं थोस्सामि**) मैं स्तुति करता हूँ।

लोयस्सुज्जोय-यरे, धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से, चउवीसं चेव केवलिणो ॥ 2 ॥
अर्थ : (**लोयस्सुज्जोय-यरे**) केवलज्ञान के द्वारा लोक को प्रकाशित करने वाले (**धम्मं तित्थंकरे**) धर्मरूपी तीर्थ के कर्ता (**जिणे**) जिनेन्द्र प्रभु की मैं (**वंदे**) वन्दना करता हूँ (**च**) और (**अरहंते**) अरहंत पद को प्राप्त (**केवलिणो**) केवलज्ञानी (**चउवीसं**) चौबीस तीर्थङ्करों का (**एव**) निश्चित ही (**कित्तिस्से**) कीर्तन / गुण स्तवन करता हूँ।

उसह-मजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥ 3॥
अर्थ : मैं कुंदकुंदाचार्य (**उसहं**) ऋषभदेव (**अजियं**) अजितनाथ (**संभवं**) संभवनाथ (**अभिणंदणं**) अभिनंदननाथ (**च**) और (**सुमइं**) सुमतिनाथ की (**वंदे**) वंदना करता हूँ (**च**) और (**पउमप्पहं**) पद्मप्रभ देव (**सुपासं**) सुपार्श्वनाथ (**च**) और (**चंदप्पहं**) चन्द्रप्रभ देव (**जिणं**) जिनेन्द्र की (**वंदे**) वंदना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फ यंतं, सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥ 4॥
अर्थ : (**च**) और मैं (**सुविहिं**) सुविधि/सौभाग्यशाली (**पुप्फ यंतं**) पुष्पदंत (**सीयल**) शीतलनाथ (**सेयं**) श्रेयांसनाथ (**च**) और (**वासुपुज्जं**) वासुपूज्य (**विमलं**) विमलनाथ (**अणंतं**) अनंतनाथ (**धम्मं**) धर्मनाथ (**च**) और (**संतिं**) शान्तिनाथ (**भयवं**) भगवान की (**वंदामि**) वंदना करता हूँ।

कुंथुं च जिणवरिंदं, अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं (वंदे अरिट्ठणेमिं), तह पासं वड्ढमाणं च॥ 5॥
अर्थ : मैं (**कुंथुं**) कुंथुनाथ (**अरं**) अरनाथ (**मल्लिं**) मल्लिनाथ (**सुव्वयं**) मुनिसुव्रतनाथ (**णमिं**) नमिनाथ (**अरिट्ठ-णेमिं**) अरिष्ट नेमिनाथ (**तह**) तथा (**पासं**) पार्श्वनाथ (**च**) और (**वड्ढमाणं**) वर्धमानस्वामी (**जिणवरिंद**) जिनवरों में प्रधान तीर्थङ्करों को (**वंदे**) नमस्कार करता हूँ।

एवं मए अभित्थुआ, विहुयरय-मला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थ-यरा में पसीयंतु॥ 6॥
अर्थ : (**एवं**) इस प्रकार (**मए**) मेरे द्वारा (**अभित्थुआ**) स्तुति किए गए (**विहुय-रय-मला**) ज्ञानावरण-दर्शनावरणरूपी रज व मोहनीय-अन्तराय-रूपी मल को दूर करने वाले (**पहीण-जर-मरणा**) बुढ़ापा और मृत्यु से रहित जिणवरा गणधर आदि जिनवरों में प्रधान ऐसे (**चउवीसं**) चौबीस (**तित्थ-यरा**) तीर्थङ्कर भगवान (**मे**) मेरे ऊपर (**पसीयंतु**) प्रसन्न हों।

कित्तिय वंदिय महिया, एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं, दिंतु समाहिं च मे बोहिं ॥ 7॥
अर्थ : इस प्रकार मेरे (**कित्तिय**) वचन से कीर्तन किए गए (**वंदिय**) मन से वंदना किए गए तथा (**महिया**) काय से पूजे गए (**एदे**) ये (**लोगोत्तमा**) लोक में उत्तम (**जिणा**) जिनवर अरहंत और (**सिद्धा**) सिद्धि को प्राप्त सिद्ध (मे) मेरे लिए (**आरोग्ग-णाणलाहं**) निरोगता और ज्ञान लाभ (**समाहिं**) समाधि (**च**) और (**बोहिं**) बोधि/रत्नत्रय को (**दिंतु**) देवें।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पयासंता।
सायरमिव गम्भीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ 8॥
अर्थ : जो (**चंदेहिं**) चन्द्रमा से (**णिम्मलयरा**) अधिक निर्मल/निर्मलताकारी (**आइच्चेहिं**) सूर्य से (**अहिय-पयासंता**) अधिक प्रभासम्पन्न/प्रकाशमान (**सायरं इव**) सागर के समान (**गंभीरा**) गम्भीर तथा (**सिद्धा**) सिद्ध पद को प्राप्त ऐसे चौबीस भगवान (**मम**) मुझे (**सिद्धिं**) सिद्धि/मोक्ष को (**दिसंतु**) देवें।

कर्म एक थर्मामीटर शरीर में बुखार होता है या थर्मामीटर में? यद्यपि बुखार तो शरीर में होता है, थर्मामीटर तो बुखार को बताने का माध्यम है, निमित्त है कि १०३ डिग्री बुखार है या १०४ डिग्री। ठीक इसी प्रकार संक्लेश परिणाम तो आत्मा के होते हैं। उन परिणामों को कर्म रूपी थर्मामीटर से नापा जाता है। जैसे परिणामों में तीव्र संक्लेशता की गर्मी होती है तो कर्म का पारा ऊपर चढ़ जाता है और विशुद्ध परिणाम होने से कर्म का पारा नीचे उतर जाता है। अगर स्वस्थ हो जाता है तो पारा समाप्त हो जाता है।

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

आदिम तीर्थंकर प्रभो, आदिनाथ मुनिनाथ।
आधि व्याधि अघ मद मिटे, तुम पद में मम माथ।।
शरण चरण हैं आपके, तारण तरण जहाज।
भवदधि तट तक ले चलो, करुणाकर जिनराज।।१।।
जित-इन्द्रिय जित-मद बने, जित-भवविजित-कषाय।
अजित-नाथ को नित नमूँ, अर्जित दुरित पलाय।।
कोंपल पल-पल को पले, वन में ऋतु-पति आय।
पुलकित मम जीवन-लता, मन में जिन पद पाय।।२।।
तुम-पद-पंकज से प्रभो, झर-झर-झरी पराग।
जब तक शिव-सुख ना मिले, पीऊँ षट्पद जाग।।
भव-भव, भव-वन भ्रमित हो, भ्रमता-भ्रमता आज।
संभव-जिन भव शिव मिले, पूर्ण हुआ मम काज।।३।।
विषयों को विष लख तजूँ, बनकर विषयातीत।
विषय बना ऋषि ईश को, गाऊँ उनका गीत।।
गुण धारे पर मद नहीं, मृदुतम हो नवनीत।
अभिनन्दन जिन! नित नमूँ, मुनि बन मैं भवभीत।।४।।
सुमितनाथ प्रभु सुमति हो, मम मति है अति मंद।
बोध कली खुल-खिल उठे, महक उठे मकरन्द।।
तुम जिन मेघ मयूर मैं, गरजो बरसो नाथ।
चिर प्रतीक्षित हूँ खड़ा, ऊपर करके माथ।।५।।
शुभ्र-सरल तुम, बाल तव, कुटिल कृष्ण-तम नाग।
तव चिति चित्रित ज्ञेय से, किन्तु न उसमें दाग।।
विराग पद्मप्रभ आपके, दोनों पाद-सराग।
रागी मम मन जा वहीं, पीता तभी पराग।।६।।
अबंध भाते काटके, वसु विध विधिका बंध।
सुपार्श्व प्रभु निज प्रभु-पना, पा पाये आनन्द।।
बांध-बांध विधि-बंध मैं, अन्ध बना मति-मन्द।
ऐसा बल दो अंध को, बंधन तोडूँ द्वन्द्व।।७।।
चन्द्र कलंकित, किन्तु हो, चन्द्र प्रभ अकलंक।
वह तो शंकित केतु से, शंकर तुम निःशंक।।
रंक बना हूँ मम अतः, मेटो मनका पंक।
जाप जपूँ जिन-नाम का, बैठ सदा पर्यंक।।८।।
सुविधि! सुविधि के पूर हो, विधि से हो अति दूर।
मम मन से मत दूर हो, विनती हो मंजूर।।
बाल मात्र भी ज्ञान ना, मुझमें मैं मुनि-बाल।
वबाल भव का मम मिटे, प्रभु-पद में मम भाल।।९।।
शीतल चन्दन है नहीं, शीतल हिम ना नीर।
शीतल जिन! तव मत रहा, शीतल हरता पीर।।
सुचिर काल से मैं रहा, मोह-नींद से सुप्त।
मुझे जगा कर, कर कृपा, प्रभो करो परितृप्त।।१०।।
अनेकान्त की कान्ति से, हटा तिमिर एकान्त।
नितान्त हर्षित कर दिया, क्लान्त विश्व को शान्त।।
निःश्रेयस सुख-धाम हो, हे जिनवर श्रेयांस।
तव थुति अविरल मैं करूँ, जब लौं घट में श्वास।।११।।
वसुविध मंगल द्रव्य ले, जिन पूजो सागार।
पाप-घटे फलतः फले, पावन पुण्य अपार।।
बिना द्रव्य शुचि भाव से, जिन पूजों मुनि लोग।
बिन निज शुभ उपयोग के, शुद्ध न हो उपयोग।।१२।।

मन्त्र की शक्ति

स्वामी विवेकानन्द अमेरिका में विद्वानों की एक सभा में मन्त्र की शक्ति के बारे में प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने जैसे ही मन्त्रों के द्वारा घटित होने वाले परिवर्तनों के बारे में बताना शुरू किया कि एक मशहूर विद्वान व्यक्ति खड़ा होकर स्वामीजी की बात का प्रतिवाद करने लगा। स्वामीजी आप हमें मूर्ख बना रहे हैं। शब्दों के संयोजन से ही मन्त्र बनते हैं और शब्दों से बड़े परिवर्तन तो दूर की बात है, मन्त्र से पेड़ का एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है। यह सुनकर विवेकानन्द ने उस व्यक्ति को डाँटते हुए कहा- ''तुम तो गधे हो।'' यह कहना था कि वह विद्वान व्यक्ति गुस्से में उबल पड़ा, उसकी आँखें लाल हो गईं व गुस्से के कारण काँपने लगा।

विवेकानन्द ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा- क्यों महाशय क्या हुआ ? मैंने तो आपको केवल 'गधा' कहा था। केवल एक साधारण शब्द से आप में इतना परिवर्तन कैसे घटित हो गया। आप काँप क्यों रहे हैं? जब साधारण शब्द के उच्चारण से आप में इतना परिवर्तन हो गया, फिर मन्त्र तो शब्द के शक्तिशाली संयोजन होते हैं, उनसे कुछ भी घटित हो सकता है। तब विद्वान को समझ में आया।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए।

१. उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल का स्वरूप, प्रमाण एवं व्यवस्था बताइए ?
२. सुषमा-दुषमा काल में वृद्धि का क्रम, शरीर की विशेषताएं बताएं ?
३. दुषमा - दुषमा काल की विशेषताएं बताइए? ४. चार प्रकार के आहार कौन-कौन से हैं ?
५. रात्रि में भोजन करने से क्या हानि है ? ६. जल गालन क्यों अनिवार्य है ?
७. आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी का संक्षिप्त परिचय लिखें ?
८. राजकुमार के मित्रों ने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था ? ९. द्रव्य किसे कहते हैं उसके भेद लिखें ?
१०. द्रव्यों के प्रदेश एवं संख्या कितनी हैं ? ११. छह लेश्याओं का उदाहरण क्या है ?
१२. श्रुत पंचमी पर्व क्यों और कब मनाया जाता है ? १३. रक्षा बंधन पर्व की संक्षिप्त कथा बताएं ?
१४. दीपावली में पूजा कब, कैसे करनी चाहिए ? १५. कषायों के २५ भेद कौन-कौन से हैं ?
१६. माया कषाय किसे कहते हैं ? १७. सात तत्त्वों को जीवादि क्रम में क्यों रखा गया ?
१८. आ. शांति सागर जी ने सल्लेखना कब कहां धारण की थी ?

ब. श्लोक एवं छंदों को पूर्ण करें -

१. श्री सर्वज्ञ .... विनासिनी। २. सोच .... नहीं।
३. अक्षय है .... विनाशी है। ४. उत्तमा .... धमा-धमा ।
५. कित्तिय .... में बोधि। ६. शीतल .... परितृप्त ।

स. अर्थ लिखिए।

श्लोक नं. ८ पृ. ७७
श्लोक नं. ९ पृ. ८७
श्लोक नं. ६ पृ. ९४

आप मिनटों का ध्यान रखें
घण्टे अपना ध्यान स्वयं रख लेंगे।

द. सही उत्तर चुनकर सामने लिखें -

६००० धनुष, एक पूर्व कोटी, ६ घण्टे, २४ घण्टे, रेल पटरी, वृक्ष, स्नेह भाव, क्रोधी, कीचड़, हल्दी

१. उबला पानी .... ६. संज्वलन लोभ ....
२. धर्म द्रव्य .... ७. धर्म द्रव्य ....
३. सुषमा-सुषमा .... ८. दुषमा-सुषमा..........................
४. कृष्ण लेश्या .... ९. शुक्ल लेश्या ....
५. अधर्म द्रव्य .... १०. अप्रत्याख्यान क्रोध..........................

स. अन्यत्र ग्रंथ से खोजें ज्ञान, बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. भोग भूमि कैसी होती है वहां का वातावरण कैसा होता है ?
२. हुण्डा अवसर्पिणी किसे कहते हैं उनमें घटने वाली दस अद्‌भुत बातें कौन-कौन सी हैं ?
३. पंचमकाल का दुष्प्रभाव बताइए ? ४. सृष्टि का प्रलय एवं उत्थान कैसे होता है ?
५. मूर्त-अमूर्त किसे कहे हैं कौन-कौन से द्रव्य मूर्त व अमूर्त हैं ?
६. क्रोधी व्यक्ति की कैसी अवस्था होती है ? ७. द्वीपायन मुनि की कथा कैसी है ?
८. मृदुमति मुनिराज की कथा कैसी है ? ९. क्रोधादि कषायों का संस्कारकाल कितना है ?
१०. हास्यादि नो कषाय का बंध किन कारणों से होता है ? ११. द्रव्य, तत्त्व, पदार्थ एवं अस्तिकाय में क्या अंतर है ?

पाठ्यक्रम - १३

१३.अ जैन विश्व संरचना - लोक-अलोक

लोकाकाश का आकार

जीवादि छह द्रव्य जहाँ पर रहते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं। इसका आकार दोनों पैर फैलाकर, कमर पर हाथ रखे हुए, पंक्तिबद्ध खड़े हुए, सात पुरुषों के समान है। यह लोकाकाश सभी ओर से क्रमशः घनोदधि वातवलय, घन वातवलय व अंत में तनुवातवलय से घिरा है।

लोकाकाश के तीन भेद - ऊर्ध्वलोक , मध्यलोक व अधोलोक हैं। लोकाकाश के बाहर अनन्त आकाश है जिसे अलोकाकाश कहते हैं, अलोकाकाश में एकमात्र आकाश द्रव्य है। ऊर्ध्वलोक मृदंग के आकार का, अधोलोक वेत्रासन के आकार का एवं मध्यलोक झालर के आकार का है।

तीन लोक की लंबाई-चौड़ाई- लोकाकाश के बीचोबीच एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी और चौदह राजू ऊँची लोक नाड़ी है। लोक नाड़ी के बाहर का स्थान निष्कुट क्षेत्र कहलाता है जिसमें मात्र स्थावर जीव ही रहते हैं। ऊर्ध्वलोक में स्वर्ग है जिसमें देव गण निवास करते हैं। अधोलोक में नरक हैं जिसमें नारकी रहते हैं एवं मध्यलोक में सिद्ध परमेष्ठी को छोड़कर शेष चार परमेष्ठी एवं अन्य जीव (देव, मनुष्य, तिर्यंच गति के) रहते हैं।
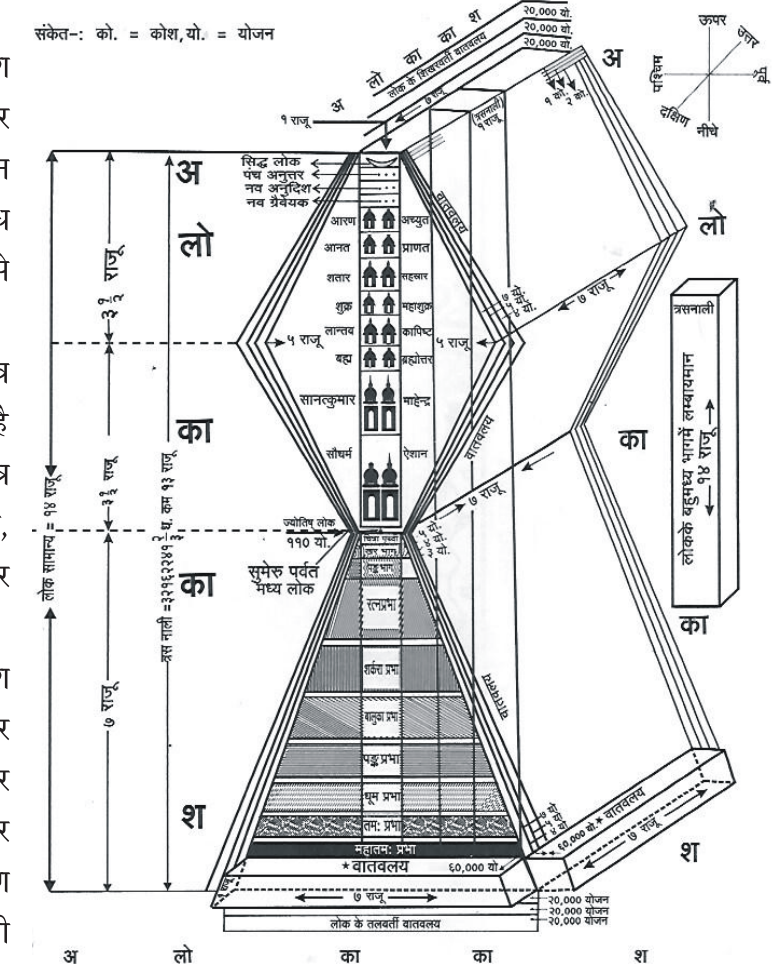
मध्यलोक के द्वीप समुद्र

मध्यलोक के बीचोबीच थाली के आकार का गोल जम्बूद्वीप है। जिसे घेरे हुए चूड़ी के समान गोलाकार असंख्यात समुद्र व द्वीप हैं। जम्बूद्वीप के बाद लवण समुद्र उसके बाद धातकीखण्ड, फिर कालोदधि समुद्र, फिर पुष्कर द्वीप है। इस जम्बूद्वीप, धातकीखंड व आधे पुष्कर द्वीप को मिलाने पर ढाई द्वीप हो जाते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के द्वारा पुष्करद्वीप दो भागों में बँट जाता है। मनुष्य गति के जीव इस पर्वत के भीतर ही रहते हैं बाहर नहीं अतः मानुषोत्तर पर्वत के आगे पुष्करार्ध द्वीप को आदि करके चूड़ी के आकार वाले एक दूसरे को घेरे असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। सबसे अन्त में स्वयंभूरमण द्वीप व समुद्र है। इस द्वीप एवं समुद्र में ही उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यञ्च जीव पाए जाते हैं। मध्यलोक के मध्य में नाभि सदृश अत्यन्त ऊँचा, हरे-भरे वृक्ष, उपवन, चैत्यालयों से युक्त सुमेरु पर्वत है। इस पर्वत के ऊपरी भाग में पाण्डुक वन है जिसमें पाण्डुक शिला है उस पर ही इन्द्र द्वारा तीर्थंकर बालक का जन्माभिषेक किया जाता है।

मध्यलोक के बीचोबीच स्थित जम्बूद्वीप के क्षेत्र विभाजन का सामान्य वर्णन करते हैं :-

इस जम्बूद्वीप का विभाजन पूर्व - पश्चिम दिशा में फैले हुए छह पर्वतों के द्वारा होता है, इनके द्वारा जम्बूद्वीप सात क्षेत्रों में विभाजित हो जाता है। छह पर्वतों के नाम क्रमश: हिमवान, महा हिमवान, निषध, नील, रुक्मि और शिखरिणी पर्वत है तथा सात क्षेत्रों के नाम क्रमश: भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हिरण्यवत् और ऐरावत क्षेत्र है।

मध्य लोक में नदियाँ

प्रत्येंक पर्वत पर क्रमश: पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केशरी, महापुण्डरीक व पुण्डरीक नाम वाले एक-एक तालाब हैं। इन तालाबों में से क्रमश: ३, २, २, २, २ व ३ अर्थात् कुल चौदह नदियाँ निकलती हैं। गङ्गा, रोहित, हरित, सीता, नारी, सुवर्णकूला और रक्ता ये सात नदियाँ पूर्व लवण समुद्र में मिलती हैं। सिंधु, रोहितास्या, हरिकांता, सीतोदा, नरकांता, रूप्यकूला और रक्तोदा ये सात नदियाँ पश्चिम लवण समुद्र में मिलती हैं।

ढाई द्वीप में क्षेत्र और पर्वत

ढाई द्वीप में आर्य व म्लेच्छ खण्ड

भरत क्षेत्र में बहने वाली गंगा, सिन्धु नदियों के द्वारा भरत क्षेत्र एक आर्यखण्ड एवं पाँच म्लेच्छ खण्ड ऐसे छह भागों - भागों में बँट जाता है। इसी प्रकार अपनी - अपनी नदियों के द्वारा ऐरावत क्षेत्र एवं विदेह क्षेत्र संबंधी बत्तीस नगरियों में भी एक-एक आर्यखण्ड एवं पाँच-पाँच म्लेच्छखण्ड होते हैं। अत: जम्बूद्वीप में कुल चौंतीस (३४) आर्यखण्ड एवं एक सौ सत्तर (१७०) म्लेच्छखण्ड होते हैं।

धातकीखण्ड एवं पुष्करार्ध द्वीप में दो-दो भरत क्षेत्र, दो-दो ऐरावत क्षेत्र, दो-दो विदेह क्षेत्र (कुल चौंसठ - चौंसठ नगरियाँ) होते हैं। अत: कुल ढाई द्वीप में एक सौ सत्तर (१७०) आर्यखण्ड एवं आठ सौ पचास (८५०) म्लेच्छखण्ड होते हैं। आर्यखण्ड में ही तीर्थंकरों का जन्म होता है अत: सभी एक सौ सत्तर आर्यखण्डों में यदि एक साथ तीर्थंकर होवे तो अधिक से अधिक एक सौ सत्तर तीर्थंकर एक साथ हो सकते हैं।

वातवलय का स्वरूप -

जैसा छाल वृक्ष को चारों ओर से घेरे रहती है, वैसे ही घनोदधि आदि वातवलय चारों ओर से लोक को घेरे हुए हैं। सर्वप्रथम गोमूत्र के वर्ण वाला घनोदधि वातवलय है जिसमें सघन रूप से जल और वायु भरी है। उसके पश्चात् मूंग के वर्ण वाला घनवात वलय हैं जिसमें सघन वायु भरी हैं। तीसरा अंतिम तनुवात वलय अनेक वर्ण वाला है जिसमें विरल वायु का अवस्थान हैं।

मूर्ख मनुष्य भय से पहले ही डर जाता है, कायर भय के समय ही डरता है और साहसी भय के बाद डरता है।
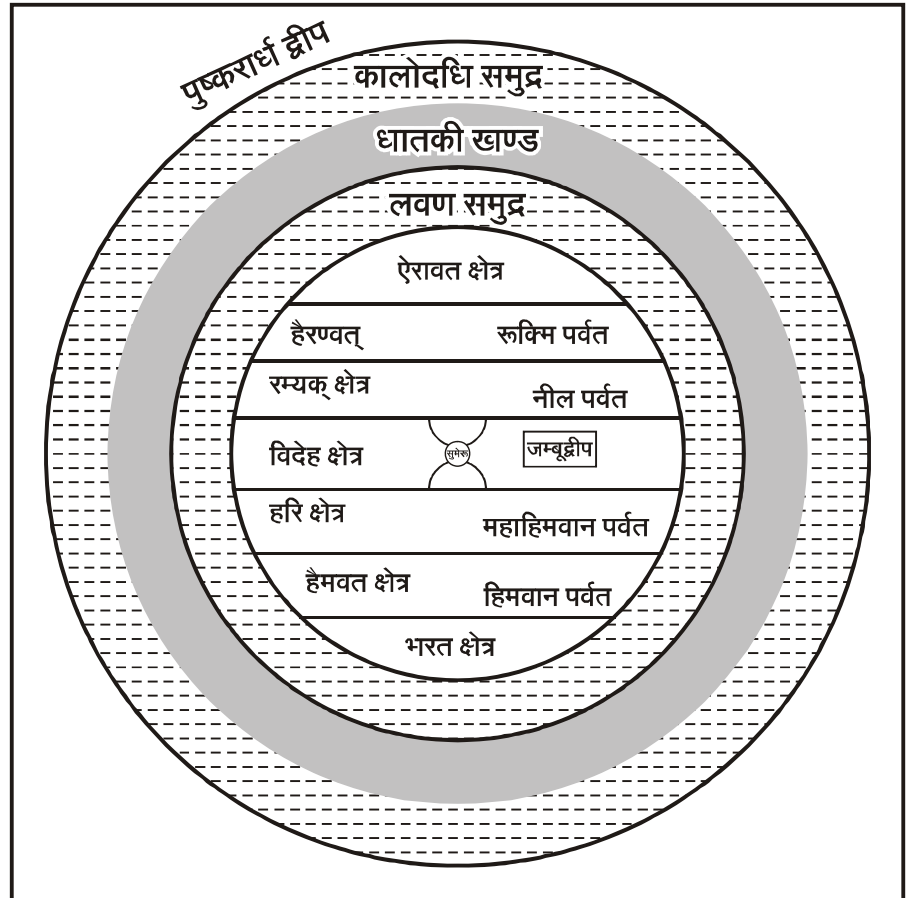
पाठ्यक्रम - १३

१३.ब महाकवि आचार्य ज्ञानसागर जी

जैन साहित्य में चौदहवीं शताब्दी के बाद संस्कृत महाकाव्य की विभिन्न शृंखला को जोड़ने वाले, त्याग, तपस्या, निरभिमानता, उदारता, साहित्य सृजन आदि गुणों की साक्षात् मूर्ति आचार्यश्री ज्ञानसागर जी महाराज हुए हैं।

राजस्थान प्रान्त के सीकर जिलान्तर्गत राणोली ग्राम में सेठ सुखदेवजी रहते थे। उनके पुत्र श्री चतुर्भुज का विवाह धृतवरी देवी से हुआ। चतुर्भुज जी को छह पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई, जिनमें से पाँच जीवित रहे। सबसे बड़े पुत्र का नाम छगनलाल रखा गया। इसके पश्चात् धृतवरी देवी ने संवत् 1981 में जुड़वा पुत्रों को जन्म दिया किन्तु जन्म के कुछ ही समय बाद जीवन के लक्षण न मिलने से दोनों शिशुओं को मृत जान लिया गया। परन्तु शीघ्र ही एक शिशु में जीवन के लक्षण प्राप्त हुए पर दूसरा बालक मृत्यु को प्राप्त हुआ। जीवित बालक का नाम भूरामल रखा गया। भूरामल के तीन अनुज और हुए जिनका नाम क्रमशः गंगा प्रसाद, गौरीलाल और देवीदत्त था।

बाल्यकाल से ही भूरामल जी की अध्ययन के प्रति रुचि थी। सर्वप्रथम कुचामन के पं. श्री जिनेश्वरदास जी ने राणोली ग्राम में ही भूरामल को धार्मिक एवं लौकिक शिक्षा दी। भूरामल जी की 10 वर्ष की अवस्था में ही उनके पिता जी की मृत्यु हो गई, जिससे उनकी पारिवारिक अर्थव्यवस्था बिगड़ गई। आजीविका हेतु बड़े भाई गया पहुँच गए।

गाँव में शिक्षा की व्यवस्था न होने के बाद में भूरामल जी भी गया नगर पहुँच गये। कुछ दिन पश्चात् स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह में भाग लेने के लिए गया आये। उनको देखकर भूरामल जी के मन में भी वाराणसी में विद्या ग्रहण करने की इच्छा बलवती हो आई। तब वे बड़े भाई से आज्ञा लेकर 15 वर्ष की उम्र में वाराणसी चले गए। वाराणसी में स्याद्वाद महाविद्यालय से उन्होंने संस्कृत साहित्य एवं जैनदर्शन की उच्चशिक्षा ग्रहण की। इसी बीच क्वीन्स कॉलेज काशी से उन्होंने शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण की। वहाँ पर संस्कृत अध्यापक छात्रों की इच्छा होने पर भी उन्हें जैनाचार्य प्रणीत ग्रन्थों की शिक्षा नहीं देते थे। दृढ़ निश्चय के अनुसार येन केन प्रकारेण अध्यापकों से जैन ग्रन्थों की शिक्षा प्राप्त की, उस समय पं. उमराव सिंह जी महाविद्यालय में धर्मशास्त्र के अध्यापक थे। इन्हीं से भूरामल जी को जैन ग्रन्थों के अध्ययन की प्रेरणा मिली। वे अपने अध्ययन काल में भी स्वावलम्बन पर ही विश्वास करते थे तथा अपने परिश्रम से उपार्जित धन से ही विद्यालय के भोजनालय में भोजन किया करते थे।

अधिक अध्ययन की भावना से आप अजैन विद्वानों के पास पहुँचे और जैन ग्रन्थों के अध्ययन करने हेतु अपना निवेदन किया-तब एक अजैन विद्वान् व्यंग्य करके बोले-जैनों के यहाँ कहाँ है ऐसा साहित्य जो मैं तुम्हें पढ़ाऊँ। ये शब्द सुनकर उनके हृदय को बहुत टीस पहुँची उन्होंने मन से संकल्प लिया कि अध्ययन के उपरान्त ऐसे साहित्य का निर्माण करूँगा जिसे देखकर जैनेत्तर विद्वान् दाँतों तले अंगुली दबा लेंगे। कुछ दिन पश्चात् जब जयोदय महाकाव्य की प्रति जैनेत्तर विद्वानों को प्राप्त हुई तो विद्वानों ने कहा - कालिदास के साहित्य से टक्कर लेने वाला यह जैन साहित्य है। आपने विवाह को जैन साहित्य के निर्माण और उनके प्रचार में बहुत बड़ी बाधा मानकर मात्र अठारह वर्ष की उम्र में ही आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर ली थी। आपने संस्कृत, हिन्दी में अनेक मौलिक रचनाएं की एवं कई ग्रन्थों की हिन्दी टीका तथा पद्यानुवाद भी किए। जो निम्नलिखित हैं -

संस्कृत साहित्य - 1. जयोदय महाकाव्य, (2 भाग), 2. वीरोदय महाकाव्य, 3. सुदर्शनोदय महाकाव्य, 4. भद्रोदय महाकाव्य, 5. दयोदय चम्पू काव्य, 6. सम्यक्त्वसार शतक, 7. मुनिमनोरञ्जनाशीति, 8. भक्ति संग्रह, 9. हित सम्पादक।

हिन्दी साहित्य - 10. भाग्य परीक्षा, 11. ऋषभ चरित्र, 12. गुण सुन्दर वृत्तान्त, 13. पवित्र मानव जीवन, 14. कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन, 15. सचित्त विवेचन, 16. सचित्त विचार, 17. स्वामी कुन्दकुन्द और सनातन जैन धर्म, 18. सरल जैन विवाह विधि, 19. इतिहास के पन्ने, 20. ऋषि कैसा होता है?

टीका ग्रन्थ - 21. प्रवचनसार, 22. समयसार, 23. तत्त्वार्थसूत्र, 24. मानवधर्म।

पद्यानुवाद - 25. विवेकोदय, 26. देवागम स्तोत्र, 27. नियमसार, 28. अष्टपाहुड एवं 29. शांतिनाथ पूजन विधान।

इस प्रकार उपरोक्त अनेक ग्रन्थों के निर्माण एवं पठन-पाठन करते हुए भूरामल जी ने अपनी युवावस्था व्यतीत की। आत्मकल्याण की प्रबल भावना होने पर सन् 1947 ई (संवत् 2004) में आचार्य वीरसागरजी महाराज की आज्ञा से अजमेर नगर में ब्रह्मचर्य प्रतिमा अंगीकार की। धीरे-धीरे ब्र. भूरामल जी के मन में वैराग्य भाव और भी बढ़ा, फलस्वरूप विक्रम संवत् 2012 सन् 1955 ई. में मनसुरपुर (रेनवाल) में उन्होंने वीरसागरजी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा प्राप्त कर ज्ञानभूषण नाम प्राप्त किया उसके बाद कुछ समय और एलक अवस्था में व्यतीत कर सन् 1959 में आचार्य शिवसागरजी महाराज से मुनि दीक्षा स्वीकार कर उनके प्रथम शिष्य मुनि ज्ञानसागर बनने का सौभाग्य प्राप्त किया।

आप संघ में रहकर साधु, आर्यिका एवं श्रावक-श्राविकाओं को अध्ययन कराते रहे। कुछ समय पश्चात् धर्म प्रचार हेतु आचार्य संघ से पृथक् अनेक स्थानों पर आपने विहार किया एवं अनेक आत्म कल्याण के इच्छुक भव्य जनों को संयम-व्रत प्रदान किया। श्री विवेकसागरजी के मुनिदीक्षा ग्रहण के अवसर पर जैनसमाज ने 7 फरवरी सन् 1969 ई. को मुनि ज्ञानसागरजी को आचार्य पद से सुशोभित किया।

महाकवि ज्ञानसागरजी महाराज का शरीर क्षीणता को प्राप्त हो रहा था तब उन्होंने 22 नवम्बर 1972 ई. (मार्गशीर्ष कृ.2 वि.सं. 2020) को अपना पद सुयोग्य शिष्य मुनि विद्यासागर जी को सौंप दिया एवं स्वयं पूर्णरूपेण वैराग्य, तपश्चरण एवं सल्लेखना में सन्नद्ध हो गए। इस समय उन्होंने जल और रस पर ही शरीर धारण करना शुरू कर दिया शेष खाद्य सामग्री का सदा के लिए परित्याग कर दिया। 28 मई सन् 1973 को उन्होंने सभी प्रकार के आहार का परित्याग कर दिया। अन्त में ज्येष्ठ कृष्णा 15 विक्रम संवत् 2023 शुक्रवार तदनुसार दिनांक 1 जून सन् 1973 ई. को दिन में 10 बजकर 50 मिनट पर नसीराबाद में महाकवि ज्ञानसागर जी महाराज समाधिस्थ हो गए।

श्री ज्ञानसागर जी के प्रमुख शिष्य में मुनि श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री विवेकसागर जी, मुनि श्री विजयसागर जी, एलक श्री सन्मतिसागर जी, क्षुल्लक श्री स्वरूपानन्दजी, क्षुल्लक सुखसागर जी, क्षुल्लक संभवसागर जी, ब्र. जमनालाल जी एवं ब्र. लक्ष्मीनारायण जी थे।

जैन जाति नहीं, धर्म है

सामान्यत: लोग 'जैन' को जातिवाचक संज्ञा समझ लेते हैं और वर्तमान में मात्र जैन लोगों को ही जैन धर्म का अनुयायी मान लेते हैं। किन्तु वस्तुत: 'जैन' एक धर्म है, जाति नहीं।

इसका जाति से कोई संबंध नहीं है। किसी भी जाति का मानव जैनधर्म का पालन कर सकता है। किन्तु अब तक के इतिहास में कभी किसी को जबरन जैन धर्मानुयायी नहीं बनाया गया और न इस तरह के विश्वास को पनपने दिया गया। यहॉ जाति से तात्पर्य मात्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र से नहीं है, बल्कि मनुष्यों के अलावा पशुओं से भी है। तीर्थंकरों के समवशरण (उपदेश सभा) में सभी जाति के मनुष्य तो आते ही थे, साथ-साथ पशु-पक्षियों के बैठने की भी व्यवस्था थी। जैन धर्म के सभी तीर्थंकर क्षत्रिय जाति के थे। भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य गौतम तथा अन्य दस गणधर ब्राह्मण जाति के थे। गौतम गणधर ने भी दिगम्बर मुनि दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्त किया था।

जैनधर्म और सत्य का रास्ता

हम जानते हैं, कि पूरी दुनिया में वे धर्म ज्यादा लुभावने तथा जनता के प्रिय बन जाते हैं जो चमत्कार तथा सस्ते साधनों से मुक्ति की सिद्धि बतलाते हैं। किन्तु जैनधर्म असत्य के आधार पर प्रचार-प्रसार या संख्या बढ़ाने के पक्ष में कभी नही रहा। उसका विश्वास है वस्तु का जो स्वभाव है, हम उसे वैसा ही बतलाएँगे, अब कोई इस बात को माने तो उसका स्वागत है, न माने तो न माने। सिर्फ संख्या बढ़ाने के लिए हम सत्य का रास्ता नहीं छोड़ सकते। इसलिए जिन वीरों को आत्म पुरुषार्थ के सिद्धान्त पर विश्वास हुआ , उन्होंने ही जैन धर्म अपनाया। चमत्कार प्रिय लोगों को यह मार्ग कठिन दिखाई दिया। शायद यही कारण भी है कि जैन अनुयायियों की संख्या कम है।

पाठ्यक्रम - १३

१३.स महापुण्यशाली - ६३ शलाका पुरुष

शलाका पुरुषों की संख्या प्रत्येक काल में ६३ ही होती है। जिनमें २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण होते हैं। तीर्थंकरों के माता-पिता ४८, ९ नारद ११ रुद्र, २४ कामदेव तथा १४ कुलकर मिलाने से १६९ महा पुरुष होते हैं।

तीर्थंकर :- तीर्थंकर नामक विशेष पुण्य प्रकृति का जिनके उदय होता है, वे तीर्थंकर कहलाते हैं।

चक्रवर्ती :- एक आर्यखण्ड तथा पाँच म्लेच्छखण्ड इस प्रकार छह खण्डों का स्वामी ३२ हजार मुकुटबद्ध राजाओं का तेजस्वी अधिपति चक्रवर्ती हुआ करता है। वह १४ रत्न एवं ९ निधियों का मालिक होता है। चक्रवर्ती की ९६ हजार रानियाँ होती हैं। प्रतिदिन स्वादिष्ट भोजन बनाकर देने वाले ३६५ रसोइया होते हैं। चक्रवर्ती के वैभव स्वरूप- तीन करोड़ गौशालाएँ, एक करोड़ हल, एक करोड़ स्वर्ण थाल, ८४ लाख हाथी, इतने ही रथ, १८ करोड घोड़े, ८४ करोड योद्धा एवं ४८ करोड़ पदाति होते हैं।

१४ रत्न एवं ९ निधियाँ इस प्रकार है:-

१ चक्र रत्न	२. छत्र रत्न	३. खड्ग रत्न	४. दण्ड रत्न	५. काकिणी रत्न
६. मणि रत्न	७. चर्म रत्न	८. सेनापति रत्न	९. गृहपति रत्न	१०. गज रत्न
११. अश्व रत्न	१२. पुरोहित रत्न	१३. स्थपित रत्न	१४. युवति रत्न	

निधियाँ

१- काल	२- महाकाल	३- पाण्डु
४- मानव	५- शंख	६- पद्म
७- नैसर्प	८. पिंगल	९- नाना रत्न

बलदेव :- वे नारायण के भ्राता होते हैं और उनसे प्रगाढ़ स्नेह रखते हैं। ये अतुल पराक्रम के धनी, अतिशय रूपवान और यशस्वी होते हैं। इनकी ८ हजार रानियाँ होती हैं। तथा ये पाँच रत्नों के स्वामी होते हैं।

वासुदेव (नारायण) - प्रतिवासुदेव (प्रतिनारायण) - ये दोनों समकालीन होते हैं। पूर्वभव में निदान सहित तपश्चरण कर स्वर्ग में देव होते हैं और वहाँ से च्युत होकर वासुदेव-प्रतिवासुदेव बनते हैं। दोनों अर्धचक्रवर्ती होते हैं। इनकी सोलह-सोलह हजार रानियाँ होती हैं। प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव) प्राय: विद्याधर होते हैं और नारायण (वासुदेव) भूमिगोचरी, इनका आपस में जन्मजात बैर होता है। इनमें किसी निमित्त से युद्ध होता है, जिसमें नारायण के द्वारा प्रतिनारायण मारा जाता है। ये दोनों निकट भव्य होते हैं, परन्तु अनुबद्ध बैर के कारण नरक में जाते हैं।

नारद :- ये नारायण -प्रतिनारायण के काल में होते हैं, ये अत्यन्त कौतूहली और कलहप्रिय होते हैं। नारायण और प्रतिनारायण को आपस में लड़ाने में इनकी प्रमुख भूमिका रहती है।

ये ब्रह्मचारी होते हैं और इन्हें राजर्षि का सम्मान प्राप्त होता है। ये सारे राजभवन में बेरोकटोक आते-जाते रहते हैं, ये निकट भव्य होते है, परन्तु कलहप्रियता के कारण नरक में जाते हैं।

रुद्र :- ये सभी अधर्मपूर्ण व्यापार में संलग्न होकर रौद्रकर्म किया करते हैं, इसलिए रुद्र कहलाते हैं। ये कुमारावस्था में जिनदीक्षा धारण कर कठोर तपस्या करते हैं। जिसके फलस्वरूप इन्हें अंगों का ज्ञान हो जाता है, किन्तु दशवें विद्यानुवाद पूर्व का अध्ययन करते समय विषयों के आधीन होकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं। संयम और सम्यक्त्व से पतित होने के कारण सभी रुद्र नरकगामी ही होते है। तिलोयपण्णत्ति के अनुसार रुद्रों एवं नारदों की उत्पत्ति हुण्डावसर्पिणी काल में ही होती है।

कामदेव :- प्रत्येक कालचक्र के दुषमा-सुषमा काल में चौबीस कामदेव होते हैं। ये सभी अद्वितीय रूप और लावण्य के धनी होते हैं।

चौबीस तीर्थंकर स्तवन

कराल काला व्याल सम, कुटिल चाल का काल।
जीत लिया तुमने उसे, हो गए आप निहाल।।
मोह अमल वश सबल बन, निर्बल मैं भयवान्।
विमलनाथ तुम अमल हो, संबल दो भगवान्।। 13।।
अनन्त गुण पा कर दिया, अनन्त भव का अन्त।
अनन्त सार्थक नाम तव, अनन्त जिन जयवन्त।।
अनन्त सुख पाने सदा, भव से हो भयवन्त।
अन्तिम क्षण तक मैं तुम्हें, स्मरूँ स्मरें सब सन्त।। 14।।
दया धर्म वर धर्म है, अदया-भाव अधर्म।
अधर्म तज प्रभु धर्म ने, समझाया पुनि धर्म।।
धर्मनाथ को नित नमूँ, सधे शीघ्र शिव शर्म।
धर्म-मर्म को लख सकूँ, मिटे मलिन मम कर्म।। 15।।
शान्तिनाथ हो शान्त कर, सातासाता सान्त।
केवल, केवल-ज्योतिमय, क्लान्ति मिटि सब ध्वान्त।।
सकल ज्ञान से सकल को, जान रहे जगदीश।
विकल रहे जड़ देह से, विमल नमूँ नत शीश।। 16।।
ध्यान-अग्नि से नष्ट कर, प्रथम पाप परिताप।
कुन्थुनाथ पुरुषार्थ से, बने न अपने - आप ।।
ऐसी मुझ पै हो कृपा, मम मन मुझ में आय।
जिस विध पल में लवण है जल में घुल-मिल जाय।। 17।।
नाम-मात्र भी नहिं रखों, नाम-काम से काम।
ललाम आतम में करो, विराम आठों याम।।
नाम धरो 'अर' नाम तव, अतः स्मरूँ अविराम।
अनाम बन शिवधाम में, काम बनूँ कृत-काम।। 18।।

मोहमल्ल को मार कर, मल्लि नाथ जिनदेव।
अक्षय बनकर पा लिया, अक्षय सुख स्वयमेव।।
बाल ब्रह्मचारी विभो, बाल समान विराग।
किसी वस्तु से राग ना, मम तव पद से राग।। 19।।
मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ।।
यही भावना मम रही, मुनिव्रत पाल यथार्थ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ, पावन पाय पदार्थ।। 20।।
अनेकान्त का दास हो, अनेकान्त की सेव।
करूँ गहूँ मैं शीघ्र से, अनेक गुण स्वयमेव।।
अनाथ मैं जगनाथ हो, नमीनाथ दो साथ।
तव पद में दिन-रात हूँ, हाथ जोड़ नत-माथ।। 21।।
नील गगन में अधर हो, शोभित निज में लीन।
नील कमल आसीन हो, नीलम से अति नील।।
शील-झील में तैरते, नेमि जिनेश सलील।
शील डोर मुझ बांध दो, डोर करो मत ढील।। 22।।
खास दास की आस बस, श्वास-श्वास पर वास।
पार्श्व करो मत दास को, उदासता का दास।।
ना तो सुर-सुख चाहता, शिव-सुख की ना चाह।
तव थुति-सरवर में सदा, होवे मम अवगाह।। 23।।
नीर-निधि- से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भव सागर का तीर।।
अधीर हूँ मुझे धीर दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर-चीर कर चिर लखूँ, अन्तर की तस्वीर।। 24।।

विदेश में जैन साहित्य

लंदन स्थित एक पुस्तकालय में लगभग १५०० हस्तलिखित भारतीय ग्रन्थ हैं और अधिकतर ग्रन्थ प्राकृत-संस्कृत भाषाओं में हैं जैनधर्म से संबंधित हैं। जर्मनी में बर्लिन स्थित एक पुस्तकालय में १२ हजार भारतीय हस्तलिखित ग्रन्थ हैं, जिनमें बड़ी संख्या जैन ग्रन्थों की है। अमेरिका के वाशिंगटन और बौस्टन नगर में २० हजार पुस्तकें प्राकृत-संस्कृत भाषाओं में हैं, जो भारत से गई हुई हैं। फ्राँस में १२ हजार पुस्तकें प्राकृत-संस्कृत भाषा की हैं। जिनमें जैन ग्रन्थों की अच्छी संख्या है। रूस में २२ हजार पुस्तकें प्राकृत-संस्कृत की है। इसमें जैन ग्रन्थों की भी बडी संख्या है। इटली में ६० हजार पुस्तकें प्राकृत-संस्कृत की हैं। इनमें जैन पुस्तकें बड़ी संख्या में हैं। नेपाल के काठमांडू में जैन प्राकृत और संस्कृत ग्रन्थ विद्यमान हैं तथा शोध-खोज की अपेक्षा रखते हैं। इसी प्रकार चीन, तिब्बत, बर्मा, इण्डोनेशिया, जापान, मंगोलिया, कोरिया, तुर्की, ईरान, असीरिया, काबुल आदि के पुस्तकालयों में भी भारतीय ग्रन्थ बड़ी संख्या में मौजूद हैं।

विक्रम की पाँचवीं शताब्दी में चीनी यात्री फाह्यान भारत में आया था और यहाँ से ताड़पत्रों पर लिखी हुई १५२० पुस्तकें चीन ले गया था।

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा, मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-, वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम् ॥1॥
यः संस्तुतः सकल- वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-, दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः ।
स्तोत्रै-र्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥2॥

अर्थ : (**भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणाम्**) भक्त देवों के झुके हुए मुकुटों के रत्नों की कान्ति को (**उद्योतकम्**) बढ़ाने वाले (**दलितपाप-तमोवितानम्**) पापरूपी अन्धकार के विस्तार को नष्ट करने वाले (**च**) और (**युगादौ**) युग के प्रारम्भ में (**भवजले**) संसाररूप जल में (**पतताम्**) गिरते हुए (**जनानाम्**) प्राणियों को (**आलम्बनम्**) सहारा देने वाले (**जिनपाद-युगम्**) जिनेन्द्र भगवान् के दोनों चरणों को (**सम्यक्**) भली भाँति (**प्रणम्य**) नमस्कार करके (**यः**) जो (**सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधात्**) समस्त द्वादशाङ्ग के यथार्थ ज्ञान से (**उद्भूतबुद्धिपटुभिः**) उत्पन्न हुई बुद्धि से चतुर (**सुरलोक-नाथैः**) इन्द्रों के द्वारा (**जगत्-त्रितय-चित्त-हरैः**) तीन लोक के प्राणियों के चित्त को हरने वाले (**च**) और (**उदारैः**) उत्कृष्ट (**स्तोत्रैः**) स्तोत्रों से (**संस्तुतः**) स्तुत किए गए थे (**तम्**) उन (**प्रथमम्**) प्रथम (**जिनेन्द्रम्**) जिनेन्द्र आदिनाथ की (**अहम् अपि**) मैं भी (**किल**) निश्चय से (**स्तोष्ये**) स्तुति करूँगा।

बुद्ध्या विनाऽपि विबुधार्चित-पाद-पीठ, स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहम् ।
बालं विहाय जल-संस्थित-मिन्दु-बिम्ब-, मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥3॥

अर्थ : (**विबुधार्चित-पादपीठ!**) देवों के द्वारा पूजित है पादपीठ-पैरों के रखने की चौकी/सिंहासन जिनकी ऐसे हे जिनेश! (**विगतत्रपः**) लज्जा रहित (**अहम्**) मैं (**बुद्ध्या विना अपि**) बुद्धि के बिना भी (**स्तोतुम्**) स्तुति करने के लिए (**समुद्यतमतिः**) तत्पर हो रहा हूँ (**यतः**) क्योंकि (**बालम्**) बालक-मूर्ख को (**विहाय**) छोड़कर (**अन्यः**) दूसरा (**कः जनः**) कौन मनुष्य (**जलसंस्थितम्**) जल में प्रतिबिम्बित (**इन्दुबिम्बम्**) चन्द्रमण्डल को (**सहसा**) बिना विचारे (**ग्रहीतुम्**) पकड़ने की (**इच्छति**) इच्छा करता है अर्थात् कोई भी नहीं।

वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र शशांक-कान्तान्, कस्ते क्षमः सुरगुरु -प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं, को वा तरीतुमल-मम्बु-निधिं भुजाभ्याम् ॥4॥

अर्थ : (**गुण समुद्र!**) हे गुणों के सागर! (**बुद्ध्या**) बुद्धि के द्वारा (**सुरगुरु-प्रतिमः अपि**) बृहस्पति के समान भी (**कः**) कौन पुरुष (**ते**) आपके (**शशाङ्क-कान्तान्**) चन्द्रमा के समान सुन्दर (**गुणान्**) गुणों को (**वक्तुम्**) कहने के लिए (**क्षमः**) समर्थ है? अर्थात् कोई नहीं (**वा**) अथवा (**कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्रचक्रम्**) प्रलयकाल की वायु के द्वारा प्रचण्ड है मगरमच्छों का समूह जिसमें ऐसे (**अम्बुनिधिम्**) समुद्र को (**भुजाभ्याम्**) भुजाओं के द्वारा (**तरीतुम्**) तैरने के लिए/पार करने के लिए (**कः अलम्**) कौन समर्थ है ? अर्थात् कोई नहीं।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !, कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः ।
प्रीत्यात्म-वीर्य मविचार्य मृगी मृगेन्द्रं , नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥5॥

अर्थ : (**मुनीश!**) हे मुनियों के ईश! (**तथापि**) तो भी (**सः अहम्**) वह मैं अल्पज्ञ (**विगतशक्तिः अपि**) शक्तिरहित होता हुआ भी (**भक्तिवशात्**) भक्ति के वश से (**तव**) आपकी (**स्तवम्**) स्तुति को (**कर्तुम्**) करने के लिए (**प्रवृत्तः**) तैयार हुआ हूँ (**यथा**) जैसे (**मृगी**) हिरणी (**आत्मवीर्यम् अविचार्य**) अपनी शक्ति का विचार न कर केवल (**प्रीत्या**) स्नेह के द्वारा (**निजशिशोः**) अपने बच्चे की (**परिपालनार्थम्**) रक्षा के लिए (**किम्**) क्या (**मृगेन्द्रम् न अभ्येति**) सिंह के सामने नहीं जाती ? अर्थात् जाती है।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम , त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम् ।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति , तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु ॥6॥

अर्थ : (**अल्पश्रुतम्**) अल्पज्ञानी अतएव (**श्रुतवताम्**) विद्वानों की (**परिहासधाम**) हँसी के स्थानरूप (**माम्**) मुझको (**त्वद्भक्तिः एव**) आपकी भक्ति ही (**बलात्**) बलपूर्वक (**मुखरी-कुरुते**) वाचाल कर रही है (**किल**) निश्चय से (**मधौ**) बसन्त ऋतु में

(**कोकिलः**) कोयल (**यत्**) जो (**मधुरम् विरौति**) मीठे शब्द करती है (**तत्**) वह (**आम्रचारु-कलिका-निकरैक-हेतु**) आम की सुन्दर मँजरी के समूह के कारण ही करती है।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं, पापं क्षणात् क्षय-मुपैति-शरीर-भाजाम् ।
आक्रान्त-लोक-मलिनील-मशेषमाशु, सूर्यांशु-भिन्नमिव-शार्वर-मन्धकारम् ॥7॥

अर्थ : (**त्वत्संस्तवेन**) आपकी स्तुति से (**शरीरभाजाम्**) प्राणियों के (**भवसन्तति-सन्निबद्धम्**) अनेक भवों के बँधे हुए (**पापम्**) पाप कर्म, (**आक्रान्तलोकम्**) सम्पूर्ण लोक में व्याप्त (**अलिनीलम्**) भौंरे के समान काले (**सूर्यांशुभिन्नम्**) सूर्य की किरणों से खण्डित (**शार्वरम्**) रात्रि सम्बन्धी (**अशेषम्**) समस्त (**अन्धकारम् इव**) अन्धकार की तरह (**क्षणात्**) क्षण भर में (**आशु**) शीघ्र ही (**क्षयम्**) विनाश को (**उपैति**) प्राप्त हो जाते हैं।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-, मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु, मुक्ताफल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ॥8॥

अर्थ : (**नाथ**) हे स्वामिन्! (**इति मत्वा**) ऐसा मानकर (**मया तनुधिया अपि**) मुझ मन्द बुद्धि के द्वारा भी (**तव**) आपका (**इदम्**) यह (**संस्तवनम्**) स्तवन (**आरभ्यते**) प्रारम्भ किया जाता है जो कि (**तव प्रभावात्**) आपके प्रभाव से (**सताम्**) सज्जनों के (**चेतः**) चित्त को (**हरिष्यति**) हरेगा (**ननु**) निश्चय से (**उदबिन्दुः**) जल की बूँद (**नलिनीदलेषु**) कमलिनी के पत्तों पर (**मुक्ताफलद्युतिम् उपैति**) मोती-जैसी कान्ति को प्राप्त होती है।

कुलभूषण-देशभूषण

इनकी शिक्षा प्राप्त करने की उम्र हो चुकी है ऐसा विचार कर माता-पिता ने दोनों बालक देशभूषण और कुलभूषण को गुरुकुल में भेज दिया। दोनों बालकों ने मन लगाकर गुरु से नीतिवाक्य, अस्त्र-शस्त्र चालन एवं अन्य विषयों पर शिक्षा प्राप्त की तथा शिक्षा पूर्ण होने पर वापस घर जाने का निवेदन किया। गुरु से आशीर्वाद ले घर सूचना पहुँचा दी गई कि अमुक दिन हम आएँगे।

सारे नगर को दुल्हन की भाँति सजाया गया। अपने-अपने घरों के समक्ष महिलाये आरती लेकर खड़ी थी। आखिर क्यों न हो बहुत दिनों बाद भावी राजा अर्थात् राजकुमार नगर में पधार रहे हैं। इधर रथ जैसे ही मुख्य द्वार से प्रवेश किया कि दोनों भाइयों की नज़र सामने की गैलरी (छत) पर खड़ी एक अत्यन्त सुन्दर कन्या पर पड़ी। जिसे देखते ही दोनों क्षण मात्र में मोहित हो गए और उस कन्या से मैं ही विवाह करूंगा ऐसा सोचने लगे। उधर आगे बढ़ता हुआ रथ जैसे ही महल के द्वार पर पहुँचा तो उन्होंने देखा कि वही कन्या उनके माता-पिता के साथ हाथ में आरती लेकर खड़ी है। रथ से उतरते ही माँ ने उस कन्या का परिचय देते हुए कहा-बेटा ये तुम्हारी बहन है जिसका जन्म तुम्हारे गुरुकुल जाने के पश्चात् हुआ। बहुत दिनों से इसकी आँखें अपने युगल भाइयों को देखने के लिए तरस रहीं थीं। आज तृप्त हुईं।

यह बात सुनते ही दोनों को आत्मग्लानि होने लगी। वे सोचने लगे धिक्कार है इस विषयवासना को जिसे योग्य-अयोग्य का विचार नहीं रहता। हमारी सगी बहन के विषय में हमने ऐसा विचार किया। तत्क्षण उन्हें संसार, शरीर, भोगों से वैराग्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने वन में जाकर मुनि दीक्षा अंगीकार की एवं घोर तप करते हुए कुंथलगिरि सिद्धक्षेत्र से मुक्ति का लाभ प्राप्त किया।

पके हुए फल की तीन पहचान होती हैं, एक तो वह नरम हो जाता है, दूसरा वह मीठा हो जाता है, तीसरा उसका रंग बदल जाता है। जिसमें ये लक्षण न हों, वह कभी पका हुआ नहीं हो सकता है। इसी तरह से परिपक्व व्यक्ति की भी तीन पहचान होती हैं, पहली उसमें नम्रता होती है, दूसरी उसकी वाणी में मिठास होती है, तीसरी उसके चहरे पर आत्म विश्वास का रंग होता है।

पाठ्यक्रम - १४

१४.अ जैन जीव विज्ञान - नारकी जीव

नरक गति में रहने वाले जीव नारकी कहलाते हैं। वे आपस में कभी भी प्रीति - स्नेह को प्राप्त नहीं होते अत: इन्हें नारत भी कहते हैं। नारकियों का शरीर टेढ़ा-मेढ़ा (हुण्डक संस्थान वाला), अत्यन्त डरावना, धुएँ के रंग वाला, अत्यन्त दुर्गंध युक्त, वैक्रियक किन्तु खून-पीव-मांस से युक्त होता है। सभी नारकी नपुंसक वेद वाले होते हैं। नीचे-नीचे के नारकी सदा अशुभ से अशुभ लेश्या वाले, परिणाम वाले, देह वाले और विक्रिया वाले होते हैं। प्रथम पृथ्वी के नारकियों में शरीर की जघन्य ऊँचाई तीन हाथ प्रमाण होती है वही नीचे की ओर बढ़ते-बढ़ते अंतिम सप्तम पृथ्वी में ५०० धनुष प्रमाण हो जाती है अर्थात् नारकियों की उत्कृष्ट ऊँचाई ५०० धनुष प्रमाण होती है।

नारकी अधोलोक में एक के नीचे एक जो सात पृथ्वियाँ हैं, उनमें बने हुए बिलों में रहते हैं।

० नरकों में उत्पत्ति के निम्न कारण हैं :- बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह का भाव, हिंसादि क्रूर कार्यों में निरंतर प्रवृत्ति, परधन हरण की वृत्ति, इंद्रिय विषयों में तीव्र आसक्ति, मरण के समय क्रूर परिणाम, सप्त व्यसनों में लिप्तता, कुत्ते, बिल्ली, मुर्गी आदि क्रूर प्राणियों का पालन, शील और व्रतों से रहितता, जीर्णोद्धार, जिनपूजा, प्रतिष्ठा और तीर्थ यात्रा आदि के निमित्त समर्पित धन का उपभोग, अत्यधिक हिंसा वाले व्यापार जैसे चमड़ा, शराब, कीट नाशक, विष, शस्त्र आदि हिंसक वस्तुओं का व्यापार।

रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों के नाम, पटल, बिल एवं नारकियों की जघन्य, उत्कृष्ट आयु सारणी से समझते हैं।

पृथ्वी	पटल	बिल	जघन्य आयु	उत्कृष्ट
रत्न प्रभा	१३	३० लाख	१० हजार वर्ष	१ सागर
शर्करा प्रभा	११	२५ लाख	१ सागर	३ सागर
बालुका प्रभा	९	१५ लाख	३ सागर	७ सागर
पंक प्रभा	७	१० लाख	७ सागर	१० सागर
धूम प्रभा	५	३ लाख	१० सागर	१७ सागर
तम प्रभा	३	५ कम १लाख	१७ सागर	२२ सागर
महातम प्रभा	१	५ मात्र	२२ सागर	३३ सागर
कुल सात पृथ्वी	४९	८४ लाख	१० हजार ज.	३३ सागर उ.

० नारकियों को भूख इतनी अधिक लगती है कि तीन लोक का अनाज खा लें तो भी न मिटे और प्यास इतनी अधिक लगती है कि सारे समुद्र का पानी पी लें तो भी तृप्त न हो किन्तु वहाँ खाने के लिए अन्न का एक दाना व पीने के लिए पानी की एक बूँद भी नहीं मिलती।

० जिस प्रकार तलवार के प्रहार से भिन्न हुआ, कुएँ का जल फिर से मिल जाता है उसी प्रकार बहुत सारे शस्त्र से छेदा गया नारकियों का शरीर भी फिर से मिल जाता है।

० नारकियों को चार प्रकार के दु:ख होते हैं शारीरिक दु:ख, क्षेत्रकृत दु:ख, असुरदेवो कृत दु:ख एवं मानसिक दु:ख।

० असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च मरकर प्रथम नरक तक जा सकता है उसके आगे नहीं उसी प्रकार सरीसृप द्वितीय नरक तक, पक्षी तीसरे नरक तक, सर्प चौथे नरक तक, सिंह पाँचवें नरक तक, महिला छटवें नरक तक एवं पुरुष सातवें नरक तक जा सकता है। स्वयंभूरमण समुद्र में रहने वाला सम्मूर्च्छनज महामत्स्य एवं तंदुल मत्स्य भी सप्तम नरक तक जा सकता है।

० प्रथम पृथ्वी से क्रमश: ८, ७, ६, ५, ४, ३ एवं २ बार तक एक जीव लगातार नरकों में जन्म ले सकता है। इतना विशेष है कि नारकी मरण कर पुन: नारकी नहीं बनता, अत: बीच में मनुष्य अथवा तिर्यञ्च में जन्म धारण करता है।

पाठ्यक्रम - १४

१४.ब जैन जीव विज्ञान - तिर्यञ्च जीव

जो मन वचन काय की कुटिलता/वक्रता को प्राप्त हैं। प्राय: तिरस्कार को प्राप्त होते हैं वे जीव तिर्यञ्च कहलाते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर चार इन्द्रिय तक के जीव नियम से तिर्यञ्च जीव कहे जाते हैं।

एकेन्द्रिय जीव

० सामान्य पृथ्वी, पृथ्वी काय, पृथ्वी कायिक एवं पृथ्वी जीव

1. सामान्य पृथ्वी - जिसे किसी जीव ने अभी तक अपना शरीर नहीं बनाया ऐसा पृथ्वी पिंड, सामान्य पृथ्वी कहा जाता है। स्वर्गों में स्थित उपपाद शय्या सामान्य पृथ्वी कही गई हैं।

2. पृथ्वी काय - जिसमें से पृथ्वी जीव निकल गया हो, ऐसा पृथ्वी पिंड पृथ्वी काय है यह भी अचेतन है जैसे गरम किया गया नमक, ईंट।

3. पृथ्वी कायिक - पृथ्वी जीव सहित पृथ्वी पिंड को पृथ्वी कायिक जीव कहते हैं यह सचेतन है। जैसे खदान में पड़ा एवं आसपास दिखने वाला पत्थर।

4. पृथ्वी जीव - पृथ्वी नाम कर्म से सहित, विग्रह गति में स्थित जीव पृथ्वी जीव है। विग्रह गति का अर्थ - नवीन शरीर प्राप्त करने के लिए होने वाली जीव की मोड़े वाली गति। इसी प्रकार से जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी इन भेदों को लगा लेना चाहिए।

० पृथ्वी कायिक जीव के शरीर का आकार मसूर के समान होता है। इसकी अधिकतम आयु बाईस हजार वर्ष एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० जल कायिक जीव के शरीर का आकार मोती के समान (जल की बिन्दू) तथा उत्कृष्ट आयु ७००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० वायु कायिक जीव के शरीर का आकार पताका (ध्वजा) के समान तथा उत्कृष्ट आयु ३००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० अग्निकायिक जीव का आकार सुई की नोंक के समान तथा उत्कृष्ट आयु तीन दिन एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

० वनपस्पति कायिक जीव का आकार अनेक प्रकार का है तथा उत्कृष्ट आयु १०,००० वर्ष, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।

आरती

तीर्थ बिहारी गुरुराज आज थारी आरती उतारूँ।
वर्षों से सूना पड़ा नाथ आज मन मंदिर पधारो।।
आत्म पिपासु ये चातक आए,
अध्यातम अमृत पाने को आए,
वर्षा दो अमृत आज
कि आज थारी आरती उतारूँ ।........१
कब से ये प्यासी हैं अखियाँ हमारी
वीतराग मूरत ये प्यारी न्यारी
सपना कब होगा साकार
कि आज थारी आरती उतारूँ। २
विद्या गुरु की है महिमा न्यारी
उनके आशीष का अतिशय भारी,
भक्ति का पाऊँ उपहार
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.......३
चरणों की रज को सिर पर लगाऊँ
जन्म-मरण के कष्ट मिटाऊँ
मुक्ति का पाऊँ साम्राज्य
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.......४
मूक पशु का सुनकर क्रंदन
बनकर आए वीर के नंदन
करुणा के अवतार
कि आज थारी आरती उतारूँ ।.......५

द्वीन्द्रियादि जीव

द्विइन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना बारह योजन प्रमाण शंख की होती है यह शंख स्वयम्भू रमण नामक अंतिम द्वीप में पाया जाता है।

त्रीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु उनचास दिन (४९) एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त की होती है। उत्कृष्ट अवगाहना एक कोश प्रमाण चींटी की स्वयंभू रमण द्वीप में पाई जाती है।

चतुरीन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट आयु छह माह (६), जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती हैं। उत्कृष्ट अवगाहना एक योजन प्रमाण भ्रमर (भौंरा) की होती है।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव

पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च के भोगभूमिज और कर्म भूमिज की अपेक्षा दो भेद हैं। भोगभूमि में जन्म लेने वाले तिर्यञ्च भोग भूमिज कहे जाते हैं।

भोगभूमि तिर्यञ्च मुलायम हलुवे-जैसी घास खाकर सुख पूर्वक निवास करते हैं। वे मरकर स्वर्ग ही जाते हैं परिणामों की निर्मलता होने से शेर और गाय सभी प्रीति पूर्वक रहते हैं। कर्म भूमि तिर्यञ्च प्रायः दुःखों को सहन करते हैं, बोझा ढोना आदि कार्य करते हैं। घास, पत्ती आदि खाकर पेट भरते हैं। कुछ क्रूर तथा कुछ सरल परिणामी होते हैं।

तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य, जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। ''पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्य की'' १००० योजन लम्बाई, ५०० योजन चौड़ाई और २५० योजन मोटाई प्रमाण'' होती है।

कर्मभूमिज तिर्यञ्चों के जलचर, थलचर और नभचर की अपेक्षा से तीन भेद होते हैं। जल में रहने वाले जीव जैसे मछली, मगर, मेंढक, कछुवा आदि जलचर जीव हैं। पृथ्वी पर रहने वाले गाय, घोड़ा, शेर आदि थलचर जीव है एवं आकाश में उड़ने वाले कोयल, चिड़िया, तोता आदि नभचर जीव हैं।

मायाचारी करना, धर्मोपदेश में मिथ्या बातों को मिलाकर उनका प्रचार करना, शील रहित जीवन बिताना, जाति-कुल में दूषण लगाना, विसंवाद में रुचि होना, सद्गुण लोप और असद्गुणों का ज्ञापन करना इत्यादि परिणामों से जीव तिर्यञ्च गति में जन्म लेता है एवं जो पापी जिनलिंग को ग्रहण करके संयम एवं सम्यक्त्व भाव छोड़ देते हैं और पश्चात् मायाचार में प्रवृत्त होकर चारित्र को नष्ट कर देते हैं, जो मूर्ख मनुष्य कुलिंगियों को नाना प्रकार के दान देते हैं या उनके भेष को धारण करते हैं, वे भोगभूमि में तिर्यंच होते हैं।

ऑपरेशन सफल हो जाए पर मरीज मर जाए तो...., धन बहुत हो पर सुख शान्ति छिन जाए तो....।

स्वतंत्रता संग्राम में जैन

सन् १८५७ की जनक्रान्ति से प्रारम्भ हुआ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सन् १९४७ ई. तक चलता रहा। ९० वर्षो की इस आजादी की लड़ाई में अनेक जैन देश प्रेमियों ने जेलों की यातनाएँ सहीं, पुलिस के डंडों की मार सही एवं अन्त में हँसते-हँसते मौत को गले लगाकर शहीद होने का गौरव प्राप्त किया।

यद्यपि हमारा जैनधर्म अहिंसा प्रधान है। दया वृत्ति को धारण करने वाला जैन श्रावक एक चींटी को भी नहीं मारता, किन्तु राष्ट्र के सम्मान पर जब-जब ऑच आई तब-तब जैन धर्मावलम्बी कभी पीछे नही रहे। भारत की आजादी के आन्दोलन में लगभग २० जैन शहीदों ने अपना बलिदान देकर तथा लगभग ५००० जैन पुरुष-महिलाओं ने संघर्ष करते हुए जेल जाकर आजादी के मार्ग को प्रशस्त किया।

धन से खिलौने तो खरीद सकते हैं... पर संस्कार नहीं।
धन से किताब तो खरीद सकते हैं ... पर बुद्धि नहीं।
धन से बिस्तर तो खरीद सकते हैं ... पर नींद नहीं।
धन से श्रृंगार सामग्री तो खरीद सकते हैं ... पर सुंदरता नहीं।
धन से भोजन सामग्री तो खरीद सकते हैं ... पर भूख नहीं।
धन से दवाई तो खरीद सकते हैं ... पर स्वास्थ्य नहीं।
धन से मकान तो खरीद सकते हैं ... पर सुख-शांति नहीं

जब कोई नहीं आता

जब कोई नहीं आता बड़े बाबा आते हैं।
मेरे दुःख के दिनों में वो बड़े काम आते हैं।
बाबा मेरी पीड़ा पहचान जाते हैं।।
मेरे दुख के......।।
मेरी नैया चलती है, पतवार नहीं होती।
किसी और की अब मुझको, दरकार नहीं होती।
मझधार में वो मेरी नाव पार लगाते हैं।।
मेरे दुख के......।।
दिल से जो याद करे, वो उनके घर आएँ।
दर पे फरियाद करें, ये झोली भर जाए।
खुशियों का जीवन में, पैगाम लाते हैं।।
मेरे दुख के......।।
ये बड़े दयालु हैं, दुख पल में हरते हैं।
अपने भक्तों का ये, हर काम करते हैं।
दुखियों के दुख को ये जान जाते हैं।।
मेरे दुख के......।।
ये इतने बड़े होकर, हर किसी से प्यार करें।
सदियों से सुदामा के चावल स्वीकार करें।
ये भक्तों का कहना, सहज ही मान जाते हैं।।

भारत की प्राचीन भाषा - प्राकृत

मूल मंत्र : णमोकार

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

प्राकृत एक लोकभाषा है। अतः इसका अस्तित्व उतना ही पुराना है, जितना कि लोक।

प्राक्-कृत =प्राकृत-पुराकाल से प्राचीन जनभाषाओं को प्राकृत कहते हैं।

संस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का क्षेत्र व काल विस्तृत रहा है। तीर्थंकर जैसे दिव्य पुरुषों ने जन-जन की समझ में आने वाली जन भाषा के द्वारा ही जगत में धर्म की गंगा प्रवाहित की है।

वैदिक सम्प्रदाय ने केवल संस्कृत भाषा को अपनाया, अतः किसी भी वैदिक विद्वान का बनाया हुआ कोई प्राकृत भाषा का ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता, किन्तु जैन सम्प्रदाय ने किसी भी भाषा से अरुचि प्रकट नहीं की। अतएव जैन विद्वानों ने भारतीय मूल भाषा प्राकृत में भी विपुल एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना की तथा संस्कृत भाषा में भी व्याकरण, साहित्य, तर्क, छन्द, अलंकार, कोश, वैद्यक, ज्योतिष, गणित आदि समस्त विषयों पर अनुपम ग्रन्थों की रचना की। काल और क्षेत्र के परिवर्तन से प्राकृत भाषा के भी अनेक रूप हो गए, जिन्हे भाषा-विज्ञानी शौरसैनी महाराष्ट्री, अर्द्धमाग्धी, पाली, पैशाची, अपभ्रंश शिलालेखी व निया प्राकृत आदि कहते हैं।

पुरा साहित्य की प्रकृति, पुराकालीन धर्म, दर्शन तथा जीवन पद्धति को समझने के लिए प्राकृत को समझना आवश्यक है।

दर्शन स्तुति

प्रभु पतित पावन मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरण जी॥
तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥
भव-विकट-वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो॥
धन घड़ी यो धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥
छवि वीतरागी नग्नमुद्रा, दृष्टि नाशा पैं धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण-युत कोटि रवि छवि को हरैं॥
मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥
मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारन तरन जी॥
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर, राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँचहूँ तुमभक्ति भव-भव दीजिए शिवनाथ जी॥

जिनवाणी स्तुति

हे भारती माँ! हे भारती माँ! ॥टेक॥
तेरी उतारें सभी आरती माँ ....
अर्हन्त भाषी ये जिनवाणी प्यारी।
गणधर ऋषि और मुनियों ने धारी॥
जो तुमको ध्याते सुख शांति पाते।
जीवन की नैया को तू तारती माँ॥1॥
तेरे श्रवण से खुशी मन में छाई।
नया बोध पाया नई राह पाई॥
दया धर्म संयम के पथ पर चलें हम।
अतः आज मिलकर करें आरती माँ॥2॥
माँ तेरी महिमा को कैसे बताऊँ।
अल्पज्ञ हूँ भक्ति से सिर झुकाऊँ॥
सद्ज्ञान का सूर्य तम को करे दूर।
ज्योति सदा फैले भू भारती माँ ॥3॥

मैं गाता नहीं औरों की प्रीत चुराने के लिए
मेरा गाना है दुनिया का गम पी जाने के लिए।

घड़ी हमेशा समान गति में चलती है ऊपर जाते समय धीमी नहीं होती नीचे आते समय जल्दी नहीं आती/करती। इसीप्रकार हमको जीवन में समता धारण करना चाहिए।

सिद्धांत ग्रंथ मन को लगाने के लिए है, तो अध्यात्म ग्रंथ मन को हटाने के लिए।

दृढ़ संकल्प और निस्पृह भाव आत्मा के लिए साधना के दो स्तंभ हैं।

प्रायश्चित्त पाठ

शत-शत प्रणाम करते, आशीष हमको देना।
दोषों को दूर करने, अपराध क्षम्य करना।। 1।।
मन से वचन से तन से, अपराध पाप करते।
कृत कारितानुमत से, दुःख-शोक क्लेश सहते।। 2।।
चारों कषाय करके, निज रूप को भुलाया।
आलस्य भाव करके, बहु जीव को सताया।। 3।।
भोजन शयन गमन में, पापों का बंध बाँधा।
अज्ञान भाव द्वारा, अज्ञात पाप बाँधा।। 4।।
दिन रात और क्षण क्षण, अपराध हो रहे हैं।
इस बोझ से दबे हम, पापों को ढो रहे हैं।। 5।।
गुरुदेव की शरण में, प्राचश्चित्त लेने आए।
मुक्ति का राज पाने, भव रोग को नशाए। 6।।

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने-अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करता सभी जन को।।
सभी से मित्रता मेरे, किसी से बैर ना क्षण को।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी।।
किया उपयोग से छेदन, रहा जो भाव वह मुझमें।।
क्षमा करना क्षमा करना, ना दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से माँगता हूँ, क्षमा भावों से झुकता हूँ।।

भजन

आशा रहे ना कल की, कल को भुलाया ।
कल्याण के पथिक हो, जग को जगाना ॥
आचार्य सुन्दर दिगम्बर रूपधारी ।
जो आपको निरखता बनता पुजारी ॥

चरण धूल अपने गुरुवर की, शिष्य शीष पर चन्दन है ।
गुरुवर के चरणों का वन्दन, संयम का भी वन्दन है ॥
शिष्य और गुरुवर दोनों में, अमिट प्रेम का बंधन है ।
गुरुवर की हर श्वास शिष्य के भक्ति हृदय का स्पंदन है ॥
भज मन विद्यासागर ......

विद्यासागर मीठे सागर, जल के सागर है खारे ।
सागर से सागर न तारे, पाप-ताप को ना मारे ॥
भव-सागर से विद्यासागर किंतु भव्यजन को तारे ।
पश्चाताप कराकर स्वामी, पाप- ताप को संहारे ॥
भज मन विद्यासागर ......

चक्कर में पड़ने वाले को, माया बहुत चखाती है ।
बनता है जो दास उसे यह, काया बहुत रुलाती है ॥
छाया का पीछा करने पर, छाया हाथ न आती है ।
गुरु सेवा ही भव्य जनों को भव से पार लगाती है ॥
भज मन विद्यासागर ......

विद्यासागर गंगा

विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।

इक मूलाचार का कूल, इक समयसार तट है।
दोनों रहते अनुकूल, संयम का पनघट है।।
स्याद्वाद वाह जिसका, दर्शक मन हरती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।१।।

मुनिगण राजा हंसा, गुण मणि मोती चुगते।
जिनवर की संस्तुतियाँ, पक्षी कलरव लगते।।
शिव यात्री क्षालन को, अविरल ही बहती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।२।।

जिसमें परीषह लहरें, और क्षमा की भँवरें हैं।
करुणा के फूलों पर, भक्तों के भंवरें हैं।।
तप के पुल में से वह, मुक्ति में ढलती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।३।।

नहिं राग द्वेष शैवाल, नहीं फेन विकारों का।
मिथ्यात्व का मकर नहीं, नहिं मल अतिचारों का।।
ऐसी विद्यागंगा, 'मृदु' पावन करती है।
विद्यासागर गंगा मन निर्मल करती है।
ज्ञानाद्रि से निकली है, शिवसागर मिलती है।।४।।

जीवन वन डे नहीं टेस्ट मैच है, एक बार असफल होने के बाद भी मौका मिल सकता है।

भक्तामर स्तोत्र

आस्तां तव स्तवन मस्त-समस्त-दोषं , त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्त्र-किरणः कुरुते प्रभैव , पद्माकरेषु जलजानि विकास-भाञ्जि ॥9॥

अर्थ : (**अस्तसमस्तदोषम्**) सम्पूर्ण दोषों से रहित (**तव स्तवनम्**) आपका स्तवन (**आस्ताम्**) दूर रहे, किन्तु (**त्वत्सङ्कथा अपि**) आपकी पवित्र कथा भी (**जगताम्**) जगत् के जीवों के (**दुरितानि**) पापों को (**हन्ति**) नष्ट कर देती है (**सहस्त्रकिरणः**) सूर्य (**दूरे 'अस्ति'**) दूर रहता है, पर उसकी (**प्रभा एव**) प्रभा ही (**पद्माकरेषु**) तालाबों में (**जलजानि**) कमलों को (**विकास-भाञ्जि**) विकसित (**कुरुते**) कर देती है।

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्त-मभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा , भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति? ॥10॥

अर्थ : (भुवनभूषण!) हे संसार के भूषण! (भूतनाथ!) हे प्राणियों के स्वामी! (भूतैः) सच्चे (गुणैः) गुणों के द्वारा (भवन्तम् अभिष्टुवन्तः) आपकी स्तुति करने वाले पुरुष (भुवि) पृथ्वी पर (भवतः) आपके (तुल्याः) बराबर (भवन्ति) हो जाते हैं ('इदम्' अत्यद्भुतम न) यह अति आश्चर्य की बात नहीं है (वा) अथवा (ननु) निश्चय से (तेन) उस स्वामी से (किम्) क्या प्रयोजन है? (यः) जो (इह) इसलोक में (आश्रितम्) अपने आधीन पुरुष को (भूत्या) सम्पत्ति के द्वारा (आत्मसमम्) अपने बराबर (न करोति) नहीं करता।

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति दुग्ध-सिन्धोः क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत् ? ॥11॥

अर्थ : (**अनिमेषविलोकनीयम्**) बिना पलक झपकाए एकटक देखने के योग्य (**भवन्तम्**) आपको (**दृष्ट्वा**) देखकर (**जनस्य**) मनुष्यों के (**चक्षुः**) नेत्र (**अन्यत्र**) दूसरी जगह (**तोषम्**) सन्तोष को (**न उपयाति**) प्राप्त नहीं होते (**शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः**) चन्द्रमा की किरणों के समान कान्ति वाले क्षीरसमुद्र के (**पयः**) पानी को (**पीत्वा**) पीकर (**कः**) कौन पुरुष (**जल-निधेः**) समुद्र के (**क्षारम्**) खारे (**जलम्**) पानी को (**रसितुम् इच्छेत्**) पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वम्, निर्मापित-स्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां , यत्ते समान-मपरं न हि रूपमस्ति ॥12॥

अर्थ : (**त्रिभुवनैकललामभूत!**) हे त्रिभुवन के एक आभूषण! (**त्वम्**) आप (**यैः**) जिन (**शान्तरागरुचिभिः**) शान्त हो गई है रागादि दोषों की इच्छा जिनकी ऐसे (**परमाणुभिः**) परमाणुओं के द्वारा (**निर्मापितः**) रचे गए हैं (**खलु**) निश्चय से (**पृथिव्याम्**) पृथ्वी पर (**ते अणवः अपि**) वे अणु भी (**तावन्तः एव 'बभूवुः'**) उतने ही थे (**यत्**) क्योंकि (**ते समानम्**) आपके समान (**अपरम्**) दूसरा (**रूपम्**) रूप (**नहिं**) नहीं (**अस्ति**) है।

वक्त्रं क्व ते सुर- नरोरग-नेत्रहारि , निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य , यद्वासरे भवति पाण्डु पलाश-कल्पम् ॥13॥

अर्थ : (**सुरनरोरगनेत्रहारि**) देव, मनुष्य तथा धरणेन्द्रों के नेत्रों को हरण करने वाला एवं (**निःशेष-निर्जित-जगत्5त्रितयोपमानम्**) सम्पूर्णरूप से जीत लिया है तीनों जगत् की उपमाओं को जिसने ऐसा (**ते वक्त्रम्**) आपका मुख (**क्व**) कहाँ? और (**कलङ्कमलिनम्**) कलंक से मलीन (**निशाकरस्य**) चन्द्रमा का (**'तद्' बिम्बम्**) वह मण्डल (**क्व**) कहाँ? (**यत्**) जो (**वासरे**) दिन में (**पलाशकल्पम्**) ढाक के पत्ते की तरह (**पाण्डु**) फीका (**भवति**) हो जाता है।

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-, शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रि-जगदीश्वर नाथमेकं, कस्तान् निवारयति सञ्चरतो यथेष्टम् ॥14॥

अर्थ : (**सम्पूर्णमण्डलशशाङ्क-कलाकलाप-शुभ्राः**) पूर्ण चन्द्रबिम्ब की कलाओं के समूह के समान स्वच्छ (**तव**) आपके (**गुणाः**) गुण (**त्रिभुवनम्**) तीनों लोकों को (**लङ्घयन्ति**) लाँघ रहे हैं/सब जगह फैले हुए हैं सो ठीक ही है, क्योंकि (**ये**) जो (**एकम्**) मुख्य (**त्रिजगदीश्वर-नाथम्**) तीनों लोकों के नाथों के नाथ के (**संश्रिताः**) आश्रित हैं (**तान्**) उन्हें (**यथेष्टम्**) इच्छानुसार (**संचरतः**) घूमते हुए (**कः**) कौन (**निवारयति**) रोक सकता है? अर्थात् कोई नहीं।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-, र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम् ।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन, किं मन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥15॥

अर्थ : (**यदि**) यदि (**ते**) आपका (**मनः**) मन (**त्रिदशाङ्ग-नाभिः**) देवाङ्गनाओं के द्वारा (**मनाक् अपि**) थोड़ा भी (**विकारमार्गम्**) विकार भाव को (**न नीतम्**) प्राप्त नहीं कराया जा सका है (**तर्हि**) तो (**अत्र**) इस विषय में (**चित्रम् किम्**) आश्चर्य ही क्या है ? (**चलिताचलेन**) पहाड़ों को हिला देने वाली (**कल्पान्तकाल-मरुता**) प्रलयकाल की पवन के द्वारा (**किम्**) क्या? (**कदाचित्**) कभी (**मन्दराद्रिशिखरम्**) मेरुपर्वत का शिखर (**चलितम्**) हिलाया गया है? अर्थात नहीं।

निर्धूम-वर्ति रपवर्जित-तैल-पूरः, कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिता-चलानां, दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

अर्थ : (**नाथ**) हे स्वामिन् ! आप (**निर्धूमवर्तिः**) धुआँ तथा बत्ती से रहित निर्दोष प्रवृत्ति वाले और (**अपवर्जिततैलपूरः**) तैल से शून्य (**भूत्वा अपि**) होकर भी (**इदम्**) इस (**कृत्स्नम्**) समस्त (**जगत् त्रयम्**) त्रिभुवन को (**प्रकटीकरोषि**) प्रकाशित कर रहे हो तथा (**चलिताचलानाम्**) पहाड़ों को हिला देने वाली (**मरुताम्**) वायु के भी (**जातु**) कभी (**गम्यः न**) गम्य नहीं हो अर्थात् वायु बुझा नहीं सकती इस तरह (**त्वम्**) आप (**जगत्प्रकाशः**) संसार को प्रकाशित करने वाले (**अपरः दीपः**) अपूर्व दीपक (**असि**) हो।

दाँत क्यों गिरे?

चीनी दार्शनिक कनफ्यूशियस ने अपने शिष्यों से पूछा –''मेरा मुख देख रहे हो! इसमें पहले दाँत थे। क्या अब भी दाँत दिखाई दे रहे हैं?''शिष्यों ने गुरु का कहना व्यर्थ नहीं समझा, बोले – दाँत तो नहीं दिखाई दे रहे हैं। और जीभ? –अगला प्रश्न कनफ्यूशियस ने किया।

''जीभ तो दिखाई दे रही है, '' इस बार शिष्यों ने उत्साह से उत्तर दिया। कनफ्यूशियस ने पुनः प्रश्न किया जब मुख में दाँत और जीभ दोनों रहते तो दाँत कहाँ गए? जब शिष्य उत्तर नहीं दे पाए तब कनफ्यूशियस ने कहा – ''दाँत कठोर थे। इसलिए या तो वे सब गिर गए या उखाड़ दिए गए। जीभ कोमल थी इसलिए बची रही।

आठ प्रकार की मुक्ति

(१) मिथ्यात्व से मुक्ति : सौधर्मेन्द्र, लौकान्तिक देव, नवअनुदिश, पाँच अनुत्तर, सर्वार्थसिद्धि के देवों को है।
(२) असंयम से मुक्ति : आचार्य, उपाध्याय,३ कम ९ करोड़ मुनिराजों को है।
(३) प्रमाद से मुक्ति : छठवें गुणस्थान से ऊपर गुणस्थानवर्ती मुनिराजों को है।
(४) बादर कषाय से मुक्ति : दसवें गुणस्थान से लेकर ऊपर गुणस्थान वालों को है।
(५) सूक्ष्म कषाय से मुक्ति : ग्यारहवें गुणस्थान से लेकर ऊपर गुणस्थान वालों को है।
(६) अज्ञान से मुक्ति : बारहवें गुणस्थान से ऊपर वालों को है।
(७) योग से मुक्ति : १४वें गुणस्थानवर्ती जीवों को, सिद्धों को।
(८) शरीर से मुक्ति : सिद्धों को।

मेरी भावना

जिसने रागद्वेष कामादिक जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष मार्ग का निस्पृह हो उपदेश दिया।।
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर, ब्रह्मा या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति भाव से प्रेरित हो यह चित्त उसी में लीन रहो।।१।।
विषयों की आशा नहिं, जिनके साम्य भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो निश-दिन तत्पर रहते हैं।।
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं।।२।।
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उन्हीं-जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहीं कहा करूँ।
परधन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ।।३।।
अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ।।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ।।४।।
मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुखी जीवों पर मेरे उर से करुणा स्त्रोत बहे।।
दुर्जन क्रूर - कुमार्ग रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे।।५।।
गुणीजनों को देख हृदय में , मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे।।६।।
कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे।।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पग डिगने पावे।।७।।
होकर सुख में मग्न न फूलै दुख में कभी न घबरावे।
पर्वत नदी-श्मशान-भयानक, अटवी से नहीं भय खावे।।
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्टवियोग-अनिष्टयोग में, सहनशीलता दिखलावे।।८।।
सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर-पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नए मंगल गावे।।
घर-घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत-दुष्कर हो जावे।
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावे।।९।।
ईति-भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।।
रोग - मरी - दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे।
परम अहिंसा धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे।।१०।।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय - कटुक - कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।।
बनकर सब 'युगवीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करे।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करे।।११।।

आरती

दीपों की थाल सजाई, विद्या गुरुवर के द्वार ।
भक्त उतारे आरती, करके जय जयकार ।।

चौथे काल सरीखा देखो लगा नजारा यहाँ मजा ।
तीर्थंकर से गुरुवर लगते, समवशरण सा संघ सजा ।।
सब आओ आओ भक्तों, अब पाओ पुण्य बहार ।।
भक्त उतारे ......

जैसे सूरज के आने पर, चाँद-सितारे दिखे नहीं ।
वैसे गुरु के मुस्काने पर, दुख के दिन भी टिके नहीं ।
अब आओ गुरु बस जाओ, पापों का हो संहार ।
भक्त उतारे ......

धुआँ नहीं ना जोत दिखे पर, सदा रोशनी होती है ।
अध्यात्म का दीप जले तो, सदा दीवाली होती है ।
मिथ्यातम हरो हमारा, ओ करुणा के अवतार ।
भक्त उतारे .....

गम की रात अंधेरी में भी, डरे नहीं हम हिम्मत हो ।
आज नहीं तो कल हल होगा, सब सहने का सम्बल हो।।
बस इतनी-सी इच्छा है, दे दो मुस्कान फुहार ।।
भक्त उतारे .....

बुद्धि की शुद्धि के लिए भगवान की भक्ति से बढ़कर और कोई साधन नहीं ।
विद्या का अंतिम लक्ष्य, चारित्र निर्माण होना चाहिए।

पाठ्यक्रम - १५

१५.अ जैन जीव विज्ञान-मनुष्य जीव

मनुष्य गति नामकर्म के उदय से ''मैं मनुष्य हूँ'' ऐसा अनुभव करते हैं वे जीव मनुष्य कहलाते हैं। क्षेत्र की अपेक्षा मनुष्य दो प्रकार के हैं। कर्मभूमिज मनुष्य और भोगभूमिज मनुष्य।

१. कर्मभूमिज मनुष्य - जो मनुष्य कर्मभूमि में उत्पन्न होते है, शुभ-अशुभ कर्म करते हुए सद्गति-दुर्गति को प्राप्त होते हैं। असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा और वाणिज्य रूप षट्कर्मों के द्वारा अपनी आजीविका चलाते हैं। जो जीव कर्म काट कर मोक्ष सुख को प्राप्त कर सकते हैं, कर्मभूमिज मनुष्य कहलाते हैं।

२. भोगभूमिज मनुष्य - जो मनुष्य दस प्रकार के कल्पवृक्षों से प्राप्त सामग्री का भोग करते हैं। सदा भोगों में लीन सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं तथा मरणकर नियम से देवगति में ही जन्म लेते हैं। भोग भूमिज मनुष्य कहलाते हैं।

आर्य व म्लेच्छ के भेद से भी मनुष्य दो प्रकार के होते हैं। जो गुणों से सहित हों अथवा गुणवान लोग जिनकी सेवा करें उन्हें आर्य कहते हैं। इसके विपरीत, गुणों से रहित, धर्महीन आचरण करने वाले, निर्लज्ज वचन बोलने वाले म्लेच्छ होते हैं।

कर्मभूमिज मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक करोड़ पूर्व वर्ष प्रमाण है एवं जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है। भोग भूमिज मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य एवं जघन्य आयु एक पूर्व कोटि है।

भद्र मिथ्यात्व, विनीत स्वभाव, अल्प आरम्भ अल्प परिग्रह के परिणाम, सरल व्यवहार, हिंसादिक दुष्ट कार्यों से निवृत्ति, स्वागत तत्परता, कम बोलना, ईर्षारहित परिणाम, अल्प संक्लेश, देवता तथा अतिथि पूजा में रुचि, दान शीलता, कापोत पीत लेश्या रूप परिणाम, मरण काल में संक्लेश रूप परिणति का नहीं होना आदि मनुष्य आयु के आस्रव तथा मनुष्य गति में ले जाने के कारण हैं।

मनवांछित वस्तु को देने वाले कल्पवृक्ष कहलाते हैं। वे दस प्रकार के होते हैं-

१. **पानाङ्ग** - मधुर, सुस्वादु, छः रसों से युक्त बत्तीस प्रकार के पेय को दिया करते हैं।
२. **तूर्याङ्ग** - अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र देने वाले होते हैं।
३. **भूषणाङ्ग** - कंगन, कटिसूत्र, हार, मुकुट आदि आभूषण प्रदान करते हैं।
४. **वस्त्राङ्ग** - अच्छी किस्म (सुपर क्वालिटी) के वस्त्र देने वाले हैं।
५. **भोजनाङ्ग** - अनेक रसों से युक्त अनेक व्यञ्जनों को प्रदान करते हैं।
६. **आलयाङ्ग** - रमणीय दिव्य भवन प्रदान करते हैं।
७. **दीपाङ्ग** - प्रकाश देने वाले होते हैं।
८. **भाजनाङ्ग** - सुवर्ण एवं रत्नों से निर्मित भाजन और आसनादि प्रदान करते हैं।
९. **मालाङ्ग** - अच्छी-अच्छी पुष्पों की माला प्रदान करते हैं।
१०. **तेजाङ्ग** - मध्य दिन के करोड़ों सूर्य से भी अधिक प्रकाश देने वाले इनके प्रकाश से सूर्य, चन्द्र का प्रकाश कांतिहीन हो जाता है।

पानाङ्ग जाति के कल्पवृक्ष को मद्याङ्ग भी कहते हैं। ये अमृत के समान मीठे रस देते हैं। वास्तव में ये वृक्षों का एक प्रकार का रस है, जिन्हें भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले आर्य पुरुष सेवन करते हैं, किन्तु यहाँ पर अर्थात् कर्मभूमि में जो मद्य पायी लोग जिस मद्य का पान करते हैं, वह नशीला होता है और अन्तःकरण को मोहित करने वाला है, इसलिए आर्य पुरुषों के लिए सर्वथा त्याज्य है।

सुपात्र को आहार दान देते समय की जाने वाली नवधा भक्ति

१. पड़गाहन २. उच्चासन ३. पाद-प्रक्षालन ४. पूजन ५. नमोस्तु ६. मन शुद्धि ७. वचन शुद्धि ८. काय शुद्धि ९. आहार-जल शुद्धि

पाठ्यक्रम - १५

१५.ब जैन जीव विज्ञान-देव जीव

जो नित्य अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशत्व (वशित्व), सकाम रूपित्व इन आठ गुणों से सहित क्रीड़ा करते हैं। जिनका शरीर सुंदर, प्रकाशमान वैक्रियक होता है, वे देव कहलाते हैं।

भवनवासी देव, व्यन्तर देव, ज्योतिषी देव एवं वैमानिक देव के भेद से देव चार प्रकार के होते हैं। जो भवन में रहते हैं, उन्हें भवनवासी कहते हैं। जो पहाड़, गुफा, द्वीप, समुद्र, मंदिर आदि में विचरण करते रहते हैं वे व्यन्तर कहलाते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारों में रहने वाले ज्योतिर्मय देव ज्योतिषी कहलाते हैं। जो ऊर्ध्वलोक के विमानों में रहते हैं वैमानिक कहलाते हैं। सोलह स्वर्ग तक के देव कल्पोपपन्न एवं उससे ऊपर के देव कल्पातीत कहलाते हैं।

अणिमा आदि आठ गुणों का स्वरूप -

१. अणिमा - अपने शरीर को अणु बराबर छोटा करने की शक्ति अर्थात् इतना छोटा शरीर बनाना कि सुई के छेद में से निकल जावे।
२. महिमा - अपने शरीर को मेरु प्रमाण बड़ा करने की शक्ति अर्थात् अपने शरीर को मेरु अथवा हिमालय बराबर बड़ा बना लेना।
३. लघिमा - रुई के समान शरीर को हल्का बना लेने की क्षमता अर्थात् मकड़ी के तंतु पर पैर रखने पर भी वह न टूटे।
४. गरिमा - बहुत भारी अर्थात् करोड़ों व्यक्ति मिलकर भी जिसे न उठा पाएँ, इतना भारी, वजनदार शरीर बनाने की शक्ति।
5. प्राप्ति - एक स्थान पर बैठे-बैठे ही दूर स्थित पदार्थों का स्पर्श कर लेना, उठा लेने की क्षमता। जैसे यहाँ बैठे-बैठे ही हिमालय के शिखर को छू लेना इत्यादि।
6. प्राकाम्य - जल में भूमि की तरह गमन करना और भूमि में जल की तरह डुबकी लगा लेना।
7. ईशित्व - सब जीवों तथा ग्राम, नगर एवं खेड़े आदि पर प्रभुत्व की क्षमता।
8. सकाम रूपित्व - बिन बाधा के पहाड़ आदि के बीच में से गमन करना, अदृश्य हो जाना, गाय, सिंह आदि अनेक प्रकार के रूप बनाने की क्षमता।

० देवों का जन्म उपपाद शय्या पर होता है। जन्म लेते ही सोलह वर्ष के युवक की तरह सुंदर शरीर होता है, उन्हें बुढ़ापा नहीं आता, कोई रोग नहीं होता, अकाल मरण नहीं होता। देवों का शरीर मल-मूत्र, सप्तधातु, पसीना, निगोदिया जीवों से रहित होता है। देवों के बाल नहीं होते, पलकें नहीं झपकतीं, शरीर की परछाई नहीं पड़ती। संहनन रहित, समचतुरस्त्र संस्थान वाला शरीर होता है। प्रत्येक देव की कम से कम 32 सुंदर देवांगनाएँ होती हैं।

० देव पलक झपकते ही कोशों की दूरी तय कर लेते हैं। देवों के शरीर की ऊँचाई अधिकतम पच्चीस धनुष तथा जघन्य एक हाथ है।

० देवो में जघन्य आयु दस हजार वर्ष एवं उत्कृष्ट आयु तैतीस सागर प्रमाण होती है। एक सागर की आयु वाला देव १ हजार वर्ष बाद आहार ग्रहण करता है अर्थात् भूख लगते ही उनके कण्ठ में अमृत झर जाता है तथा वही देव १५ दिन के बाद एक बार श्वासोच्छवास ग्रहण करता है। देवियाँ दूसरे स्वर्ग तक ही जन्म लेती हैं, नियोगि देव उन्हें सोलहवें स्वर्ग तक ले जाते हैं।

सदाचारी मित्रों की संगति आयतन सेवा, सद्धर्म श्रवण, स्वगौरव दर्शन, निर्दोष प्रोषधोपवास, तप की भावना, बहुश्रुतत्व, आगमपरता, कषाय निग्रह, पात्रदान, पीत-पद्म लेश्या परिणाम, मरण काल में धर्म ध्यान रूप परिणति आदि सौधर्मादि स्वर्ग की आयु के बंध के कारण हैं।

० सम्यग्दर्शन रूपी रत्न से युक्त देव कर्मक्षय के निमित्त नित्य ही अत्यधिक भक्ति से जिनेन्द्र - प्रतिमाओं की पूजा करते हैं, किन्तु सम्यग्दृष्टि देवों से सम्बोधित किए गए मिथ्यादृष्टि देव भी कुल देवता मानकर जिनेन्द्र प्रतिमाओं की नित्य ही नाना प्रकार से पूजा करते हैं।

बुलंदियों की उड़ान में हो तो थोड़ा सब्र करना।
परिन्दे बताते हैं कि आकाश में ठिकाने नहीं हुआ करते ।।

पाठ्यक्रम - १५

१५.स जैन इतिहास - भगवान महावीर की परम्परा

जैनाचार्यों के अनुसार इस भरत क्षेत्र में उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी के छह कालों में वृद्धि एवं ह्रास के अनुसार परिवर्तन देखा जाता है। प्रत्येक दुषमा-सुषमा काल में धर्म तीर्थं के प्रवर्तक चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते हैं। वर्तमान में अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर का शासन काल चल रहा है। भ. महावीर ने ३० वर्ष की आयु में दिगम्बरी दीक्षा धारण की एवं १२ वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् केवलज्ञान प्राप्त किया। केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद ३० वर्ष तक समवशरण की विभूति से सहित, इस भारत भूमि के ग्राम, नगरों में जिनधर्म का प्रचार करते हुए विहार किया एवं अन्त में उन्होंने पावापुर के उद्यान से मोक्ष प्राप्त किया।

भगवान महावीर के निर्वाण उपरांत उसी दिन सायंकाल में भगवान के प्रधान गणधर गौतम स्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, वे चतुर्विध संघ के नायक बने, १२ वर्ष तक संघ गौतम केवली के नेतृत्व में रहा। पश्चात् सुधर्माचार्य को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और १२ वर्ष तक संघ सुधर्म केवली के नेतृत्व में रहा। इसके बाद जम्बूस्वामी को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, ३९ वर्षों तक संघ का नेतृत्व करते हुए अंत में मथुरा चौरासी से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। इनके पश्चात् क्रमशः विष्णुकुमार, नन्दि पुत्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए जिनके नेतृत्व में संघ चला। इन पांचों के काल का योग १०० वर्ष होता है इन्हें पूर्ण श्रुतज्ञान था। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की मृत्यु के उपरांत साधुओं में मन भेद, संघ भेद एवं गणभेद आदि प्रारंभ हो गए।

भद्रबाहु आचार्य के प्रमुख शिष्यों में अंतिम सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य थे। एक बार भद्रबाहु मुनि जब आहार चर्या के लिए नगर की ओर गए, तब वहाँ एक बालक जो कि झूले में लेटा हुआ था, जोर-जोर से रोने लगा और चले जाओ, चले जाओ (बा बाबा, बा बाबा) शब्द करने लगा। तब भद्रबाहु मुनि अन्तराय मानकर वापस वन की ओर चले गए। तथा समस्त मुनियों को इकट्ठा करके उनसे कहा -निमित्त ज्ञान से ऐसा प्रतीत होता है कि पाटलिपुत्र में बारह वर्षों का भीषण अकाल पड़ने वाला है अतः हम सभी श्रमण संस्कृति एवं धर्म की रक्षा हेतु इस क्षेत्र से अन्यत्र देश की ओर विहार करें। तब उस नगर के श्रावकों ने साधुओं से निवेदन किया कि हे मुनिवर! हमारे गोदाम धन-धान्य से भरे पड़े हैं तेल गुड़ आदि की कोई कमी नहीं है, बारह वर्ष यूं ही चुटकी बजाते निकल जाएँगे आप लोग निश्चिंत होकर यहीं रहें अन्यत्र न जावें। श्रावकों के बार-बार आग्रह करने पर भी महामुनि भद्रबाहु ने महाव्रतों के अत्यन्त भंग को जानते हुए विशाखाचार्य (चन्द्रगुप्त) के साथ १२,००० मुनियों के संघ को लेकर दक्षिण प्रान्त की ओर विहार किया। किन्तु यश की इच्छा करने वाले कितने ही साधु (स्थूलभद्र, स्थूलाचार्य, रामल्य आदि) श्रावकों के आग्रह को मानते हुए पाटलिपुत्र में ही रुक गए। कुछ समय व्यतीत होते ही अकाल पड़ने लगा। बारह वर्षीय भीषण दुर्भिक्ष के दौरान लोग अभक्ष्य भक्षण करने लगे, किसी तरह से भूख मिटाना ही उनका लक्ष्य रहा, प्रायः सभी धर्म-कर्म से रहित क्रूरता पूर्ण आचरण करने लगे। उनमें भी कुछ श्रेष्ठी श्रावक अपने व्रतों का पालन करते हुए मुनियों को आहार दान आदि दे रहे थे। कितने ही दिन व्यतीत होने पर एक दिन एक मुनिराज आहार कर लौट रहे थे तब किसी भूखे व्यक्ति ने मुनिराज के पेट को तीव्र पैने नखों से भेद/फाड़ डाला और उनके पेट में स्थित भोजन को जल्दी-जल्दी खा डाला। इस उदर विदारण से मुनि का तत्कालमरण हो गया। इस विषमता को देख श्रावकों ने मुनियों से निवेदन किया हे स्वामी! यह काल अत्यन्त भीषण है अथवा कहिये दूसरा यम ही आया है इसलिए अनुग्रह कर हम लोगों के वचनों को स्वीकार कीजिए और वन को छोड़कर समस्त मुनिराज ग्रामों के बीच में निवास करें। श्रावकों की प्रार्थना साधुओं ने स्वीकार की, श्रावक लोग भी उसी समय समस्त संघ को उत्सव पूर्वक नगर में लिवा लाए और धर्मशाला आदि स्थानों में ठहराए। दुर्भिक्ष दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा, कई वर्ष व्यतीत होने पर जब मुनि - संघ आहार-चर्या को निकले तो दीन-हीन लोग उनके साथ हो गए, करुणामय वचन बोलने लगे " हमें देओ-देओ। तब कितने ही लोग क्रोधित होकर उन कृश काय लोगों को मारने लगे। दयालु मुनिराज ऐसे लोगो को तथा गृह के द्वार बंद

देखकर अपने लिए अंतराय समझ स्व-स्थान पर लौट गए। तब श्रावक भक्ति-भाव से अत्यन्त व्याकुल होकर गुरु के पास गए और प्रार्थना की - सारी पृथ्वी दीन लोगों से पूर्ण हो रही है और उन्हीं के भय से कोई क्षण मात्र के लिए भी घर के किवाड़ नहीं खोलते हैं तथा इसी कारण हम लोग रात्रि में ही भोजन बनाने लगे हैं। अत: आप से निवेदन है कि आप लोग रात्रि के समय ही हमारे गृहों से पात्रो में भोजन ले जाए और दिन होने पर वहीं आहार करें। परिस्थिति को समझते हुए उन्होंने निवेदन स्वीकार किया तथा तुम्बी पात्र में भोजन लाने लगे। कुत्ते आदि के भय से लकड़ी रखने लगे। एक दिन क्षीण काय साधु के हाथ में पात्र और लाठी देखकर यशोभद्र सेठ की गर्भवती पत्नी घबरा गई जिससे उसका गर्भ गिर गया। यह विषम रूप लोगों के भय का कारण है इसलिए कन्धे पर वस्त्र धारण करें, जब तक सुभिक्ष न आ जाए ऐसा करें फिर तपश्चरण धारण करें, ऐसा निवेदन भी साधुओं ने स्वीकार किया और धीरे-धीरे शिथिलाचार बढ़ता गया। बाद में जब सुभिक्ष प्रारम्भ हुआ तब विशाखाचार्य सब मुनियों को लेकर उत्तर भारत आए। इन साधुओं को देखकर प्रतिनमोस्तु नहीं किया। कुछ साधुओं ने प्रायश्चित लेकर पुन: सम्यक् मार्ग प्रारंभ किया किन्तु कुछ हठ के वशीभूत, कैसे अब कठिन चर्या स्वीकारें ऐसा विचार कर उसी मार्ग का अनुकरण करने लगे वे अर्धफालक कहलाए। आगे एक रानी के आग्रह पर उन्होंने श्वेत वस्त्र भी अंगीकार कर लिए और तभी से श्वेताम्बर मत भी प्रसिद्ध हुआ। यह मत महाराजा विक्रम की मृत्यु के 136 वर्ष बाद उत्पन्न हुआ, इस प्रकार भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् यह विशुद्ध जैन धर्म दो संप्रदायो में बट गया। बाद में श्वेताम्बरों द्वारा अनेक नवीन साहित्य की रचना की गई जिनमें अनेक दिगम्बर मान्यताओं के विरुद्ध बातें लिखी हैं जिनमें कुछ निम्नलिखित हैं-

श्वेताम्बर मान्यता	दिगम्बर मान्यता
१. केवली कवलाहार (भोजन) करते हैं।	१. नहीं करते हैं।
२. केवली को नीहार (शौच) होता है।	२. नहीं होता है।
३. सवस्त्र मुक्ति होती है।	३. दिगम्बर होना अनिवार्य
४. स्त्री उसी भव से मुक्ति प्राप्त कर सकती है।	४. नहीं कर सकती
५. गृहस्थ भेष में केवलज्ञान संभव।	५. असंभव
६. वस्त्राभूषण से सुसज्जित प्रतिमा पूज्य है।	६. दिगम्बर प्रतिमा ही पूज्य है।
७. तीर्थंकर मल्लिनाथ का स्त्री होना	७. स्त्री तीर्थंकर नहीं हो सकती।
८. महावीर का गर्भ परिवर्तन, विवाह एवं कन्या का जन्म	८. कल्पना है ऐसा नहीं हुआ
९. मुनिगण दिन में अनेक बार भोजन कर सकते	९. एक बार ही करपात्र में
१०. ग्यारह अंग की मौजूदगी।	१०. अंगज्ञान का लोप हुआ।

विशेष रूप से मतभेद आदि जानने हेतु श्वेताम्बर विद्वान श्री बेचरदास जी दोशी द्वारा रचित "जैन साहित्य में विकार" तथा पं. अजित कुमार शास्त्री द्वारा रचित "श्वेताम्बर मत समीक्षा" पुस्तक पढ़ना चाहिए। आगे दक्षिण प्रान्त से लौटने के बाद दिगम्बर मुनियों का संघ अर्हद्बली आचार्य के नेतृत्व में रहा। पंचवर्षीय युग प्रतिक्रमण के अवसर पर उन्होंने दक्षिण देशस्थ महिमानगर जिला-सतारा में यति-सम्मेलन की योजना बनाई। जिसमें १००-१०० योजन तक के यति आकर सम्मिलित हुए। उस समय उन्होंने महसूस किया कि काल के प्रभाव से वीतरागियों में भी अपने-अपने संघ तथा शिष्यों के प्रति कुछ पक्षपात जाग्रत हो चुका है। यह पक्ष आगे जाकर संघ की क्षति का कारण न बन जाए इस उद्देश्य से उन्होंने अखण्ड दिगम्बर संघ को नन्दिसंघ आदि अनेक अवान्तर संघों में विभाजित कर दिया। आगे अनेक संघ भेद, जैनाभास आदि होते रहे जिनका वर्णन विस्तृत होने से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। विशेष जानने के इच्छुक ऐतिहासिक ग्रंथ अथवा जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग १ के इतिहास एवं परिशिष्ट को पढ़ सकते हैं। दिगम्बर संप्रदाय के कुछ प्रचलित मतों का संक्षिप्त परिचय यहाँ देते हैं।

राष्ट्रगान में जैन - राष्ट्रगान 'जन-गण-मन' की दूसरी पंक्ति में 'जैन' शब्द को भारत में प्रचलित अन्य छह मुख्य धर्मों की भाँति लिखा गया है।

'अहरह तव आह्वान प्रचारित, शुनि तव उदार वाणी
हिन्दु, बौद्ध, सिख, 'जैन', पारसिक, मुसलमान, ख्रिसतानी'.... जय, जय, जय, जय हे।।

भट्टारक पंथ

भट्टारक शब्द पूर्व में जैन धर्म के प्रभावक उन आचार्यों के लिए प्रयुक्त होता था, जिन्होंने अनेक ग्रंथ लिखकर दिगम्बर जैन शासन की प्रभावना की तथापि भट्टारक शब्द कालान्तर में शिथिलाचारी दिगम्बर मुनियों के लिए प्रयुक्त होते-होते, वस्त्र-धनादि परिग्रह सहित, मठाधीश, सुविधाभोगी किन्तु पिच्छीधारी एक विशेष वर्ग के लिए रूढ़ हो गया। चौदहवीं शताब्दी में दिल्ली की गद्दी से प्रारंभ होकर धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत में भट्टारकों की गद्दियाँ स्थापित हो गईं। वे भट्टारक प्राय: आगमज्ञान से हीन, मंत्र-तंत्रादि में निपुण होने से प्रभावक रहे। उत्तर भारत में श्रावकों की जन-चेतना के कारण भट्टारकों की परंपरा प्राय: समाप्त हो गई तथापि दक्षिण भारत में यह परम्परा आज भी जीवित है। भट्टारक प्रथा मुनियों में बढ़े हुए शिथिलाचार का ही रूप है इसे आगम में कही भी स्वीकार नहीं किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने जैन दर्शन में तीन ही लिंग माने है - १ जिनलिंग (दिगम्बर श्रमण का) २ उत्कृष्ट श्रावक (एलक/छुल्लक का), ३. आर्यिका का। इसके अलावा चौथा कोई लिंग नहीं है। भट्टारकों का पिच्छी रखना भी उचित नहीं है। भट्टारकों की इस परंपरा में सुधार अपेक्षित है। इस हेतु प. नाथूराम जी प्रेमी द्वारा सन् १९१२ में लिखी पुस्तक ''भट्टारक'' पठनीय है।

तेरापंथ - बीसपंथ

संवत् १७०० में कामा (मथुरा) में भट्टारकों के विरुद्ध गृहस्थ जैनों का एक दल उठ खड़ा हुआ। उस दल ने घोषणा कर दी कि पंचमहाव्रत धारी, नग्न दिगम्बर साधु ही जैन गुरु हो सकता है, वस्त्रादि परिग्रह सहित भट्टारक नहीं। यह विद्रोह उत्तर भारत में प्राय: सर्वत्र फैल गया और वहाँ सब स्थानों पर भट्टारकों की अमान्यता तेजी से फैलने लगी। कुछ लोग उस समय भी भट्टारकों के अनुयायी बने रहे जिन्होंने भट्टारकों को गुरु मानने का निषेध किया वे तेरापंथी कहलाए। मुख्य रूप से वर्तमान में पूजन पद्धति को लेकर दोनों में भिन्नता है विशेष कुछ नहीं। तेरह पन्थ के जन्मदाता प. बनारसी दास जी माने जाते है।

तारण - पंथ

भारतीय इतिहास में सोलहवीं शताब्दी को प्रशस्त नहीं माना गया है इस समय भारत में मुगल साम्राज्य छाया हुआ था। हिन्दू व जैन धर्म का दमन हो रहा था तथा जबरदस्ती धर्म परिवर्तन कराया जा रहा था, मंदिर और मूर्तियाँ तोड़ी जा रही थीं। तब उस समय संत तारण-तरण नाम के एक व्यक्ति ने इस पंथ को जन्म दिया। जिसमें मूर्ति-पूजा का निषेध करते हुए अध्यात्म का उपदेश व जिनवाणी की वंदन पूजा का मूल उपदेश दिया गया है। इस पंथ से प्रभावित होकर अनेक जैनेत्तरों ने भी इस पंथ को स्वीकार किया। संत तारण जी ने १४ ग्रन्थों की रचना की इसके अनुयायी इन ग्रंथों की व अन्य आचार्य प्रणीत ग्रन्थों को देव स्थान वेदी पर विराजमान कर उनकी पूजा करते हैं। संत तारण का प्रभाव मध्य भारत के कुछ ही क्षेत्रो तक सीमित रहा। जहाँ इनके अनुयायी आज भी हैं। इनकी संख्या दिगम्बरों की अपेक्षा अत्यल्प है।

संस्मरण - गिरना-उठना

गिरना-उठना, उठना-गिरना, यह क्रम बच्चों केजीवन में रहता ही है। इससे बच्चे जहाँ एक ओर दु:खी तो अवश्य होते हैं परन्तु मजबूत बनना, उनका दूसरी ओर का पक्ष मान सकते हैं। उठने के लिए गिरना अनिवार्य है क्योंकि गिरना तो स्वभाव है परन्तु उठना पुरुषार्थ पर आधारित है।

बात उस समय की है जब मल्लप्पाजी अपने परिवार सहित गोमटेश्वर स्वामी की तीर्थ वन्दना को गए। उनके साथ उस समय डेढ़ वर्ष के नन्हें पीलू (विद्याधर) भी थे। बाहुबली भगवान् के दर्शनोपरान्त पति-पत्नी पल भर को विश्राम को क्या ठहरे? उसी में बच्चे के रोने की आवाज आयी। दोनों पागलों की तरह भागे एवं देखा तो पीलू 10 सीढ़ियाँ लुढ़ककर नीचे जा पहुँचे थे। माँ ने दौड़कर पीलू को उठाया, अपने सीने से लगाया एवं देखा कहीं चोट तो नहीं आई। माता-पिता ने अपने बेटे को सकुशल देख चैन की साँस ली।

समय गुजरा, पीलू युवा हो गए। एक दिन माता-पिता ने विद्याधर को बचपन की घटना सुनाई। जिसे सुनकर सबको आश्चर्य अवश्य हुआ परन्तु हैरानी नहीं क्योंकि ऐसा होता ही रहता है। तब माता-पिता ने शिक्षा दी कि बेटा अब कभी राह पर फिसलना नहीं, गिरना नहीं। जिसे विद्या ने शिरोधार्य कर संकल्प किया ऊपर चढ़ने का। इसी भावना वशात् वे संयम पथ पर अग्रसर होकर, दस धर्मों का सहारा लेकर एवं दसधर्मों का ध्यान करके ऊपर उठ रहे हैं। वे इतने ऊपर उठना चाहते हैं, जिससे ऊँचा कुछ नहीं... कुछ भी नहीं।

भक्तामर स्तोत्र

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्यः, स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः, सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥17॥

अर्थ : (**मुनीन्द्र !**) हे मुनियों के इन्द्र (**त्वम्**) तुम (**कदाचित्**) कभी (**न अस्तम् उपयासि**) न अस्त होते हो (**न राहुगम्यः**) न राहु के द्वारा ग्रसे जाते हो और (**न अम्भोधरोदर-निरुद्धमहा-प्रभावः**) न मेघों के द्वारा आपका महाप्रभाव निरुद्ध होता है तथा (**युगपत्**) एक साथ (**जगन्ति**) तीनों लोकों को (**सहसा**) शीघ्र ही (**स्पष्टीकरोषि**) प्रकाशित करते हो (**इति**) इस तरह आप (**लोके**) इस संसार में (**सूर्यातिशायिमहिमा असि**) सूर्य से भी अधिक महिमा वाले हो।

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं, गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम् ।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्प-कान्ति, विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम् ॥18॥

अर्थ : (**नित्योदयम्**) हमेशा उदय रहने वाला (**दलित-मोह-महान्धकारम्**) मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाला (**राहुवदनस्य न गम्यम्**) राहु के मुख के द्वारा ग्रसे जाने के अयोग्य (**वारिदानां न गम्यम्**) मेघों के द्वारा छिपाने के अयोग्य (**अनल्पकान्ति**) अधिक कान्तिवाला और (**जगत्**) संसार को (**विद्योतयत्**) प्रकाशित करने वाला (**तव**) आपका (**मुखाब्जम्**) मुखकमलरूपी (**अपूर्व-शशाङ्कबिम्बम्**) अपूर्व चन्द्रमण्डल (**विभ्राजते**) शोभित होता है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा , युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके, कार्यं कियज्जलधरै-र्जल-भार-नम्रैः ॥19॥

अर्थ : (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**तमःसु**) अन्धकार के (**युष्मन्मुखेन्दु दलितेषु**) आपके मुखचन्द्र द्वारा नष्ट हो जाने पर (**शर्वरीषु**) रात में (**शशिना**) चन्द्रमा से (**वा**) अथवा (**अह्नि**) दिन में (**विवस्वता**) सूर्य से (**किम्**) क्या प्रयोजन है? (**निष्पन्नशालिवनशालिनि**) पके हुए धान्य के खेतों से शोभायमान (**जीवलोके**) संसार में (**जलभारनम्रैः**) पानी के भार से झुके हुए (**जलधरैः**) मेघों से (**कियत्**) कितना (**कार्यम्**) काम रह जाता है।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं , नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं , नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥20॥

अर्थ : (**कृतावकाशम्**) अवकाश को प्राप्त (**ज्ञानम्**) ज्ञान (**यथा**) जिस तरह (**त्वयि**) आपमें (**विभाति**) शोभायमान होता है (**एवं तथा**) उस तरह (**हरिहरादिषु**) विष्णु, शंकर आदि (**नायकेषु**) देवों में (**न 'विभाति'**) शोभायमान नहीं होता (**तेजः**) तेज (**स्फुरन्मणिषु**) चमकते हुए मणियों में (**यथा**) जैसे (**महत्त्वम्**) महत्त्व को (**याति**) प्राप्त होता है (**तु**) निश्चय से (**एवं**) वैसे महत्त्व को (**किरणाकुले अपि**) किरणों से व्याप्त भी (**काचशकले**) काँच के टुकड़े में (**न 'याति'**) नहीं प्राप्त होता।

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥21॥

अर्थ : (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**मन्ये**) मैं मानता हूँ कि (**दृष्टाः**) देखे गए (**हरिहरादयः एव**) विष्णु, महादेव आदि देव ही (**वरम्**) अच्छे हैं (**येषु दृष्टेषु 'सत्सु'**) जिनके देखे जाने पर (**हृदयम्**) मन (**त्वयि**) आपके विषय में (**तोषम्**) सन्तोष को (**एति**) प्राप्त हो जाता है (**वीक्षितेन**) देखे गए (**भवता**) आपसे (**किम्**) क्या लाभ है ? (**येन**) जिससे कि (**भुवि**) पृथ्वी पर (**अन्यः कश्चित्**) कोई दूसरा देव (**भवान्तरे अपि**) जन्मान्तर में भी (**मनः**) चित्त को (**न हरति**) नहीं हर पाता।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान् , नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।
सर्वादिशो दधति भानि सहस्र-रश्मिम्, प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥22॥

अर्थ : (**स्त्रीणाम् शतानि**) स्त्रियों के शतक अर्थात् सैकड़ों स्त्रियाँ (**शतशः**) सैकड़ों (**पुत्रान्**) पुत्रों को (**जनयन्ति**) पैदा करती हैं, परन्तु (**त्वदुपमम्**) आप-जैसे (**सुतम्**) पुत्र को (**अन्या**) दूसरी (**जननी**) माँ (**न प्रसूता**) पैदा नहीं कर सकी (**भानि**) नक्षत्रों को (**सर्वाः दिशः**) सब दिशाएँ (**दधति**) धारण करती हैं, परन्तु (**स्फुरदंशुजालम्**) चमक रहा है किरणों का समूह जिसका ऐसे (**सहस्त्ररश्मिम्**) सूर्य को (**प्राची दिक् एव**) पूर्व दिशा ही (**जनयति**) प्रकट करती है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-, मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात् ।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं , नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र पन्थाः ॥23॥

अर्थ : (**मुनीन्द्र!**) हे मुनियों के नाथ ! (**मुनयः**) तपस्वीजन! (**त्वाम्**) आपको (**आदित्यवर्णममलम्**) सूर्य की तरह तेजस्वी, निर्मल और (**तमसःपुरस्तात.**) मोहान्धकार से परे रहने वाले (**परमं पुमांसम्**) परम पुरुष (**आमनन्ति**) मानते हैं वे (**त्वाम् एव**) आपको ही (**सम्यक्**) अच्छी तरह से (**उपलभ्य**) प्राप्त कर (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**जयन्ति**) जीतते हैं इसके सिवाय (**शिवपदस्य**) मोक्ष पद का (**अन्यः**) दूसरा (**शिवः**) अच्छा (**पन्थाः**) रास्ता (**न अस्ति**) नहीं है।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्य-मसंख्यमाद्यं , ब्रह्माण-मीश्वर-मनन्त-मनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित-योग-मनेक-मेकं, ज्ञान-स्वरूप-ममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥24॥

अर्थ : (**सन्तः**) सज्जन-पुरुष (**त्वाम्**) आपको (**अव्ययम्**) अविनाशी (**विभुम्**) विभु, (**अचिन्त्यम्**) अचिन्त्य, (**असंख्यम्**) असंख्य, (**आद्यम्**) आद्य (**ब्रह्माणम्**) ब्रह्मा, (**ईश्वरम्**) ईश्वर, (**अनंतम्**) अनन्त, (**अनङ्गकेतुम्**) अनङ्गकेतुम् (**योगीश्वरम्**) योगीश्वर (**विदितयोगम्**) विदित योग, (**अनेकम्**) अनेक, (**एकम्**) एक (**ज्ञानस्वरूपम्**) ज्ञानस्वरूप और (**अमलम्**) अमल (**प्रवदन्ति**) कहते हैं।

चारों अनुयोग उपयोगी

एक माँ जिनदर्शन के लिए मंदिर जा रही थी। साथ में उसका छोटा बेटा भी था। मार्ग में बेटे को देखकर नहीं चलने से पत्थर की ठोकर लग जाती है तो वह रोने लगता है। तब माँ गोद में लेकर उसे इस प्रकार से समझाती है- अरे! इतनी सी पीड़ा में रोता है। देख तेरी दीदी गिर गई थी। उन्हें कितना रक्त बहा था फिर भी क्या ऐसे रोई थी? दौड़कर घर पहुँच गई थी वह तो। बालक फिर भी पीड़ा को नहीं भूल पाता और रोना बंद नहीं करता। तब पुनः समझाती है कि तू बहुत उपद्रव करता है न इसलिए तुझे ठोकर लगती है। कैसे मुँह चिढ़ाता है दीदी को। कैसे पीटता है उसे। जो दूसरे को चोट पहुँचाता है उसे भी चोट लगती है। चुप हो जा, आगे किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना। तो फिर कभी नहीं गिरेगा।

इस पर भी बालक रोना बंद नहीं करता। तब बदल जाती है उसके संबोधन की भाषा- अरे स्वयं देखकर तो चलता नहीं, गिरने पर रोता है। आगे सावधानी से चला कर फिर कभी चोट नहीं लगेगी। यह संबोधन भी यदि बालक को चुप नहीं करा पाता तो वह स्नेह से बालक के सिर पर हाथ फेरेगी और कहेगी- तू तो राजा बेटा है, तू तो गिरा ही नहीं। वह तो घोड़ा कूदा था। राजा बेटा क्या कभी गिरता है? क्या कभी रोता है? चल दौड़कर आगे चल।

बस यही चारों अनुयोग की कथन पद्धति है। संसार के सफर में कर्मोदय की ठोकर से पीड़ित भव्य प्राणी के लिए जिनवाणी रूपी माँ चार प्रकार से समझाती है। दीदी गिर गई थी पर रोई नहीं, दौड़कर घर पहुँच गई थी। यही तो कहा है प्रथमानुयोग में। असंख्य पात्रों के जीवन चरित्र यही तो दिशाबोध देते हैं कि पाप कर्मो की प्रतिकूलता में संक्लेशित होकर रोएँ नहीं, साहस के साथ अपने मार्ग पर चलते रहें।

दीदी को मुँह चिढ़ाता है, उसे पीटता है, तभी तो चोट लगती है। यही अभिप्राय है करणानुयोग का। जीव अच्छा-बुरा जैसा भी व्यवहार दूसरे के प्रति करेगा, कालान्तर में उसे वैसा ही अच्छा-बुरा फल भोगना पड़ेगा।

स्वयं देखकर चलता नहीं, गिरने पर रोता है। सावधानी से चला कर फिर चोट नहीं लगेगी। यही तो चरणानुयोग का उपदेश है कि पापाचरण से दूर रहना, अणुव्रत, महाव्रतों का पालन करना ही भविष्य के दुःखों से बचने का उपाय है। तू तो गिरा ही नहीं, वह तो घोड़ा कूदा था। राजा बेटा कभी गिरता ही नहीं। यह द्रव्यानुयोग की भाषा है। जीव तो ज्ञानमय और अजर-अमर ही है। वह न कभी जन्मता है न मरता है। न बँधता है न छूटता है। न गिरता है न उठता है। ये सारी अवस्थाएँ तो शरीर रूपी घोड़े की होती हैं।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

१. लोकाकाश किसे कहते हैं उसका आकार कैसा है ?

२. जम्बू द्वीप में स्थित सात पर्वत एवं छह नदियों के नाम क्या हैं ?

३. तीन वातवलय कौन से व कैसे हैं?

४. आ. ज्ञानसागर जी की शिक्षा कहां कैसे पूर्ण हुई ?

५. १६९ महापुरुषों के नाम बताइए?

६. कुलभूषण - देशभूषण मुनियों को कैसे वैराग्य हुआ था ?

७. नारकियों के शरीर की कोई तीन विशेषताएँ लिखो ?

८. सात नरकों के नाम एवं बिलों की संख्या बताएँ?

९. पृथ्वी कायिक एवं पृथ्वीकाय में क्या अंतर है ?

१०. तिर्यंचगति में जन्म लेने के कोई पांच कारण बताएँ?

११. स्वतंत्रता संग्राम में जैनों का क्या योगदान रहा ?

१२. भोग भूमि में मनुष्य कैसे होते हैं ?

१३. देवों के शरीर की कोई पांच विशेषताएं बतायें ?

१४. श्वेताम्बर पंथ की उत्पत्ति कैसे हुई ?

१५. चार अनुयोग मां के समान कैसे हैं ?

ब. श्लोक एवं छंदों को पूर्ण करें-

१. मुनिवन .... पदार्थ।

२. अल्पश्रुतं .... हेतु।

३. छवि .... हरैं।

४. दिनरात .... नशाएं।

५. विद्यासागर मीठे .... संसारे ।

६. चित्तं .... कदाचित्।

७. होकर सुख .... दिखलावे ।

८. गम की .... सम्बल दो॥

९. स्त्रीणां .... जालम् ॥

स. श्लोक के अर्थ लिखो।

भक्तामर स्तोत्र - काव्य नं. ३, १२, २०

द. सही उत्तर चुनकर लिखो-

१७०, ८५०, १२, २४, ३ सागर, ७ सागर, ३०००, ७०००, भोजनांग, भाजनांग

१. कामदेव ....

२. शर्कराप्रभा ....

३. आर्यखण्ड ....

४. व्यंजन ....

५. जलकायिक ....

६. मलेच्छ खण्ड ....

७. बालुका प्रभा ....

८. आसनादि ....

९. वायु कायिक ....

१०. चक्रवर्ती ....

० अन्यत्र ग्रंथों से खोजें ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. लोकाकाश की लंबाई, चौड़ाई, क्षेत्रफल कहाँ पर कितना है ?

२. ढाई द्वीप का विस्तार कितना है चित्र सहित बताएँ? ३. सुमेरुपर्वत पर कितने कहां पर वन हैं। उनके क्या नाम हैं?

४. चौदह रत्न और नौ निधियाँ कैसी होती हैं?

५. ग्यारह रुद्र, नौ बलभद्र, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण के क्या-क्या नाम थे ?

६. बारह चक्रवर्ती कब हुए उनका नाम और वे मरकर कहाँ-कहाँ गए ?

७. सात नरक भूमियों के दूसरे नाम क्या हैं ?

८. नारकियों का जन्म किस प्रकार होता है ?

९. नारकी आपस में कैसे, क्यों लड़ते हैं ?

१०. मनुष्य जाति में कौन-कौन से दुःख होते हैं ?

११. १०० इन्द्र कौन-कौन से हैं ?

१२. देवों में इन्द्र आदि की व्यवस्था का क्या स्वरूप है ?

१३. देवों में कैसा सुख-दुख पाया जाता है ?

१४. सोनगढ़ पंथ क्या है, कब उत्पन्न हुआ ?

१५. श्वेताम्बर साधु की चर्या कैसी होती है ?

पाठ्यक्रम - १६

१६.अ मानवीय शुद्ध आहार - शाकाहार

जिससे शारीरिक - मानसिक पोषक तत्त्व प्राप्त हों, जिससे भूख मिटें उसे आहार कहते हैं। संसार में आहार को मुख्यत: दो भागों में बाँटा गया है-

१. शाकाहार

२. मांसाहार

शाकाहार का अर्थ - शोधे हुए अनाज, दालें, चावल, सूखे फल - मेवे, ताजे कच्चे-पके फल, साग - भाजी, दूध - दही और इनसे बने मर्यादित पदार्थों का आहार है। ऐसे भोजन से मनुष्य में दीर्घायु, उत्तम स्वास्थ्य, बलवान शरीर, दया, सरलता, पारस्परिक सहयोग और अहिंसा आदि शुभ भाव उत्पन्न होते हैं।

मांसाहार का अर्थ - प्राणियों की हत्या करके (अथवा मृत प्राणी शरीर से) उसके शारीरिक अवयवों (माँस - कलेजी - हड्डियाँ आदि), अण्डे, वासी, रसहीन - अधपके, दुर्गन्धित, सड़े या सड़ाए गए अपवित्र नशीले आदि पदार्थों का सेवन मांसाहार है। यह मनुष्य की बुद्धि - विवेक को भ्रष्ट कर उसे कुसंस्कारों की ओर ले जाता है, इससे शरीर दुर्गन्धित व भारी हो जाता है। प्राय: मनुष्य क्रोधी, क्रूर और अनाचारी बन जाते हैं।

मांसाहारी जीवों की शारीरिक बनावट

प्राकृतिक रूप से मनुष्य शाकाहारी है उसकी शरीर-रचना मांसाहारी जीवों से भिन्न है। मांसाहारी जीव अँधेरे में देख सकते हैं, उनके जबड़े अलग प्रकार के होते हैं, उनके दाँत, पंजे, चोंच बहुत नुकीले होते हैं, वे मांसाहार करने के कारण प्राय: जीभ से पानी पीते हैं। उनकी सूंघने की विलक्षण क्षमता होती है, उनकी आँतों की बनावट भी अलग प्रकार की होती है। इन स्पष्ट भेदों के बाद भी प्रकृति से शाकाहारी मनुष्य अज्ञानता, धर्मान्धता, जीभ की लोलुपता, मांसाहारियों की संगति और आग्रह तथा स्वयं को आधुनिक दिखाने के चक्कर में मांसाहारी बनता जा रहा है। कुछ लोग मांसाहार को गर्व के साथ आधुनिकता से जोड़ते हैं। यह मांसाहार ही आज संसार की अशान्ति और दुर्गति का बड़ा कारण बन गया है।

वनस्पति और मांस में अन्तर

एक इन्द्रिय जीव वनस्पति और मांस में बहुत अन्तर होता है। प्रथम तो मांस का उत्पादन ही पंचेन्द्रिय आदि जीवों की हत्या से होता है फिर मांस वनस्पति की तरह अग्नि संस्कार से प्रासुक नहीं होता उसमें निरन्तर तज्जाति निगोदिया जीव उत्पन्न होते रहते हैं। मांस पूर्णत: अभक्ष्य है। लौकिक व्यवहार में भी एक पेड़ काटने पर उतना दण्ड नहीं दिया जाता जितना एक मनुष्य की हत्या करने पर। अनाज फल साग - भाजी आदि देख कर किसी को भी ग्लानि नहीं होती है जब कि मांस की दुकानों पर लटका या रखा हुआ मांस देखकर अधिकांश लोगों को घृणा होती है। वहाँ की दुर्गन्ध से लोग नाक बंद कर लेते हैं।

मांस को शक्तिवर्धक मानना एक भ्रान्त धारणा है, सृष्टि के प्राय: सभी बलशाली, परिश्रमी और सहनशील प्राणी जैसे हाथी, घोड़ा, ऊँट और बैल आदि पूर्णत: शाकाहारी हैं। शाकाहार से जहाँ शक्ति बढ़ती है वहाँ मांसाहार से उत्तेजना और क्रूरता। मांसाहार की अपेक्षा कई गुने अधिक शरीर - पोषक तत्त्व शाकाहारी पदार्थों में पाए जाते हैं कुछ उदाहरण निम्नानुसार हैं -

बकरे के मांस में प्रोटीन २१.४% है तो सोयाबीन में ४३.३ % है।
मांस में कार्बोहाइड्रेड नहीं है जबकि गेहूँ में ६३.४% है।
मांस में फैट ३.६% है। जबकि नारियल में ६२.३% है।
फाइबर मांस में नहीं जबकि अमरूद में ५.२% है।
मांस में मिनरल १.१% है। जबकि चावल में ६.६% है।
मांस में कैलोरी 118 है जबकि मूंगफली में 570 है।

प्रभु देव तुम्हारे पवित्र मुख से नि:श्रृत जो शीतल वाणी।
जग-जन मन के मल को धोती अत: कहाती जिनवाणी।।
जयवन्तो माँ जग में तब तक जब तक सूरज-चाँद रहे।
शीश नवाते कर्म हरो माँ अब तक हम विषयान्ध रहे।।

प्रकृति का संतुलन

''यदि पशुओं को ना खाया जाए तो पृथ्वी उनसे भर जाएगी'' यह मानना निराधार हैं क्योंकि पशुओं का संतुलन प्राकृतिक रूप से बना रहता है। उनकी कामेच्छा और प्रजनन का समय भी सहज निर्धारित रहता है। फिर जिन प्राणियों का मांस नहीं खाया जाता, क्या उनकी संख्या बढ़ी है? जैसे शेर, हाथी, कुत्ता, बिल्ली अर्थात नहीं बढ़ी बल्कि कहीं-कहीं तो हाथी, शेर आदि की प्रजाति लुप्त होने के कगार पर पहुँच रही है यदि कृत्रिम रूप से प्रजनन न कराया जावे तो उनकी भी संख्या नहीं बढ़ेगी।

शाकाहार आर्थिक दृष्टि में

''यदि मांस न खाकर केवल अन्न ही खाया जाय तो देश में अन्न की कमी पड़ जायेगी।'' ऐसा सोचना भी ठीक नहीं है, क्योंकि देश में अन्न की पैदावार पर्याप्त मात्रा में होती है। दूसरी ओर अकेले अमेरिका में अधिक मांस प्राप्ति के लिए पशुओं को जितना अन्न खिलाया जाता है उतने से विश्व की आधी आबादी का पेट भर सकता है वहाँ औसत एक किलो मांस के लिए सोलह किलो अन्न खिलाया जाता है। अत: आर्थिक दृष्टि से भी शाकाहार सस्ता व श्रेष्ठ है।

दूध का पूर्ण सत्य-

आजकल कुछ चिंतक - वैज्ञानिक दूध को ''पतले - मांस'' की संज्ञा देने लगे हैं। यह उनकी अल्पज्ञता का सूचक है। दूध पूर्णत: शाकाहारी, शुद्ध एवं सम्पूर्ण आहार है।

दही अभक्ष्य नहीं है। अच्छी तरह उबले हुए (प्रासुक) दूध से बने दही में २४ घंटे तक वैक्टीरिया (जीवाणु) पैदा नहीं होते। जैनाचार्यों ने प्रासुक दूध, दही, पनीर आदि को जीवाणु रहित होने से सेवन योग्य कहा है। (दही से दही नहीं जमाए)

प्रासुक - जीव जिसमें निकल गए हैं अथवा निकाल दिए गए ऐसे पदार्थ प्रासुक कहे जाते हैं।

मर्यादित पदार्थ - जिसमें त्रस जीवों की उत्पत्ति न हुई हो, जो सड़ी-गली, विकृत, दुर्गन्ध युक्त न हो। ऐसी वस्तुएँ मर्यादित कहलाती हैं।

जैन दर्शन का प्रमुख सिद्धान्त ग्रन्थ - षट्खण्डागम

१. कषाय पाहुड़ के बाद षट्खण्डागम ही दिगम्बर आम्नाय का द्वितीय महनीय ग्रन्थ है। जीव स्थान आदि छह खण्डों में विभक्त होने के कारण इसका ''षट्खण्डागम'' नाम प्रसिद्ध हुआ। यह कर्म सिद्धान्त विषयक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के छह खण्डों में पहले खण्ड के सूत्र पुष्पदन्त आचार्य (ई. १०६-१३६) के बनाए हुए हैं। बाद में उनका शरीरान्त हो जाने के कारण शेष चार खण्डों के पूरे सूत्र आचार्य भूतबलि जी (ई. १३६-१५६) ने बनाए थे। छठवाँ खण्ड सविस्तार रूप से आचार्य भूतबलि जी द्वारा बनाया गया है।

२. यह ग्रन्थ छह खण्डों में विभक्त है -

१. जीवट्ठाण (जीवस्थान) - इस प्रथम खण्ड में जीव के गुण-धर्म और नाना अवस्थाओं का वर्णन आठ प्ररूपणाओं में किया गया है।

२. खुद्धाबन्ध(क्षुद्र बन्ध) - इसमें मार्गणा स्थानों के अनुसार कौन जीव बन्धक है और कौन अबन्धक का विवेचन किया है। इस खण्ड में १५८२ सूत्र हैं।

३. बंध सामित्त विचय (बन्ध स्वामित्व विचय) - इस तृतीय खण्ड में कर्मों की विभिन्न प्रकृतियों के बन्ध करने वाले स्वामियों का विचार किया गया है। इस खण्ड में कुल ३२४ सूत्र हैं।

४. वेदना खण्ड - कृति और वेदना नामक प्रथम दो अनुयोगों का नाम वेदना खण्ड है। इस खण्ड में कुल १४४९ सूत्रों(के द्वारा किया) है।

५. वर्गणा खण्ड - इसमें स्पर्श, कर्म और प्रकृति नामक तीन अनुयोग द्वारों का प्रतिपादन किया गया है। कुल ७९१ सूत्रों का वर्णन है।

६. महाबन्ध - प्रकृति बन्ध, प्रदेश बन्ध, स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध का

भावना दिन-रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर वार हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
धर्म का परचार हो, अरु देश का उद्धार हो।
और यह उजड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकास हो।
धर्म के आचार से, हिंसा का जग से ह्लास हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
शान्ति सुख आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥
भावना दिन-रात मेरी....॥
रोग दु:ख भय शोक ना हो, हे प्रभु! परमात्मा।
कर सके कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥
भावना दिन-रात मेरी....॥

विवेचन इस खण्ड में २४ अनुयोग द्वारों में विस्तार पूर्वक किया है।

समग्र जिनागम का प्रतिपादक सूत्र ग्रन्थ - तत्त्वार्थ - सूत्र

१. आचार्य उमास्वामि (द्वितीय शताब्दी) द्वारा रचित संस्कृत भाषा में सूत्र-शैली का यह प्रथम सूत्र ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ का प्राचीन नाम 'तत्त्वार्थ' था। सूत्र शैली में निबद्ध होने से उत्तर काल में इसका तत्त्वार्थ सूत्र नाम पड़ा। इस ग्रन्थ में जिनागम के मूल तत्त्वों को बहुत ही संक्षेप में निबद्ध किया है। इसमें कुल दस अध्याय और ३५७ सूत्र हैं इसे मोक्षशास्त्र भी कहते हैं।

२. इस महान ग्रन्थ में करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का सार समाहित है। साम्प्रदायिकता से रहित होने के कारण यह दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही साम्प्रदायों में कुछ पाठ भेद को छोड़कर समान रूप से प्रिय है। इसके मात्र श्रवण अथवा पाठ का फल एक उपवास बताया है।

वर्तमान में इस ग्रन्थ को जैन परम्परा में वही स्थान प्राप्त है, जो हिन्दू धर्म में ''भगवद् गीता'' को, इस्लाम धर्म में ''कुरान'' को और ईसाई धर्म में ''बाइबिल'' को प्राप्त है। इससे पूर्व प्राकृत भाषा में ही जैन ग्रन्थों की रचना की जाती थी। इस प्रकार तत्त्वार्थ सूत्र का वर्णित विषय जैन धर्म के मूलभूत समस्त सिद्धान्तों से सम्बद्ध है। इसे जैन सिद्धान्त की कुंजी कहा जा सकता है।

भजन

आगे-आगे अपनी ही अरथी के मैं गाता चलूँ।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
पीछे-पीछे दूर तक दिख रही जो भीड़ है।
पंछी शाख से उड़ा, खाली पड़ा नीड़ है॥
सृष्टि सारी देख ले, पर्याय ही अनित्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
जिनको मेरे सुख-दुखों से कुछ नहीं था वास्ता।
उनके ही कांधों पर मेरा कट रहा है रास्ता॥
आँख जब मुंदी तो कोई शत्रु है न मित्र है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
डोरियों से मैं नहीं बंधा मेरा संस्कार था।
एक कफन पर ही मेरा रह गया अधिकार था॥
तुम उसे उतारने जा रहे यह सत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
आपके अनुराग को आज क्या ये हो गया।
जिस क्षण चिता चढ़ा, महान कैसे हो गया॥
जो अनित्य वो ही नित्य, नित्य ही अनित्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
मैं अरूपी गंध दूर उड़ गई थी फूल से।
लहर थी चली गयी थी, दूर मृत्यु कूल से॥
सत्य देख हँस रहा कि जल रहा असत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥
मैं तुम्हारे वंश से बिछुड़ा हुआ हूँ देवता।
आत्म तत्त्व छोड़ कर मैं जगत को देखता॥
ये अनादि काल की भूल का ही कृत्य है।
सिद्ध नाम सत्य है, अरिहन्त नाम सत्य है॥

संस्मरण - सहना सीखो

बच्चे जब अपने काम में मस्त हो जाते हैं तो उन्हें न तो शरीर का ध्यान ही रहता, न ही घर-बार का। बस अपने में मस्त।

बात उस समय की है जब बालक विद्याधर अपने बाल सखाओं के साथ खेलकर वापस अपने घर आते थे। घर आकर अपने परिवार के सदस्यों से कहते आज तो बहुत थक गया-आप लोग मेरे पैर दबाओ तो परिवार के लोग हँसकर जवाब देते-क्या बूढ़ा हो गया जो इतना-सा दर्द भी सहन नहीं कर पाता। सहना सीखो बेटा .... सहना सीखो।

बस उस समय माता-पिता की शिक्षा जीवन में अपनाई एवं आज हर प्रकार के सुख-दुःख अकेले ही सहा करते हैं। क्योंकि

दूसरों का दुःख सहा नहीं, कहा जाता है,
एवं अपना दुःख कहा नहीं, सहा जाता है।

इसीलिए आज वे रोगादि बाईस परीषह समता के साथ सहन किया करते हैं।

समय कैसा चल रहा है, मेरे मित्र कैसे हैं, जहां मैं रहता हूँ वह देश कैसा है, मेरी आमदनी क्या है और मेरे खर्च क्या हैं, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति कितनी है? इन बातों पर जो मनुष्य बार-बार विचार करता है वह श्रेष्ठ है।

पाठ्यक्रम - १६

१६.ब | संसार अथवा मुक्ति का कारण - ध्यान

किसी एक विषय पर मन को केन्द्रित करना ध्यान है।

ध्यान के चार भेद हैं -

1. आर्तध्यान　　2. रौद्रध्यान
3. धर्म्यध्यान　　4. शुक्लध्यान

इनमें आदि के दो ध्यान अशुभ हैं उनसे पाप का बंध होता है। शेष ध्यान शुभ हैं, उनके द्वारा कर्मों का नाश होता है।

1. आर्तध्यान - आर्त का अर्थ है पीड़ा, पीड़ा में कारणभूत ध्यान आर्तध्यान है। शरीर का क्षीण हो जाना, कान्ति नष्ट हो जाना हाथों पर कपोल रख पश्चात्ताप करना, आँसू बहाना इत्यादि और भी आर्तध्यान के बाह्य चिह्न हैं।

आर्तध्यान के चार भेद -

1. इष्ट वियोगज आर्तध्यान - अपने प्रिय पुत्र, स्त्री और धनादिक के वियोग होने पर उनकी प्राप्ति के लिए संकल्प अर्थात् निरन्तर चिन्तन करना इष्ट वियोगज नाम का आर्तध्यान है।

2. अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान - दुखकारी विषयों का संयोग होने पर यह कैसे दूर हो, इस प्रकार विचारते हुए विक्षिप्त चित्त हो चेष्टा करना अनिष्ट संयोगज नाम का आर्तध्यान है।

3. पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान - वातादि विकार जनित शारीरिक वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत् चिन्ता करना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है।

4. निदान आर्तध्यान - पारलौकिक विषय सुख की आसक्ति से, भविष्य में धन-वैभव आदि प्राप्ति के लिए सतत् चिन्तन करना निदान नाम का आर्तध्यान है।

2. रौद्रध्यान - रुद्र का अर्थ क्रूर आशय है इसका कर्म या इसमें होने वाला भाव रौद्रध्यान है।

रौद्रध्यान के चार भेद -

1. हिंसानन्द रौद्र ध्यान - तीव्र कषाय के उदय से हिंसा में आनंद मानना हिंसानन्द रौद्रध्यान है, जैसे जीवों के समूह को अपने द्वारा अथवा अन्य के द्वारा मारे जाने पर हर्ष मनाना (टी.व्ही. आदि में चित्र देखकर भी), हार-जीत सम्बन्धी भावना करना, बैरी से बदला लेने की भावना।

2. मृषानन्द रौद्रध्यान - अनेक प्रकार की युक्तियों के द्वारा दूसरों को ठगने के लिए झूठ बोलने का भाव करते हुए आनन्दित होना मृषानन्द नाम का रौद्रध्यान है। जैसे-छल-कपट, मायाचार द्वारा धन लूटना आदि।

3. चौर्यानन्द रौद्रध्यान - दूसरे के धन को हरण करने का, चिन्तन करना चौर्यानन्द नाम का रौद्रध्यान है। चोरी आदि कार्यों में आनन्द मनाना इसी का रूप है।

4. विषय संरक्षणानन्द रौद्रध्यान - अपने परिग्रह में यह मेरा परिग्रह है। उसकी रक्षा के लिए संकल्प का बार-बार चिंतन करना विषय संरक्षणानन्द नाम का रौद्रध्यान है। क्रूर चित्त होकर बहुत आरम्भ-परिग्रह की रक्षा में मन लगाना, इसी ध्यान का रूप है।

3. धर्म्यध्यान - रागद्वेष को त्याग कर अर्थात् साम्य भाव से जीवादिक पदार्थों का वे जैसे-जैसे अपने स्वरूप में स्थित हैं, वैसे-वैसे ध्यान या चिन्तन करना धर्मध्यान है। पूजा, दान, विनय आदि करना, धर्म से प्रेम करना, चित्त स्थिर रखना आदि धर्मध्यान के बाह्य चिह्न हैं।

धर्मध्यान के चार भेद -

1. आज्ञा विचय धर्मध्यान - वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत आगम को प्रमाण मान करके यह ऐसा ही है इसी श्रद्धान द्वारा अर्थ का पदार्थ का निश्चय करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है। जैसे - पृथ्वी आदि जीव हैं।

2. अपाय विचय धर्मध्यान – दूसरों का दु:ख दूर हो जावे ऐसा निरन्तर चिन्तन करना अपायविचय धर्मध्यान है।
3. विपाक विचय धर्मध्यान – पुण्य-पाप के फल रूप सुख-दु:ख का विचार करना, विपाक विचय धर्मध्यान है। जैसे- गरीब और अमीर व्यक्ति को देख पूर्वकृत पाप-पुण्य का चिन्तन करना।
4. संस्थान विचय धर्मध्यान – तीनों लोक के आकार आदि का चिन्तन करना संस्थान विचय धर्मध्यान है।
4. शुक्लध्यान – ध्यान करते हुए साधु के बुद्धिपूर्वक राग समाप्त हो जाने पर जो निर्विकल्प समाधि प्रकट होती है, उसे शुक्ल ध्यान कहते हैं।

शुक्ल ध्यान के चार भेद –

1. पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान – श्रुतज्ञान का आलम्बन लेकर विविध दृष्टियों से विचार करता है और इसमें अर्थ व्यञ्जन तथा योग का संक्रमण (परिवर्तन) होता रहता है। अत: इसका नाम पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान है।
2. एकत्व वितर्क अवीचार शुक्ल ध्यान – श्रुत के आधार से किसी एक द्रव्य या पर्याय का चिन्तन करना एकत्व वितर्क अवीचार नाम का शुक्लध्यान कहलाता है।
3. सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाती शुक्ल ध्यान- कार्य वर्गणा के निमित्त से आत्मप्रदेशों का अति सूक्ष्म परिस्पन्दन शेष रहने पर सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति ध्यान होता है।
4. व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्ल ध्यान – काय वर्गणा के निमित्त से होने वाले आत्मप्रदेशों का अतिसूक्ष्म परिस्पंदन भी शेष नहीं रहने पर और आत्मा के सर्वथा निष्प्रकम्प होने पर व्युपरत क्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान होता है।

भजन

मात-पिता और गुरु चरणों में प्रणमत बारंबार।
हम पर किया बड़ा उपकार, हम पर किया बड़ा उपकार॥

माता ने जो कष्ट उठाया, वह ऋण कभी न जाय चुकारा।
उंगली पकड़ कर चलना सिखाया, ममता की दी शीतल छाया॥
जिनकी गोद में पलकर हम कहलाते हैं होशियार ....॥
हम पर किया ......॥
पिता ने हमको योग्य बनाया, कमा-कमाकर अन्न खिलाया।
पढ़ा-लिखा गुणवान बनाया, जीवन पथ पर चलना सिखाया
जोड़-जोड़ अपनी सम्पत्ति का, बना दिया हकदार.....॥
हम पर किया ......॥
तत्त्व ज्ञान गुरु के दर्शाया, अंधकार को दूर हटाया।
हृदय में भक्ति दीप जलाकर, प्रभु दर्शन का मार्ग बताया
बिना स्वार्थ ही किया करें, ये तीनों बड़े उदार ......॥
हम पर किया ......॥

आत्मा में अनंत शक्ति

प्रश्न उत्पन्न होता है कि आत्मा में अनंत शक्ति है तो उसकी अभिव्यक्ति क्यों नहीं? कर्म की आवरण शक्ति के कारण अनंत शक्ति वाली आत्मा भी आज चतुर्गति की ठोकर खा रहा है, आधि, व्याधि, उपाधि की भयानक आग में झुलसता रहा है।

एक बर्तन में पानी गर्म किया जा रहा था। नीचे की अग्नि पल-पल पानी को गर्म किए जा रही थी। पास में बैठी बहिन ने सोचा कि इस पानी में अग्नि को बुझाने की शक्ति है फिर वह आज क्यों झुलस रहा है। पूछा-जल देवता! समझ में नहीं आ रहा, जिस अग्नि को बुझाने की तुममें ताकत है, आज वह अग्नि तुम्हें कैसे जला रही है? पानी बोला- बहिन, तुम सुनना चाहती हो तो सुनो, इस अग्नि की कहाँ इतनी ताकत है कि वह मुझे जला सके। मैं एक मिनट में इसे ठंडा कर सकता हूँ पर अफसोस कि बीच में यह बर्तन पड़ा है। बस इसके कारण ही आज मेरा अणु-अणु तप रहा है।

यह रूपक है पानी की कहानी आप सुन चुके। आत्मा की भी यही स्थिति है। जल के समान आत्मा है, अग्नि के सदृश कर्म है और शरीर के सदृश बर्तन है। आत्मा कर्म के निमित्त से रागादि रूप परिणमन करता है, शरीर बर्तन का काम करता है। अत: शरीर की संगति से ही रागादि रूप परिणमन करता है।

अनंत शक्तिशाली आत्मा शरीर व कर्म की संगति से जल के सदृश विभाव रूप परिणमन कर संसार में भटकता है।

तूने जब पहला श्वांस लिया तब माता -पिता तेरे पास थे, और जब वे अंतिम श्वांस लें तब तू उनके पास होना।

भक्तामर स्तोत्र

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्, त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात् ।
धातासि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥25॥

अर्थ : (**विबुधार्चितबुद्धिबोधात्**) देव अथवा विद्वानों के द्वारा पूजित बुद्धि-ज्ञान वाले होने से (**त्वम् एव**) आप ही (**बुद्धः**) बुद्ध हैं। (**भुवनत्रय-शङ्करत्वात्**) तीनों लोकों में शान्ति करने के कारण (**त्वम् एव**) आप ही (**शङ्करः असि**) शंकर हो (**धीर!**) हे धीर! (**शिवमार्ग-विधेर्विधानात्**) मोक्षमार्ग की विधि के करने से (**त्वमेव**) आप ही (**धाता असि**) ब्रह्मा हो और (**भगवन्!**) हे स्वामिन्! (**त्वमेव**) आप ही (**व्यक्तम्**) स्पष्ट रूप से (**पुरुषोत्तमः असि**) मनुष्यों में उत्तम अथवा नारायण हो।

तुभ्यं नमस्त्रि-भुवनार्ति-हराय नाथ!, तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय, तुभ्यं नमोजिन! भवोदधि-शोषणाय ॥26॥

अर्थ : (**नाथ!**) हे स्वामिन्! (**त्रिभुवनार्तिहराय**) तीनों लोकों के दुःखों के हरने वाले (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, (**क्षिति-तलामलभूषणाय**) पृथ्वी तल के निर्मल आभूषण स्वरूप (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, (**त्रिजगतः**) तीनों जगत् के (**परमेश्वराय**) परमेश्वरस्वरूप (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो, और (**जिन!**) हे जिनेन्द्रदेव! (**भवोदधि-शोषणाय**) संसार समुद्र को सुखाने वाले (**तुभ्यम्**) आपके लिए (**नमः 'अस्तु'**) नमस्कार हो।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशैस्, त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्त विविधाश्रय-जात-गर्वैः, स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥27॥

अर्थ : (**मुनीश!**) हे मुनियों के स्वामी (**यदि नाम**) यदि (**निरवकाशतया**) अन्य जगह स्थान न मिलने के कारण (**त्वम्**) आप (**अशेषैः**) समस्त (**गुणैः**) गुणों के द्वारा (**संश्रितः**) आश्रित हुए हो और (**उपात्तविविधाश्रय-जातगर्वैः**) प्राप्त हुए अनेक आधार से उत्पन्न हुआ है अहंकार जिनको ऐसे (**दोषैः**) दोषों के द्वारा (**स्वप्नान्तरे अपि**) स्वप्न के मध्य में भी (**कदाचित् अपि**) कभी भी (**न ईक्षितः असि**) नहीं देखे गए हो तो (**अत्र**) इस विषय में (**कःविस्मयः**) क्या आश्चर्य है ? कुछ नहीं।

उच्चैरशोक-तरु-संश्रित-मुन्मयूख-, माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्-किरणमस्त-तमो-वितानं , बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥28॥

अर्थ : (**उच्चैरशोकतरुसंश्रितम्**) ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित तथा (**उन्मयूखम्**) जिसकी किरणें ऊपर को फैल रहीं हैं, ऐसा (**भवतः**) आपका (**अमलम् रूपम्**) उज्ज्वल रूप (**स्पष्टोल्लसत्किरणम्**) स्पष्टरूप से शोभायमान हैं किरणें जिसकी और (**अस्त-तमो-वितानम्**) नष्ट कर दिया है अन्धकार का समूह जिसने ऐसे (**पयोधर-पार्श्ववर्ति**) मेघ के पास में स्थित (**रवेः बिम्बम् इव**) सूर्य के बिम्ब की तरह (**नितान्तम्**) अत्यन्त (**आभाति**) शोभित होता है।

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे, विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।
बिम्बं वियद्-विलसदंशु-लता-वितानं, तुङ्गोदयाद्रि शिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥29॥

अर्थ : (**मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे**) रत्नों की किरणों के अग्रभाग से चित्र-विचित्र (**सिंहासन**) सिंहासन पर (**तव**) आपका (**कनकावदातम्**) सुवर्ण की तरह उज्ज्वल (**वपुः**) शरीर (**तुङ्गोदयाद्रिशिरसि**) ऊँचे उदयाचल के शिखर पर (**वियद्-विलसदंशुलता-वितानम्**) आकाश में शोभायमान है किरणरूपी लताओं का समूह है जिसका ऐसे (**सहस्त्ररश्मेः**) सूर्य के (**बिम्बम् इव**) मण्डल की तरह (**विभ्राजते**) शोभायमान हो रहा है।

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं, विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारि-धार-, मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥30॥

अर्थ : (**कुन्दावदात-चलचामर-चारुशोभम्**) कुन्द के फूल के समान स्वच्छ हिलते हुए चँवरों की सुन्दर शोभा से युक्त (**कलधौतकान्तम्**) सुवर्ण के समान कान्ति वाला (**तव**) आपका (**वपुः**) शरीर (**उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झरवारिधारम्**) उदीयमान

चन्द्रमा के समान निर्मल झरनों की जलधारा से युक्त (**सुरगिरेः**) सुमेरु पर्वत के (**शात-कौम्भम्**) स्वर्णमयी (**उच्चैस्तटम् इव**) ऊँचे तट के समान (**विभ्राजते**) शोभायमान होता है।

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-, मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम् ।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं, प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥31॥

अर्थ : (**शशाङ्ककान्तम्**) चन्द्रमा के समान सुन्दर (**स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्**) रोक दिया है सूर्य की किरणों के सन्ताप को जिसने तथा (**मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्**) मोतियों के समूह वाली झालर से बढ़ रही है शोभा जिनकी ऐसे (**तव उच्चैःस्थितम्**) आपके ऊपर स्थित (**छत्र-त्रयम्**) तीन छत्र (**त्रिजगतः**) तीन जगत् के (**परमेश्वरत्वम्**) स्वामित्व को (**प्रख्यापयत् 'इव'**) प्रकट करते हुए की तरह (**विभाति**) शोभायमान होते हैं।

गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभाग-, स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्, खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥32॥

अर्थ : (**गम्भीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागः**) गम्भीर और उच्च शब्द से पूर दिया है दिशाओं के विभाग को जिसने, ऐसा (**त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूतिदक्षः**) तीनों लोकों के जीवों को शुभ समागम की सम्पत्ति देने में समर्थ और (**सद्धर्म-राज-जय घोषण-घोषकः**) समीचीन जैनधर्म के स्वामी की जयघोषणा को घोषित करने वाला (**दुन्दुभिः**) दुन्दुभि बाजा (**ते**) आपके (**यशसः**) यश का (**प्रवादी सन्**) कथन करता हुआ (**खे**) आकाश में (**ध्वनति**) शब्द करता है।

समाधि भक्ति

तेरी छत्र छाया प्रभुजी, मेरे सिर पर हो।
मेरा अंतिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥
जिनवाणी रस पान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ ।
आर्य जनों की संगति चाहूँ, व्रत संयम पाऊँ॥
गुणी जनों के सद्‌गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अंतिम १

पर निंदा न मुख से निकले, मधुर वचन बोलूँ।
हृदय तराजू पर हितकारी, संभाषण तोलूँ ॥
आत्म तत्त्व की रहे भावना, भाव विमल कर दो।
मेरा अंतिम २

जिनशासन से प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यातम छोड़ूँ।
चिदानंद चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ ॥
जनम-जनम में, जैनधर्म ये, मिले कृपा कर दो।
मेरा अंतिम ३

मरण समय गुरु पाद मूल हो, संत समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की गंगा नित्य बहे ॥
भव-भव में, संन्यासमरण हो, नाथ हाथ धर दो।
मेरा अंतिम ४

बाल्यकाल से अब तक, मैंने जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभु आप तो, बस इतना फल दो॥
श्वास श्वास अंतिम श्वासों में, णमोकार भर दो।
मेरा अंतिम ५

विषय कषायों को मैं त्यागूं, तजूं परिग्रह को।
मोक्ष मार्ग पर बढ़ता जाऊँ, नाथ अनुग्रह हो॥
तन पिंजर से मुझे निकालो, सिद्धालय घर दो।
मेरा अंतिम ६

भद्रबाहु सम गुरु हमारे, हमें भद्रता दो।
रत्नत्रय संयम की शुचिता, हृदय सरलता दो॥
चन्द्रगुप्त-सी गुरु सेवा का पाठ हृदय भर दो ।
मेरा अंतिम ७

अशुभ न सोचूं, अशुभ न चाहूं, अशुभ नहीं देखूं ।
अशुभ सुनू ना, अशुभ कहूं ना, अशुभ नहीं लेखूं ॥
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो ।
मेरा अंतिम ८

तेरे चरण कमल द्वय जिनवर रहे हृदय मेरे।
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे ॥
पंडित-पंडित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो।
मेरा अंतिम ९

दुःख नाश हो कर्म नाश हो, बोधि लाभ भर दो।
जिन गुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमें भर दो ॥
यही प्रार्थना, यही भावना, पूर्ण आप कर दो।
मेरा अंतिम मरणसमाधि तेरे दर पर हो ॥...१०

ब्रह्मगुलाल मुनि

किसी नगर में ब्रह्मकुमार नाम का एक बहुरूपिया रहता था। वह अनेक प्रकार के रूप धर कर लोगों का मनोरंजन किया करता था। तथा उससे प्राप्त धन से अपनी आजीविका चलाता था। कभी वह शंकर का रूप तो कभी वह गणेश का तो कभी दुर्गा का, कभी भारत माता का, कभी पागल का, भिखारी का, राजाओं आदि का अनेक रूप धारण किया करता। रूप धारण करने पर यह नकली रूप है यह कहना कठिन हुआ करता था। पूरे राज्य में उसकी इस कला की खबर फैल चुकी थी। राज दरबार में राजा ने जब ब्रह्मगुलाल की बात सुनी तो उनका मन भी उत्कंठित हो उठा। उन्होंने ब्रह्मगुलाल को सभा में बुलाया और कहा - तुम हमें भी कोई अच्छा-सा रूप धरकर दिखाओगे।

ब्रह्मगुलाल ने राजा से हाथ जोड़कर निवेदन किया जो आज्ञा आप प्रदान करेंगे वैसा ही होगा। कहिए मैं किसका रूप बनाकर हाजिर होऊँ। तब राजा के साथ सभी सभासद बोल पड़े। क्यों न तुम शेर का रूप बनाकर आओ। तब ब्रह्मगुलाल सहम-सा गया फिर उसने निवेदन किया कि हे राजन्! सिंह के रूप के साथ यदि हिंसत्व जाग्रत हो गया व कुछ अनर्थ हो गया तो आप मुझे एक खून माफ का अभयदान दें तो मैं इस रूप को धर सकता हूँ। राजा द्वारा अभयदान मिलने पर वह तीसरे ही दिन सिंह का रूप धरकर सभा में दहाड़ता हुआ आया और राजा के समक्ष शांत भाव से बैठ गया। उसी क्षण राजा के बाजू में बैठे राजकुमार ने हँसी उड़ाते हुए कहा-अरे ये सिंह नहीं है गधा है। अन्यथा क्या यह इस तरह शांत बैठता। ब्रह्मगुलाल को इतना सुनना था कि उसके भीतर का सिंहत्व जाग उठा मेरी कला का अपमान असहनीय है और दहाड़ता हुआ छलांग लेकर सीधे राजकुमार के ऊपर झपट पड़ा। भयानक प्रहार से भयभीत हुआ राजकुमार ने अपने प्राण त्याग दिए। अब क्या ? सारी प्रजा में सन्नाटा छा गया। राजा भी उस कलाकार को कुछ न कह सका क्योंकि वह पहले ही उसे अभयदान दे चुका था।

इस घटना से राजा बहुत दुःखी रहने लगा। उसका किसी भी कार्य में मन नहीं लगता था। तब मंत्रियों ने कहा-हे राजन्! आप किसी दिगम्बर मुनि का सान्निध्य प्राप्त करें। उनके वचन सुनें निश्चित ही आपका मन हल्का हो जाएगा। क्योंकि गुरु की वाणी शीतल चंदन से भी कई गुना अधिक संताप को हरने वाली होती हैं। तब राजा ने पूछा कि इस समय मुनिराज के दर्शन कहाँ उपलब्ध हो सकेंगे। क्योंकि सभी पर्वतों में रत्न नहीं होते, सभी वनों में चंदन के वृक्ष नहीं होते एवं सभी हाथियों के मस्तक में मोती नहीं होते उसी प्रकार साधुओं का सान्निध्य सर्वत्र नहीं मिल सकता फिर क्या करें। तब मंत्रियों ने सलाह दी। क्यों न ब्रह्मगुलाल को ही बुलाकर उसे मुनि का रूप धरकर आने को कहा जाए। ऐसा ही ठीक होगा। विचारकर ब्रह्मगुलाल को बुलाया गया।

राजा ने जब अपनी बात रखी तो वह सोचने लगा यह तो बहुत कठिन होगा किन्तु राजा की आज्ञा और मेरी परीक्षा की घड़ी है। मुझे कुछ भी हो यह रूप बनाना ही होगा। उसने राजा से कहा कि-हे राजन्! इस रूप को धारण करने के लिए मुझे कुछ समय अपेक्षित है। अतः दो माह बाद मैं आपके समक्ष उपस्थित होऊँगा। आज्ञा लेकर वह वापस चला गया। दो माह बाद राजा दरबार में बैठा था अचानक दिगम्बर मुनिराज को देखकर वह सिंहासन से उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उन्होंने निवेदन कर उच्चासन पर विराजित किया। स्वयं नीचे बैठे। फिर निवेदन करने लगा-हे स्वामिन्! मुझे यथार्थ ऐसा उपदेश प्रदान करें जिससे मेरा दुख दूर हो सके।

मुनिराज बोले-हे राजन् संसार में जितने भी दृश्यमान पदार्थ हैं वे सभी निश्चित ही नष्ट होने वाले हैं, प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए कर्मों के फलों को भोक्ता है। अतः विचार करो जब अपना शरीर ही अपना नही रहता तो अपने से भिन्न पुत्र, स्त्री आदि कैसे अपने हो सकते हैं। अतः सारे विकल्प जालों को छोड़ तुम निजात्मा की खोज में अपने उपयोग को लगाओ क्योंकि वह ही शाश्वत एवं अपनी वस्तु है। मुनि के वचन सुन राजा को संतोष हुआ, उसके मन में संसार के प्रति वैराग्य एवं आत्म तत्त्व के प्रति रुचि जाग्रत होने लगी। राजा ने साधु को नमस्कार कर कहा- आपके वचनामृत से निश्चित ही मेरे मन का बोझ हल्का हुआ। धन्य हैं आप और आपकी कला। ऐसा कहते हुए उसने मंत्री को संकेत किया कि कलाकार को मुँह मांगा पारितोषक प्रदान किया जाए। इतना सुनते ही ब्रह्मगुलाल मुनि ने पिच्छी कमण्डलु उठाया और महल के बाहर जाने लगे। जब सैनिकों ने रोका और पूछा क्या कारण है, आप यूँ ही क्यों चले? तब मुनिराज बोले - हे राजन्! दुनिया के कितने ही रूप बदले जा सकते हैं, किन्तु यह दिगम्बर रूप ऐसा रूप है जिसे एक बार धारण करने के बाद बदला नहीं जा सकता। इतना कहकर वे वन की ओर चले गए और आत्मासाधना में लीन हो गए।

पाठ्यक्रम - १७

१७.अ श्रावक के विकास का क्रम- प्रतिमा विज्ञान

आत्म कल्याण का इच्छुक कोई व्यक्ति जब गुरु के पास पहुँचता है तब सर्वप्रथम गुरु उसे पाँच पापों के पूर्ण त्यागरूप महाव्रतों का उपदेश देते हैं। वह भव्यात्मा शक्तिहीनता तथा चारित्रमोहनीय कर्म के उदय वशीभूत हो यदि सकल संयम धारण नहीं कर पाता है तो उसे श्रावक के योग्य व्रतों / धर्म का उपदेश दिया जाता है।

श्रावक शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है श्र, व, क । इसमें 'श्र' शब्द श्रद्धा का, 'व' विवेक का तथा 'क' कर्त्तव्य का प्रतीक है अर्थात जो श्रद्धालु और विवेकी होने के साथ - साथ कर्त्तव्य निष्ठ हो वह श्रावक है।

श्रावक के तीन भेद कहे गए हैं -

१. पाक्षिक

२. व्रतिक अथवा नैष्ठिक

३. साधक

समय का मरहम हर घाव को भर देता है।
रहम से सहने वाला हर जुल्म को सह लेता है।।
संयम को धर लेने वाला सत्य को पा जाता है।
समता को पाने वाला संसार से तर जाता है।।

पाक्षिक श्रावक

जो पाक्षिक श्रावक असि, मसि, कृषि, शिल्प, सेवा और वाणिज्य रूप गृहस्थों के योग्य कार्यो को करता हुआ जिनेन्द्र भगवान का पक्ष रखता है, शक्ति को न छिपाते हुए पाँच पापों के त्याग का अभ्यास करता है, सप्त व्यसन का त्याग करता है, अष्ट मूलगुणों को धारण करता है तथा कुलाचार का पालन करता हुआ रात्रि भोजन का त्याग करता है, पानी छानकर पीता है एवं प्रतिदिन देव दर्शन करता है। किसी भी निमित्त से ''संकल्प पूर्वक त्रस जीवों की हिंसा नहीं करूंगा'' इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके मैत्री, प्रमोद आदि भावनाओं से सहित होते हुए हिंसा का त्याग करना पक्ष है और इस पक्ष सहित श्रावक पाक्षिक श्रावक कहलाता है।

व्रतिक अथवा नैष्ठिक श्रावक

व्रतधारी श्रावक नैष्ठिक श्रावक कहलाता है। पूरी निष्ठा से व्रतों का पालन करने वाला, श्रावक की दार्शनिक आदि ग्यारह प्रतिमाओं (संयम स्थान) को धारण करने वाला पीत, पद्म और शुक्ल लेश्या से युक्त श्रावक, नैष्ठिक श्रावक'' कहा जाता है।

ग्यारह प्रतिमा उत्तरोत्तर विकास की श्रेणियाँ हैं जिनके नाम क्रमश: दर्शन, व्रत, सामायिक, प्रोषधोपवास, सचित विरत, दिवा मैथुन त्याग अथवा रात्रि भुक्ति विरत, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, परिग्रह त्याग, अनुमति त्याग तथा उद्दिष्ट त्याग है।

१. **दर्शन प्रतिमा** - पाक्षिक श्रावक के आचरणों के संस्कार से निश्चल और निर्दोष हो गया है सम्यग्दर्शन जिसका ऐसा संसार, शरीर भोगों से अथवा संसार के कारणभूत भोगों से विरक्त, पञ्च परमेष्ठी के चरणों का भक्त, मूलगुणों में से अतिचारों का दूर करने वाला, व्रतिक आदि पदों को धारण करने में उत्सुक तथा शरीर को स्थिर रखने के लिए न्यायाकूल आजीविका को करने वाला व्यक्ति दर्शन प्रतिमाधारी माना गया है।

२. **व्रत प्रतिमा** - पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों का निरतिचार पालन करने वाला व्रत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। इस प्रकार बारह व्रतों का पालन द्वितीय व्रत प्रतिमा से प्रारम्भ होता है। बारह व्रतों का वर्णन आगे किया जाएगा।

३. **सामायिक प्रतिमा** - पूर्वगृहीत व्रतों के साथ तीनों सन्ध्याओं में कम से कम 48 मिनट तक सर्व संकल्प विकल्पों को छोड़ कर आत्म चिन्तन करने वाला सामायिक प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

४. **प्रोषधोपवास प्रतिमा** - पूर्व की तरह पर्व के दिनों में उपवास को व्रत के रूप में करने वाला श्रावक प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी कहलाता है। पूर्व में वह व्रत को अभ्यास के रूप में करता था।

५.	**सचित्त विरति** – सचित्त पदार्थों का त्याग कर साग-सब्जी आदि वनस्पति को अग्नि से संस्कारित करके खाने वाला पंचम प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। यह पानी को भी उबालकर ही पीता है।

६.	**रात्रि भुक्ति त्यागी अथवा दिवा मैथुन त्यागी** – छटवीं प्रतिमा को धारण करने वाला श्रावक मन-वचन-काय से रात्रि भोजन का त्याग करता है तथा रात्रि भोजन की अनुमोदना भी नहीं करता। अथवा दिन में मन-वचन काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करता है।

७.	**ब्रह्मचर्य प्रतिमा** – पूर्वोक्त संयम के माध्यम से अपने मन को वश में करता हुआ मन-वचन-काय से स्त्री मात्र के संसर्ग का त्याग करने वाला श्रावक ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी कहलाता है।

८.	**आरम्भ विरत प्रतिमा** – ब्रह्मचारी बन जाने के बाद संसार के कार्यों से उदासीन होता हुआ सभी प्रकार के व्यापार, कृषि कार्य, आरम्भ आदि का त्याग करने वाला आरम्भ विरती श्रावक कहलाता है।

९.	**परिग्रह विरत प्रतिमा** – पहले की आठ प्रतिमाओं का पालन करने वाला श्रावक जब अपनी जमीन-जायजाद से अपना स्वामित्व छोड़ देता है, उद्योग धन्धा पुत्रों को सौप कर गृहस्थ सम्बन्धी दायित्व से मुक्त हो जाता है। वह परिग्रह विरत प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है। यह श्रावक घर में रहता हुआ, पुत्रों द्वारा सलाह मांगने पर उन्हें सलाइ दे सकता है।

१०.	**अनुमति**- विरत प्रतिमा घर-गृहस्थी एवं व्यापार कार्यो में किसी भी प्रकार के परामर्श, अनुमति देने का त्याग करने वाला अनुमति-विरत श्रावक कहलाता है। वह प्राय: घर में न रहकर मंदिर चैत्यालय में रहता है और अपना समय स्वाध्याय चिन्तन आदि में ही व्यतीत करता है तथा अपने घर एवं अन्य किसी साधर्मी बन्धु का निमन्त्रण मिलने पर ही भोजन ग्रहण करता है।

११.	**उद्दिष्ट त्याग** – यह श्रावक की सर्वोत्कृष्ट भूमिका है। इस भूमिका वाला साधक गृह त्याग कर मुनियों के पास रहने लगता है तथा भिक्षावृत्ति से भोजन करता हुआ, जीवन यापन करता है। इस प्रतिमाधारी के दो भेद कहे गए हैं – क्षुल्लक व ऐलक।

इस प्रकार दार्शनिक से लेकर उद्दिष्ट त्यागी तक नैष्ठिक श्रावक के ग्यारह भेद हैं। पहली से छटवीं प्रतिमा तक के श्रावक जघन्य, सातवीं से नवमीं तक मध्यम एवं दशवीं और ग्यारहवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक कहलाते हैं।

३. साधक श्रावक –

जीवन के अन्त में मरण काल सम्मुख उपस्थित होने पर भोजन पानादि का त्याग कर विशेष प्रकार की साधनाओं द्वारा सल्लेखना पूर्वक देह-त्याग करने वाले श्रावक साधक श्रावक कहलाते हैं। सल्लेखना में क्रमश: शरीर और कषायों को कृश किया जाता है।

इस प्रकार श्रावक क्रमश: पापों से बचता हुआ धर्म मार्ग में प्रवृत्त होकर अन्त में समाधिमरण को प्राप्त होता हुआ सोलह स्वर्गों के वैभव को प्राप्त होता है। तथा वहाँ पर प्रभुभक्ति एवं सम्यक्त्व की आराधना करता हुआ काल व्यतीत कर पुन: मनुष्य जन्म धारण करता है। एवं आत्म शक्ति को संचित कर मुनिव्रत को स्वीकारता हुआ समस्त कर्मो का क्षय कर मुक्ति प्राप्त करता है।

जैनगीता – समणसुत्तं

जैन धर्म के विभिन्न ग्रन्थों से ग्रहण की गई गाथाओं का संकलन समणसुत्तं के नाम से क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी द्वारा किया गया था। इस ग्रन्थ की रचना को भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण-वर्ष के अवसर पर एक बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया गया। आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा के फलस्वरूप दिनांक २९-३० नवम्बर, १९७४ को दिल्ली में वाचना हुई, जिसमें ग्रन्थ का पारायण किया गया। ग्रन्थ के पारायण के लिए चार बैठक हुई, जिसमें चारों बैठकों को आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज, आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज, आचार्यश्री तुलसीजी, आचार्य श्री विजय समुद्रसूरि जी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। चारों बैठकों की अध्यक्षता चारों आम्नायों के प्रमुख उपाध्याय मुनि श्री विद्यानन्दीजी, मुनि श्री सुशीलकमार जी, मुनि श्री नथमल जी एवं मुनि श्री जनकविजय जी ने की।

जैनधर्म के सभी सम्प्रदायों के मुनियों तथा श्रावकों का यह सम्मिलन विगत २००० वर्षों के पश्चात् पहली बार देखने में आया था।'श्रमण-सूक्तम्' जिसे अर्ध मागधी में 'समणसुत्तं' कहते हैं। इसमें ७५६ गाथाएँ हैं। ७ का आंकड़ा जैनों को बहुत प्रिय है। ७ और १०८ को गुणा करने पर ७५६ बनता है। सर्वसम्मति से इतनी गाथाएँ लीं।

इस ग्रन्थ में चार खण्ड हैं- १. ज्योतिर्मुख, २. मोक्षमार्ग, ३. तत्त्वदर्शन, ४. स्याद्वाद। इसमें ४४ प्रकरण हैं।

भक्तामर स्तोत्र

मन्दार- सुन्दर- नमेरु- सुपारिजात-, सन्तानकादि- कुसुमोत्कर- वृष्टि- रुद्धा ।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रपाता, दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥33॥

अर्थ : (गन्धोदबिन्दु-शुभमन्दमरुत्प्रपाता) सुगन्धित जल की बूँदों और सुखकर मन्द हवा के साथ गिरने वाली **(उद्धा)** श्रेष्ठ और **(दिव्या)** मनोहर **(मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टिः)** मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पवृक्षों के फूलों के समूहों की वर्षा **(ते)** आपके **(वचसाम्)** वचनों की **(ततिः वा)** पंक्ति की तरह **(दिवः)** आकाश से **(पतति)** पड़ती है/गिरती है।

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम सौम्याम् ॥34॥

अर्थ : (लोकत्रये) तीनों लोकों में **(द्युतिमताम्)** कान्तिमान् पदार्थों की **(द्युतिम्)** कान्ति को **(आक्षिपन्ती)** तिरस्कृत करने वाली **(प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर-भूरिसंख्या)** उदित होते हुए सूर्यों की निरन्तर भारी संख्या वाली **(दीप्त्या अपि)** कान्ति से भी और **(सोमसौम्याम्)** चन्द्रमा के समान सुन्दर **(ते विभोः)** हे प्रभो! आपके **(शुम्भत्-प्रभावलय-भूरिविभा)** दैदीप्यमान भामण्डल की विशाल कान्ति **(निशाम् अपि)** रात्रि को भी **(जयति)** जीत रही है।

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग विमार्गणेष्टः, सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-, भाषा-स्वभाव-परिणाम गुणैःप्रयोज्यः ॥35॥

अर्थ : (ते) आपकी **(दिव्यध्वनिः)** दिव्यध्वनि **(स्वर्गापवर्ग-गममार्ग-विमार्गणेष्टः)** स्वर्ग और मोक्ष को जाने वाले मार्ग के खोजने के लिए इष्ट **(त्रिलोक्याः)** तीनों लोकों के जीवों को **(सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुः)** समीचीन धर्मतत्त्व के कथन करने में अत्यन्त समर्थ और **(विशदार्थ-सर्वभाषा-स्वभावपरिणाम-गुणैः प्रयोज्यः)** स्पष्ट अर्थ वाली सम्पूर्ण भाषाओं में परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुण से सहित **(भवति)** होती है।

उन्निद्र हेम-नव-पङ्कज पुञ्ज-कान्ती, पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥36॥

अर्थ : (जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्रदेव! **(उन्निद्र -हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ति-पर्युल्लसन्-नखमयूख-शिखाभिरामौ)** खिले हुए सुवर्ण के नवीन कमल समूह के समान कान्ति के द्वारा सब ओर से शोभायमान नखों की किरणों के अग्रभाग से सुन्दर **(तव)** आपके **(पादौ)** दोनों चरण **(यत्र)** जहाँ **(पदानि)** कदम **(धत्तः)** रखते हैं **(तत्र)** वहाँ **(विबुधाः)** देव गण **(पद्मानि)** कमलों को **(परिकल्पयन्ति)** रच देते हैं।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !, धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य ।
यादृक्-प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा, तादृक्-कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥37॥

अर्थ : (जिनेन्द्र!) हे जिनदेव! **(इत्थं)** इस प्रकार **(धर्मोपदेशनविधौ)** धर्मोपदेश के कार्य में **(यथा)** जैसी **(तव)** आपकी **(विभूतिः)** विभूति **(अभूत्)** हुई **(तथा)** वैसी **(परस्य)** किसी दूसरे की **(न 'अभूत्')** नहीं हुई **(प्रहतान्धकारा)** अन्धकार को नष्ट करने वाली **(यादृक्)** जैसी **(प्रभा)** कान्ति **(दिनकृतः)** सूर्य की **('भवति')** होती है **(तादृक्)** वैसी **(विकाशिनः अपि)** प्रकाशमान भी **(ग्रहगणस्य)** अन्य ग्रहों की **(कुतः)** कहाँ से हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती।

श्च्योतन्मदाविल-विलोल कपोल-मूल-, मत्त भ्रमद् भ्रमर-नाद विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभ-मिभ-मुद्धत-मापतन्तं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥38॥

अर्थ : (भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित मनुष्यों को **(श्च्योतन्-मदाविल-विलोल-कपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमर-नादविवृद्ध-कोपम्)** झरते हुए मद जल से मलिन और चञ्चल गालों के मूल भाग में पागल हो घूमते हुए भौंरों के शब्द से बढ़ गया है क्रोध जिसका ऐसे **(ऐरावताभम्)** ऐरावत की तरह **(उद्धतम्)** उद्दण्ड **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(इभम्)** हाथी को **(दृष्ट्वा)** देखकर **(भयम्)** डर **(नो भवति)** नहीं होता।

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त, मुक्ताफल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः ।
बद्ध-क्रमःक्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥39॥

अर्थ : (**भिन्नेभ-कुम्भ-गल-दुज्ज्वल-शोणिताक्त-मुक्ताफल-प्रकर-भूषित-भूमिभागः**) विदारे हुए हाथी के गण्डस्थल से गिरते हुए उज्ज्वल तथा खून से भीगे हुए मोतियों के समूह के द्वारा भूषित किया है पृथ्वी का भाग जिसने ऐसा तथा (**बद्धक्रमः**) छलांग मारने के लिए तैयार (**हरिणाधिपः अपि**) सिंह भी (**क्रमगतम्**) अपने पाँवों के बीच आए हुए ते आपके (**क्रम-युगाचल-संश्रितम्**) चरण युगलरूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर (**न आक्रामति**) आक्रमण नहीं करता।

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं, दावानलं ज्वलित-मुज्ज्वल-मुत्स्फुलिङ्गम् ।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुख-मापतन्तं, त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥40॥

अर्थ : (**त्वन्नामकीर्तनजलम्**) आपके नाम का यशोगान रूपी जल (**कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पम्**) प्रलयकाल की वायु से प्रचण्ड अग्नि के तुल्य (**ज्वलितम्**) प्रज्वलित (**उज्ज्वलम्**) उज्ज्वल और (**उत्स्फुलिङ्गम्**) जिससे तिलंगे ऊपर की ओर निकल रहे हैं, ऐसे तथा (**विश्वं जिघत्सुम् इव**) संसार को भक्षण करने की इच्छा रखने वाले की तरह (**सम्मुखम्**) सामने (**आपतन्तम्**) आती हुई (**दावानलम्**) वन की अग्नि को (**अशेषम्**) सम्पूर्ण रूप से (**शमयति**) बुझा देता है।

विशल्या की कथा

चक्रवर्ती की पुत्री अनंगसरा किसी एक दिन अपनी सखियों के साथ उपवन में झूला झूल रही थी कि आकाश से गुजरते हुए एक विद्याधर ने उसका सुंदर रूप देखा तो उस पर मोहित हो गया। चूँकि उस समय उसकी पत्नी उसके साथ में थी। अतः पत्नि को अपने घर में पहुँचाकर वह पुनः उपवन में आया तथा अनंगसरा का अपहरण कर उसे अपने विमान में बिठाकर नगर की ओर ले जाने लगा। उस समय रास्ते में उसकी पत्नी को देखकर उसने विद्या के द्वारा अनंगसरा को घने जंगल में छोड़ दिया और स्वयं भाग गया।

अनंगसरा बहुत समय तक जंगल में भटकती रही एवं वहीं फल-फूल खाकर जीवन गुजारने लगी। एक दिवस कोई राजा शिकार खेलने आया और उसने अनंगसरा को पहचान लिया और उससे कहा - तुम मेरे साथ चलो। तब उसने कहा - मैंने तो देशव्रत ले लिया है। अब मैं इस जंगल से बाहर नहीं जाऊँगी। अतः आप कष्ट न करें। उन्होंने वापस नगर में पहुँचकर चक्रवर्ती को इस बात की सूचना दी। पुत्री को लाने के लिए चक्रवर्ती सेना सहित जंगल में पहुँचा। उसने क्या देखा कि एक बड़ा - सा अजगर अनंगसरा को निगल चुका है अतः तीरकमान निकालकर अजगर को मारने को उद्यत हुआ। त्यों ही अनंगसरा बोल उठी- हे पिताजी! आप तीर न चलाएँ क्योंकि मेरे समस्त शरीर में विष व्याप्त हो चुका है। अब मेरा बचना सम्भव नहीं। यदि मैं बच भी गई तो इस जंगल के बाहर नहीं जाऊँगी ऐसा मेरा संकल्प है अतः आप व्यर्थ में हिंसा का पाप अपने ऊपर न लें। यह शब्द सुनते ही पिता की आँखों में आँसू आ गए। देखते-देखते अजगर ने उसे पूरा निगल लिया।

धर्मध्यान पूर्वक मरण होने से वह मरकर स्वर्ग गई एवं वहाँ से आकर विशल्या नाम की राजकन्या हुई। उस कन्या के स्नान के जल में वह शक्ति थी कि उसे शरीर पर लगाने से बड़े-बड़े रोग दूर हो जाया करते थे। इसी विशल्या के लक्ष्मण के निकट पहुँचने मात्र से रावण द्वारा फेंकी अभेद्य विजया शक्ति लक्ष्मण के शरीर से भाग गई थी एवं लक्ष्मण को जीवन दान मिला था।

मंदिर की शोभा भगवान से है, रात्रि की शोभा चंद्रमा से है, दिन की शोभा सूर्य से है, वृक्ष की शोभा फूल से है, तो घर की शोभा माता-पिता से है।

आलोचना पाठ

वंदों पांचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करुँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि करन के काज ॥१॥
सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किए अति भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति काजा, तुम सरन लही जिनराजा ॥२॥
इक वे ते चउ इंद्री वा, मनरहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदइ ह्वै घात विचारी ॥३॥
समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ।
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं ॥४॥
शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतै।
तिनकी कहुँ कोलों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी ॥५॥
विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जाय कहीने ॥६॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या विधि मिथ्यात बढ़ायो, चहुँगति मधि दोष उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जो चोरी, परवनिता सों दृग जोरी।
आरंभ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो ॥८॥
सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय-सेवन को।
बहु करम किए मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने ॥९॥
फल पंच उदम्बर खाए, मधु मांस मद्य चित चाए।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, विसयन सेये दुखकारे ॥१०॥
दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निस दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥११॥
अनन्तानुबंधी जु जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिए, सब भेद जु षोडश मुनिए ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम ॥१३॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो ॥१४॥
आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई ॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गई है ॥१६॥
मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसे कहिए, तुम ज्ञान विषै सब पड़ये ॥१७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुना नहिं लीनी ॥१८॥
पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखा तैं पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा-हा! मैं अदयाचारी, बहु हरितकाय जु विदारी।
ता मधि जीवन के खंदा, हम खाए धरि आनंदा ॥२०॥
हा हा! परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
ता मधि जे जीव जु आए, ते हू परलोक सिधाए ॥२१॥
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन सोधि जलायो।
झाडू ले जागां बुहारी, चिंवटी आदिक जीव बिदारी ॥२२॥
जल छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई ॥२३॥
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाए, कोसन के जीव मराए ॥२४॥
अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गरियालैं धूप डराया ॥२५॥
पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरंभ हिंसा साजै।
किए तिसनावश अघ भारी, करुना नहिं रंच विचारी ॥२६॥
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वानी तैं कहिए न जाई ॥२७॥
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै ॥२८॥
तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है ॥२९॥
जो गांवपती इक होवे, सो भी दुखिया दुख खोवै।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३०॥
द्रौपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अंजन से किए अकामी, दुख मेट्यो अंतरजामी ॥३१॥
मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपनो विरद सम्हारो।
सब दोषरहित करि स्वामी, दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥
इंद्रादिक पदवी नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज-पद दीजै ॥३३॥
दोषरहित जिनदेव जी, निजपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय ॥३४॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरि' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिए, चरन शरन आनन्द ॥३५॥

अपने स्वार्थ को छोड़ दीजिये फिर कुछ भी कार्य
कर लिजिये इसे ही सत्वेषु कहते हैं।

पाठ्यक्रम - १७

१७.ब संसार दुःख का मूल कारण - मिथ्यात्व

तत्त्वों पर यथार्थ श्रद्धान नही होना ही मिथ्यात्व है अथवा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु पर श्रद्धान न करना या झूठे देव, शास्त्र गुरु का श्रद्धान करना मिथ्यात्व है।

विपरीत या गलत धारणा का नाम मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व के उदय से जीव को सच्चा धर्म नहीं रुचता है। जैसे-पित्त के रोगी को दूध भी कड़वा लगता है।

मिथ्यात्व के दो भेद होते हैं- गृहीत एवं अगृहीत।

गृहीत मिथ्यात्व - पर के उपदेश आदि से कुदेवादि में जो श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

अगृहीत मिथ्यात्व - अनादिकाल से किसी के उपदेश के बिना शरीर को ही आत्मा मानना व पुत्र, धन आदि में अपनत्व करना, अगृहीत मिथ्यात्व है।

मिथ्यात्व के पाँच भेद भी होते हैं।

१ - विपरीत :- जीवादि पदार्थों में विपरीत मान्यता एवं अधर्म को धर्म मानना ही विपरीत मिथ्यात्व है। जैसे - शरीर को ही आत्मा मानना।

२- एकान्त :- जीवादि पदार्थों में पाए जाने वाले अनेक धर्मों में से एक धर्म को ही स्वीकार करना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे पदार्थ को नित्य मानना।

३- विनय :- सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, एवं अन्य मिथ्या देव, शास्त्र, गुरु, को समान मानना विनय मिथ्यात्व है। जैसे अरिहंत देव तथा अन्य देवों की समान विनय करना।

४- संशय :- सद्-असद् धर्म में सच्चे धर्म का निश्चय नही होना संशय मिथ्यात्व है। जैसे स्वर्ग-नरक होते भी हैं या नहीं।

५- अज्ञान :- जीवादि पदार्थों के समझने का प्रयास न करना अज्ञान मिथ्यात्व है। अथवा पुण्य-पाप का ज्ञान ही नहीं होना। जैसे रात्रि में भोजन करने से पाप का बंध होता है अथवा नहीं।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु को छोड़कर अन्य कुदेव में देव बुद्धि, कुशास्त्र में शास्त्र बुद्धि, कुगुरु में गुरु बुद्धि एवं अधर्म में धर्म बुद्धि का होना 'मूढ़ता' मानी जाती है। इन मूढ़ताओं से युक्त व्यक्ति मिथ्यादृष्टि माना जाता है। इन कुदेव आदि का सहारा पत्थर की नाव के समान संसार समुद्र में डुबाने वाला, घोर दुःखों का कारण है। अत: मूढ़ताओं का संक्षिप्त स्वरूप भी कहा जाता है।

देव-मूढ़ता- जो राग-द्वेष रूपी मल से मलीन (रागी-द्वेषी) है और स्त्री, आभूषण, गदा, तीर-कमान आदि अस्त्र-शस्त्र रूप चिह्नों से जिनकी पहचान होती है, वे कुदेव हैं। वीतराग सर्वज्ञ देव के स्वरूप को न जानते हुए ख्याति, लाभ, पूजा की इच्छा से अथवा भय से कुदेवताओं की आराधना करना देव-मूढ़ता है।

लोक मूढ़ता - धर्म समझकर गंगा-जमुना आदि नदियों में स्नान करना, बालू पत्थर आदि का ढेर लगाना, पर्वत से गिरकर मरना, अग्नि में जल जाना, पृथ्वी, अग्नि, वट वृक्ष, पीपल, तुलसी आदि की पूजा करना लोक मूढ़ता है।

धर्म मूढ़ता - जो राग-द्वेष रूप भाव हिंसा सहित तथा त्रस स्थावर जीवों के घात स्वरूप द्रव्य हिंसा से सहित संसार वर्धक क्रियाएँ हैं, उन्हें कुधर्म कहते हैं। ऐसे कुधर्म में धर्म बुद्धि, आस्था होना धर्म मूढ़ता है।

शास्त्र मूढ़ता - हिंसक यज्ञ, बलि आदि के प्ररूपक शास्त्र, महान पुरुषों को दोष लगाने वाले एवं उनके विकृत रूप को प्रदर्शित करने वाले शास्त्र कुशास्त्र हैं। कुशास्त्र में सत् शास्त्र की बुद्धि होना शास्त्र मूढ़ता है।

गुरु मूढ़ता- जो भीतर से राग-द्वेषादि परिणाम रखते हैं, बाहर धन, अम्बर (वस्त्र) आभूषण धारण करते हैं तथा स्वयं को महात्मा कहते हुए अनेक प्रकार के मिथ्या भेष को धारण करते हैं कुगुरु कहलाते हैं। अज्ञानी लोगों के चित्त में चमत्कार अर्थात् आश्चर्य उत्पन्न करने वाले ज्योतिष, मन्त्रवाद आदि को देखकर वीतराग, सर्वज्ञ द्वारा कहा हुआ जो धर्म है उसको छोड़कर ख्याति लाभ-पूजा के लिए खोटा तप करने वाले, परिग्रह आरंभ और हिंसा सहित, संसार चक्र में भ्रमण करने वाले, पाखण्डी साधु, तपस्वियों का आदर, सत्कार, भक्ति पूजा आदि करना गुरु मूढ़ता है।

शरीर धारी प्राणियों का मिथ्यात्व के समान अन्य कुछ अकल्याणकारी नहीं है।

निमित्त उपादान

जो भी कार्य संपन्न होता है, वह उपादान व निमित्त की मैत्री पूर्वक संपन्न होता है। जैसे अध्यापक पढ़ाने में निमित्त है तो उपादान विद्यार्थी का अपना ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है। एक अध्यापक पक्षपात रहित होकर दो बालकों को शिक्षण देता है। पुस्तक सामग्री दोनों को समान सुलभ है। दोनों श्रम भी करते हैं फिर भी उनमें एक बालक अल्पश्रम से विद्वान बन जाता है और दूसरा बालक अधिक श्रम करने पर भी विद्वान नहीं बन पाता। यह अपनी-अपनी उपादान की योग्यता है। यदि उपादान की योग्यता है तभी निमित्त कोई कार्य कर सकता है अन्यथा नहीं। जैसे- तोते को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है किंतु सौ शिक्षक मिलकर भी उल्लू या बगुले को नहीं पढ़ा सकते।

निमित्त उपादान को उभारता है। निमित्त का भी कार्यसिद्धि में बड़ा योगदान है। घड़ा मिट्टी से ही बनता है। अतः मिट्टी में घड़े बनने की योग्यता है और कुंभकार निमित्त है। पर निमित्त में इतनी शक्ति है जो आकार देना चाहे वह दे सकता है। बड़ा घड़ा बनाना है तो बड़ा बना देगा। सुराही बनाना है तो सुराही बना देगा, पर गीली मिट्टी से ही बना सकेगा। सूखी मिट्टी से घड़ा नहीं बना सकता। बालू का भी घड़ा नहीं बना सकता। यहाँ उपादान की कमी है। निमित्त के अनुसार ही उपादान की शक्ति को परिणमन करना पड़ता है। द्रव्य की उपादान शक्ति निमित्त के अभाव में पंगु है। मिट्टी पंगु है। वह यह नहीं कहती कि मेरा सकोरा बनाओ या मेरा मटका बनाओ। वह तो कहती है कि कुंभकार की जो इच्छा है सो बनाए।

इसी को निमित्त उपादान की मैत्री कहते हैं। उपादान में कार्य होता है निमित्त की सहायता से। उपादान की योग्यता नहीं और निमित्त हजारों हों तो भी कार्य नहीं हो सकता और उपादान की योग्यता है, निमित्त की अनुकूलता नहीं तो भी कार्य संपन्न नहीं होता। जैसे सुमेरु पर्वत के नीचे की मिट्टी निमित्त के अभाव में कभी घट रूप परिणमन नहीं करती।

निमित्त दो प्रकार के होते हैं : (१) प्रेरक निमित्त- अध्यापक, ड्राइवर
(२) उदासीन निमित्त- लाइट,पुस्तक, रोड(सड़क)

भजन

जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए।
जय जिनेन्द्र की ध्वनि से अपना मौन खोलिए॥

सुर असुर जिनेन्द्र की महिमा को नहीं गा सके।
और गौतम स्वामी न महिमा का पार पा सके॥

जय जिनेन्द्र बोलकर जिनेन्द्र शक्ति तौलिए।
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

जय जिनेन्द्र ही हमारा एक मात्र मंत्र हो।
जय जिनेन्द्र बोलने को हर मनुज स्वंतत्र हो॥

जय जिनेन्द्र बोल बोल खुद जिनेन्द्र हो लिए।
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

पाप छोड़ धर्म जोड़, ये जिनेन्द्र देशना।
अष्टकर्म को मरोड़, ये जिनेन्द्र देशना॥

जाग! जाग! जाग! चेतन, बहुकाल सो लिए।
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

हे जिनेन्द्र ज्ञान दो मोक्ष का वरदान दो।
कर रहे है प्रार्थना हम प्रार्थना पर ध्यान दो॥

जय जिनेन्द्र, बोलकर! हृदय के द्वार खोलिए।
जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र जय जिनेन्द्र बोलिए॥

श्वासों की बस्ती में मौत का रहवास है ।
जिन्दगी तो केवल एक विश्वास है ।।

नजरें तेरी बदली तो नजारे बदल गए।
कश्ती ने बदला रुख तो नजारे बदल गए ।।

।। छहढाला ।।

पहली ढाल

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकै॥
(सोरठा)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार॥१॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आप को भरमत वादि॥२॥
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्री तन धार॥३॥
एक श्वास में अठ-दश बार जन्म्यो-मर्‍यो-भर्‍यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥४॥
दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणि, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‍यो सही बहुपीर॥५॥
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशु हति खाये भूर॥६॥
कबहूँ, आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूख-पियास, भारवहन हिम आतप त्रास॥७॥
वध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने।
अति संक्लेश भाव तैं मर्‍यो, घोर श्वभ्रसागर में पर्‍यो॥८॥
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राधश्रोणित वाहिनी, कृमिकुल कलित देहदाहिनी॥९॥
सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरुसमान लोह गलि जाय, ऐसी शीत-उष्णता थाय॥१०॥
तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधुनीरतैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय॥११॥
तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहै, करमजोग तैं नरगति लहै॥१२॥
जननी उदर वस्यौ नव मास, अंग-सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुःख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर॥१३॥
बालपने में ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी रत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखे आपनो॥१४॥
कभी अकाम निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषय चाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुःख सह्यो॥१५॥
जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुःख पाय।
तहँतैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै॥१६॥

दूसरी ढाल (पद्धरि छंद)

ऐसे मिथ्यादृगज्ञानचरण, वश भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥१॥
जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिन माँहिं विपर्ययत्त्व।
चेतन को है उपयोगरूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप॥२॥
पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान॥३॥
मैं सुखी-दुःखी मैं रंक-राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥४॥
तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन॥५॥
शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद विसार।
आतमहित हेतु विरागज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान॥६॥
रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदायक अज्ञान जान॥७॥
इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सुतेह॥८॥
जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषै चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह॥९॥
धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्मजल उपल नाव।
जे रागद्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन॥१०॥
ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भवभ्रमण छेव।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस-थावर मरण खेत॥११॥
जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान॥१२॥
एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥१३॥
जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करन विविधविधि देहदाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे-जे करनी तन करन छीन॥१४॥
ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजालभ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग॥१५॥

दुर्लभ मनुष्य जन्म को जहर आदि खाकर शरीर को खो देना तो आत्मघात है, जो सबसे बड़ा पाप है।

कमल खिलता है दिन में कुमुदनी रात में खिलती, सूर्योदय होने पर खुशी प्रभात से मिलती।।
यह सब खुशियाँ तो नष्ट प्रायः हैं मेरे बन्धुओं, जीवन की सच्ची खुशी तो गुरु के चरणों में ही मिलती है।।

पाठ्यक्रम - १८

१८.अ श्रावक का प्रथम कर्त्तव्य - जिनपूजा

देवाधिदेव चरणे परिचरणं सर्व दुःख निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि, परिचिनुया दादृतो नित्यम॥

श्रावकों के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हुए आचार्य श्री समन्तभद्र जी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में लिखा है - देवों के भी देव ऐसे जिनेन्द्र देव के चरणों की नित्य ही पूजा करना चाहिए। कैसी है वह पूजा? सभी दु:खों को हरण/नष्ट करने वाली, मनवांछित फल को देने वाली एवं तृष्णा को जलाने वाली है। ऐसी परमोपकारी जिन-पूजा के अंग, जिन-पूजा की विधि, प्रकार, जिन पूजक आदि के विषय की इस अध्याय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

पूजा शब्द का अर्थ होता है आराधना करना, अर्चना, स्वागत-सम्मान करना। अत: पूज्य की आराधना में मन, वचन और काय पूर्वक समर्पित होना पूजा है।

जैन दर्शन में व्यक्ति की पूजा नहीं बल्कि व्यक्तित्व (गुणों) की पूजा की जाती है अर्थात् जिनके पास वीतरागता हो ऐसे पंचपरमेष्ठी जिनधर्म, जिनागम, जिनचैत्य और जिनचैत्यालय ये नव देवता ही अष्ट द्रव्य से पूजनीय हैं अन्य कोई नहीं। सम्यक् दृष्टि देवी-देवता सम्मान, जय जिनेन्द्र आदि व्यवहार करने योग्य तो हो सकते हैं किन्तु पूज्यनीय नहीं।

पूजा के मुख्यत: दो भेद हैं - द्रव्य पूजा और भाव पूजा। जल, चन्दनादि अष्ट द्रव्यों से भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र देव की पूजा करना ''द्रव्य पूजा'' है। बिना द्रव्य के मात्र निर्मल भावों के द्वारा जिनेन्द्र देव की स्तुति, भक्ति करना ''भाव पूजा'' है। द्रव्य पूजा में भाव सहित मन-वचन-काय की प्रवृत्ति की मुख्यता होती है, बाह्य पदार्थों का अवलम्बन होता है जबकि भाव पूजा में निवृत्ति की मुख्यता के साथ-साथ निरालम्बता रहती है।

कुछ व्यक्ति धर्म के अर्थ हिंसा करने से तो महापाप होता है, अन्यत्र करने से थोड़ा पाप लगता है ऐसा कहते हैं सो यह आगम का/सिद्धान्त का वचन नहीं है। गृहस्थ की भूमिका में मात्र संकल्पी हिंसा का त्याग होता है, आरंभी, विरोधी और उद्योगी हिंसा का नहीं। दीपक जलाते समय, धूप खेते समय सावधानी रखें तो त्रस जीवों के घात से बच सकते हैं। आचार्यों ने जिन पूजा आदि में होने वाले सावद्य को अल्पदोष कारक एवं बहुपुण्य राशि को देने वाला माना है। मधुर जल से भरे तालाब में नमक की कणिका के समान ही पूजा आदि कार्यों में पाप कर अल्प बन्ध होता है।

आचार्यों ने पूजन के छह अंग कहे हैं - १. अभिषेक, २. आह्वानन, ३. स्थापन, ४. सन्निधिकरण, ५. पूजन, ६. विसर्जन। किन्ही किन्ही आचार्यों ने अभिषेक की क्रिया का पृथक् वर्णन करते हुए पूजा के पाँच अंग भी माने हैं।

अभिषेक

पूरी जिन-प्रतिमा जल से सिंचित हो इस प्रकार जल की धारा भगवान के ऊपर करना ''अभिषेक'' है। अभिषेक पूजा का अनिवार्य अंग है इसके बिना पूजा अधूरी अथवा गलत है।

अभिषेक प्रतिमा की स्वच्छता के उद्देश्य से नहीं अपितु साक्षात् प्रभु का स्पर्शन, परिणामों की विशुद्धता, पापों के क्षय के लिए किया जाता है। जिनबिम्ब से स्पर्शित जल ''गन्धोदक'' कहा जाता है। यह गंधोदक विश्व की आधि - व्याधि समूह का हर्ता, विष एवं ज्वरों का विनाशक एवं मोक्ष लक्ष्मी का प्रदाता है।

आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण

पूजन के अंग रूप आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधिकरण क्रिया वीतरागी अर्हन्त प्रभु के प्रति भावनात्मक समर्पण की क्रिया है। आह्वानन का अर्थ - भाव सहित उल्लासपूर्वक त्रिलोकीनाथ को आमन्त्रित (अवतरित) करने का विनय भाव। यद्यपि जिन्होंने सिद्ध दशा को प्राप्त कर लिया वे प्रभु कभी लौटकर आते नहीं। फिर भी पूजक विनय प्रदर्शन हेतु मंत्र और मुद्रा के द्वारा आह्वानन क्रिया को संपन्न करता है। दोनों हाथों को जोड़कर एक साथ मिलाकर फैलाना, फिर दोनों अंगूठे, दोनों अनामिकाओं के मूल स्थान

में रखना, इससे जो आकृति बनती है, वह आह्वानन मुद्रा कहलाती है। इसे आकर्षणी मुद्रा भी कहते हैं।

स्थापन का अर्थ – सजग/ सतर्क होकर भगवान से ठहरने का आग्रह भाव यहाँ स्थापना का अर्थ पीले चावल आदि में भगवान की स्थापना करने का नहीं है। स्थापनी मुद्रा के द्वारा यह क्रिया संपन्न की जाती है। आकर्षिणी मुद्रा में जो दोनों हथेली ऊर्ध्वमुख थी उन्हे अधोमुख कर देने पर, जो आकृति होती है उसे स्थापनी मुद्रा कहते हैं।

सन्निधिकरण का अर्थ भगवान को हृदय कमल पर विराजमान होने का अनुरोध/श्रद्धा पूर्वक साक्षात् जिनेन्द्र भगवान से निकटता प्राप्त करने का भाव / समर्पण का भाव। सन्निधिकरण मुद्रा के द्वारा यह क्रिया संपन्न की जाती है। दोनो हाथों की मुट्ठी बांधकर रखने से सन्निधीकरण मुद्रा होती है। सन्निधीकरण मुद्रा से हृदय स्पर्श और नमस्कार करना चाहिए।

आह्वानन, स्थापन एवं सन्निधीकरण करने के पूर्व दृष्टि जिन प्रतिमा की ओर रहे एवं मन्त्र पढ़ने तक हाथ जोड़ें तत्पश्चात् मुद्रा बनाते हुए क्रिया का भाव करें। अर्थात् क्रमशः प्रत्येक क्रिया पूर्ण करने के पश्चात् पुनः हाथ जोड़कर अगली क्रिया, मन्त्र पढ़ते हुए प्रारम्भ करें।

आह्वानन – ऊँ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह (सम्बोधन)
अत्र अवतर अवतर संवौषट् (आकर्षण मन्त्र)
आह्वाननम् (आह्वानन मुद्रा)

स्थापन – ऊँ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह (सम्बोधन)
अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः (स्तम्भन मंत्र)
स्थापनम् (स्थापनी मुद्रा)

सन्निधिकरण – ऊँ ह्रीं श्री देव शास्त्र गुरु समूह (सम्बोधन)
अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् (वशीकरण मन्त्र)
सन्निधिकरणम् (सन्निधी करण मुद्रा)

कहो ना सहो
आपे में रहो यही
सही परीक्षा

बदलना हो
पर को ना, निज को
बदलो सही

इसके बाद पूजा करने का संकल्प करने हेतु ठोने में ''संकल्प पुष्प'' क्षेपण करना चाहिए। तीन, पाँच, सात आदि पुष्पों की संख्या का कोई विकल्प नहीं करना चाहिए। क्योंकि हम भगवान की पूजा का संकल्प करके संकल्प पुष्प ठोने पर क्षेपण कर रहे हैं, भगवान को नहीं। बैठकर के पूजन करने वालों को भी आह्वानन आदि क्रिया खड़े होकर करनी चाहिए।

पूजन

जिनेन्द्र भगवान के अनन्त गुणों का स्मरण करके (गुणानुवाद) अष्ट द्रव्य को संकल्प पूर्वक जिनेन्द्र चरणों में समर्पित करना पूजा कहलाती है। पूजन में प्रयोग की जाने वाली अष्ट द्रव्य एवं उसका प्रयोजन क्रमशः निम्न प्रकार है –

1. जल – संसार में परिभ्रमण कराने वाले जन्म–जरा–मृत्यु के क्षय के लिए।
2. चन्दन – संसार का आताप / दुःख मिटाने के लिए।
3. अक्षत – कभी नष्ट न होने वाले ऐसे अक्षय पद की प्राप्ति के लिए।
4. पुष्प – कामवासना के नष्ट करने हेतु।
5. नैवेद्य – क्षुधा रोग के क्षय / विनाश के लिए।
6. दीप – महा मोह रूपी अन्धकार के विनाश हेतु।
7. धूप – अष्ट कर्म के दहन हेतु।
8. फल – महा मोक्ष फल की प्राप्ति हेतु।

आठों द्रव्य को मिलाने से अर्घ बन जाता है। जिसे अमूल्य शिव पद की प्राप्ति हेतु जिनेन्द्र देव के चरणों के समक्ष चढ़ाया जाता है। द्रव्य चढ़ाने का मन्त्र –

ऊँ ह्रीं श्री ---------------- निर्वपामीति स्वाहा।

बीजाक्षरों का अर्थ –

ऊँ – पञ्च परमेष्ठी का वाचक

''...जो जीव
अपनी जीभ जीतता है
दुःख रीतता है उसी का
सुखमय जीवन बीतता है
चिरंजीव बनता वही
और
उसी की बनती वचनावली
स्व-पर-दुःख-निवारिणी
संजीवनी बटी...!''

ह्रीं – चौबीस तीर्थंकर का वाचक

श्री – लक्ष्मी, अनन्त चतुष्टय का वाचक

निर्वपामीति – सम्पूर्ण रूप से समर्पित करना

स्वाहा – पाप नाशक, मंगल कारक, आत्मा की आन्तरिक शक्ति उद्घाटित करने वाला बीजाक्षर।

भावार्थ – पञ्च परमेष्ठी, चौबीस तीर्थंकरों को साक्षी मानकर अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति के लिए, संसार परिभ्रमण के कारण दुष्कर्मों को नष्ट करने के लिए मैं यह द्रव्य सम्पूर्ण रूप से समर्पित करता हूँ। इस प्रकार जिनेन्द्र गुणों की प्राप्ति ही पूजा का उद्देश्य है। पूजा ही परम्परा से मोक्ष का कारण है।

विसर्जन

विश्व शान्ति की मंगल कामना के साथ शान्ति पाठ पढ़कर, पूजा में होने वाली अशुद्धियों, ज्ञाताज्ञात त्रुटियों की क्षमा याचनापूर्वक पूजा कार्य की समाप्ति करना विसर्जन है। विसर्जन का तात्पर्य पूजा संकल्प के विसर्जन से है न कि देवताओं के विसर्जन से।

विनयपूर्वक हाथ जोड़कर भगवान की ओर दृष्टि करते हुए जितने पुष्प हाथ में आए उन्हें ठोने में क्षेपण करना चाहिए। तत्पश्चात् ठोने के संकल्प पुष्पों को निर्माल्य की थाली में ही डाल देना चाहिए। उन्हें अग्नि में नहीं जलाना चाहिए।

चरणों में नमन हमारा-२ करलो गुरुवर स्वीकार।
गुरुवर हमको दीजिये संयम का उपहार।।
गुरुवर हमको दीजिए.......।।
किसी से मत कहना गुरुवर, इक दिल की बात बताते हैं।
घर जाने को मन नहीं करता, पास में जब आ जाते हैं।
वाणी का कहें करिश्मा या, त्याग का कहें प्रताप।।
गुरुवर हमको दीजिए.......।।
तीन बात कुछ दिन से गुरुवर मेरे ह्रदय समाई हैं।
प्रथम तो हो गृह त्याग व दूजी मुनि की मुद्रा भाई है।
तीजा हो मरण समाधि-२, अब दे दो आशीर्वाद।
गुरुवर हमको दीजिए.......।।
गुरुवर की स्तुति करने से, कट जाते जन्मों के पाप।।
मन में भाव बहुत हैं कहने शब्द नहीं हैं मेरे पास।
जयवंत रहें मेरे गुरुवर-२, और जिए हजारों साल।।
गुरुवर हमको दीजिए.......।।
'बासौदा' में विद्या गुरुवर की कुछ कृपा निराली है।
भेज दिया कई शिष्यों को, अब तो गुरुवर की बारी है।
गुरु संघ सहित आ जाएँ-२, मिल सभी करें पुरुषार्थ।।
गुरुवर हमको दीजिए.......।।

विश्व कोशों की परम्परा में अद्वितीय जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

जैन दर्शन के प्रखर तत्त्ववेत्ता क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी द्वारा पाँच भागों में लिखित संकलित जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश की रचना की गई। शब्दकोश एवं विश्व कोशों की परम्परा में यह एक अपूर्व एवं विशिष्ट कृति है।

इसमें जैन तत्त्व का ज्ञान, आचार शास्त्र, कर्मसिद्धान्त, खगोल-भूगोल, पौराणिक चरित्र, ऐतिहासिक व्यक्ति, राजपुरुष, आगम, शास्त्र व शास्त्रकार, धार्मिक एवं दार्शनिक सम्प्रदाय आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित छह हजार से अधिक शब्दों का सांगोपांग वर्णन, आचार्यों द्वारा रचित मूल ग्रन्थों के संदर्भों, उद्धरणों तथा उनके हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है।

इस कोश की एक विलक्षण विशेषता यह भी है कि विषय के भेद-प्रभेदों, करणानुयोग के विभिन्न विषयों तथा भूगोल से सम्बन्धित विषयों को रेखाचित्रों और सारणियों द्वारा सरलतम रूप में प्रस्तुत किया गया है।

जैन शास्त्रों में प्रयुक्त किसी भी पारिभाषिक शब्द का अर्थ एवं विशेष जानकारी प्राप्त करने के लिए हम इसका प्रयोग कर सकते हैं।

शब्दों के अनुक्रमानुसार ही इन्हें चार भागों में विभक्त किया गया है। पाँचवाँ भाग शब्दानुक्रमणिका (इण्डेक्स) के रूप में संकलित है। अकारादि क्रम से अन्वेषणीय शब्द चारों भाग में निम्नानुसार व्यस्थित है-

भाग १- अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः।

भाग २- क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न।

भाग ३- प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व।

भाग ४- श, स, ष, ह।

उन्हें न भूलें
जिनसे बचना है
वक्त- वक्त पर

धर्म, स्वामीसेवा, पुत्र की उत्पत्ति, विद्याभ्यास, औषधिपान, भोजन और दान आदि दूसरों से नहीं कराए जाते, स्वयं अपने हाथ से किए जाते हैं।

पाठ्यक्रम - १८

१८.ब रामायण का सच्चा स्वरूप- जैन रामकथा

राम, रावण, हनुमान, लक्ष्मण आदि महापुरुषों के चरित्र सम्बन्धी अनेक विचारधाराएँ वर्तमान में प्रचलित हैं। लेकिन इनके वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए जैन ग्रन्थों का आधार लेना आवश्यक है। इस पाठ में हम संक्षिप्त कथा के माध्यम से राम-लक्ष्मण, हनुमान आदि का यथार्थ स्वरूप समझेंगे।

मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के काल में उत्पन्न नवमें बलभद्र श्री राम अत्यन्त लोकप्रिय महापुरुष हुए। जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित ग्रंथों के अनुसार संक्षिप्त में रामकथा इस प्रकार है - अयोध्या के राजा दशरथ की चार रानियाँ थीं, जिनके नाम अपराजिता (कौशल्या), सुमित्रा, कैकेयी और सुप्रभा था। बड़ी रानी अपराजिता (कौशल्या) के राम (पद्म) नाम का पुत्र हुआ एवं शेष रानियों के क्रमशः लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न नाम के पुत्र हुए।

यौवनावस्था प्राप्त होने पर राम का विवाह राजा जनक की पुत्री सीता के साथ कर दिया गया। दिगम्बरी दीक्षा धारण करने की भावना होने पर, संसार - शरीर और भोगों से उदासीन हो दीक्षा धारण करने के लिए उद्यत राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राजकुमार राम को राजगद्दी देनी चाही, पर कैकेयी को दिए हुए वचन के कारण भरत को राजा बनाकर स्वयं ने सर्वभूतशरण्य मुनिराज से समस्त परिग्रह को त्याग कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की। उधर राम, लक्ष्मण और सीता, राजा भरत के राज्य की सीमा से बहुत दूर जा दण्डक वन में रहने लगे।

बहुत काल व्यतीत होने पर एक दिन रावण नाम का विद्याधर सीता का रूप लावण्य देखकर मोहित हो गया एवं छल से उसने सीता का हरण कर लिया। पश्चात् सीता की खोज के लिये निकले राम की महिमा सुनकर हनुमान-विद्याधर राम के पास पहुँचा। पश्चात् सुग्रीव, भामण्डल आदि अनेक विद्याधर राजाओं के साथ राम-लक्ष्मण सेना सहित आकाश मार्ग से लंका पहुँचे। वहाँ रावण का छोटा भाई विभीषण भी अधर्म का साथ छोड़कर राम के साथ आ मिला। राम और रावण की सेना के बीच कई दिनों तक भयंकर युद्ध चला, अन्त में रावण ने चक्ररत्न चला दिया तो वह तीन प्रदक्षिणा दे चक्ररत्न लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है एवं लक्ष्मण नारायण घोषित होते हैं और उसी चक्ररत्न से रावण (प्रतिनारायण) का वध कर देते हैं। तदनन्तर विभीषण को लंका का राज्य सौंपकर, कुछ दिन विभीषण के आतिथ्य में रहकर, राम, लक्ष्मण और सीता के साथ वापस अयोध्या नगर में आ जाते हैं।

राजा भरत पूर्व से वैराग्य भाव को धारण किये हुए उदासीन भाव से राजपाट सम्हाल रहे थे। रामचन्द्र जी के वापस आते ही, राम को राजा बनाकर स्वयं दिगम्बर दीक्षा धारण करते हैं। कालान्तर में सीता के विषय में लोकोपवाद होने पर, कुलमर्यादा की रक्षा हेतु राम, गर्भवती सीता का परित्याग कर देते हैं तथा तीर्थयात्रा के दोहले (इच्छा अथवा भाव) को पूर्ण करने के बहाने कृतान्तवक्र सेनापति के द्वारा जंगल में सीता को छुड़वा देते हैं जब कृतान्तवक्र ने सीताजी से कहा माँ रामचन्द्र जी से कोई संदेश कहना है क्या? तब सीता ने कहा "जिस प्रकार प्रजा के कहने पर मुझे छोड़ दिया, उसी प्रकार किसी के कहने पर धर्म को नहीं छोड़ना।" अथानन्तर पुण्य योग से सीता के समीप विद्याधर राजा वज्रजंघ जंगल में पहुँचा एवं सीता को बहिन बनाकर अपने महल में ले जाता है। वहीं सीता ने अनंग लवण और मदनांकुश नामक युगल पुत्रों को जन्म दिया।

सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक से शिक्षा प्राप्त कर बड़े हुए उन पुत्रों को जब अपनी माँ की पूरी कहानी पता चली तो उन्होंने युद्ध हेतु अयोध्या नगरी को घेर लिया। घोर युद्ध हुआ जब राम सेना सहित उन पुत्रों को न जीत सके तब सिद्धार्थ क्षुल्लक नामक नारद जी ने राम लक्ष्मण से उनका रहस्य प्रकट किया। तब उन्होंने युद्ध को छोड़कर पुत्रों को पुकारा और वे पिता-पुत्र आपस में प्रीति को प्राप्त हुए।

समस्त लोगों के समक्ष निर्दोषता सिद्ध करने की शर्त पर राम ने सीता को बुलाया और उनकी अग्नि परीक्षा ली तब अग्निकुण्ड जलकुण्ड बन गया और देवताओं ने सीता जी को सिंहासन पर बैठाकर जय-जय कार किया। परीक्षा में निर्दोष सिद्ध

होने पर राम ने सीता से राजमहल में चलने का आग्रह किया, परन्तु सीता ने कहा अब मैं भवन की ओर नहीं किन्तु वन की ओर जाऊँगी और आत्मकल्याण करूँगी। तब राम की आज्ञा ले सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका से आर्यिका के व्रतों को अंगीकार किया एवं स्त्री पर्याय के छेदन हेतु घोर तप करने लगी। तपस्या करते हुए आयु की पूर्णता निकट जान तैंतीस दिन की सल्लेखना धारण कर समाधिमरण को प्राप्त हो अच्युत स्वर्ग में स्त्री पर्याय से छूट पुरुष पर्याय में प्रतीन्द्र हो गई।

एक दिन भाई-भाई के प्रेम की परीक्षा करने आये देवों के द्वारा ऐसा कहने पर कि राम की मृत्यु हो गई, सुनते ही लक्ष्मण मरण को प्राप्त हो जाते हैं। राम मोह के वशीभूत हो उनके शव को अपने कंधे पर लटकाए छह माह तक पागलों की भाँति भटकते रहे। तदनन्तर देवों के द्वारा अनेक प्रकार से सम्बोधे जाने पर प्रतिबोध को प्राप्त हो, सीता के पुत्र अनंग लवण को राज्य सौंपकर राम ने निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण की। घोर तप करते हुए माघ शुक्ल द्वादशी को श्री राम मुनि ने केवलज्ञान प्राप्त किया एवं आयु कर्म के पूर्ण होने पर अष्ट कर्मों को क्षय कर मांगीतुंगी से मोक्ष को प्राप्त किया।

जैन रामकथा के महत्त्वपूर्ण बिन्दु -

1. रावण राक्षस नहीं था अपितु रावण का जन्म राक्षस वंश में हुआ था। वह विद्याधर तीन खण्ड का स्वामी, अत्यन्त रूपवान, नीति का ज्ञाता विद्वान् था। रावण के बचपन का नाम दशानन था।

2. कुम्भकर्ण की बुद्धि सदा धर्म में लीन रहती थी, वह शूरवीर था, कलाओं में निपुण, पवित्र भोजन करने वाला तथा शयनकाल में ही निद्रा लेने वाला था। रावण की मृत्यु के पश्चात् अनन्तवीर्य केवली के समक्ष मुनि दीक्षा अंगीकार की एवं चूलगिरि पर्वत (बावनगजा) से मोक्ष प्राप्त किया।

3. विभीषण ने राम के साथ मुनि दीक्षा धारण की। रावण की बहिन चन्द्रनखा एवं पत्नी मंदोदरी ने शशिकान्ता आर्यिका से दीक्षा ली।

4. हनुमान बन्दर नहीं सुन्दर महापुरुष वानरवंश के शिरोमणि तद्भव मोक्षगामी थे। अंजना का मामा प्रतिसूर्य जब बालक को अपने निवास हनुरुह द्वीप ले जा रहा था तब बालक विमान से उछलकर नीचे शिला पर गिर पड़ा, जिस शिला पर बालक गिरा वह शिला चूर-चूर हो गई, संभवत: इसलिए उनका एक नाम वज्रांग (बजरंग) पड़ा हो। शैल (पर्वत) की गुफा में जन्म लेने के कारण उनका नामकरण श्रीशैल किया गया, पिता पवनंजय के कारण पवनपुत्र भी कहा जाता है। हनुरुह द्वीप में पालन-पोषण होने से लोक में हनुमान नाम प्रसिद्ध हुआ। इनके शरीर की समस्त क्रियाएँ मनुष्यों के समान ही थीं। वे अत्यन्त सुन्दर, कांति के धारक, कामदेव थे। उन्होंने मुनिदीक्षा धारण की एवं मांगीतुंगी से मोक्ष प्राप्त किया।

5. राजा जनक की रानी विदेहा के गर्भ से एक साथ पुत्र और पुत्री का जन्म हुआ। पुत्र का नाम भामण्डल एवं पुत्री का नाम सीता रखा गया।

6. कर्णरवा नदी के तट पर राम-सीता ने चारण-ऋद्धिधारी मुनियुगल सुगुप्ति और गुप्ति मुनियों को आहार दान दिया। तभी देवों द्वारा पंचाश्चर्य किये गये। उसी समय एक गिद्ध पक्षी आया और मुनि के चरणोदक में लोटने लगा। उस चरणोदक के प्रभाव से उसका शरीर रत्नों की कांति के समान उज्ज्वल एवं पंख सुवर्ण के समान हो गए। उस गिद्ध पक्षी ने मुनिराज के उपदेश से श्रावक के व्रतों को स्वीकार किया एवं राम-लक्ष्मण के साथ रहने लगा। चूँकि उसके शरीर पर रत्न तथा स्वर्ण निर्मित किरण रूपी जटाएँ सुशोभित होती थीं, अत: राम आदि उसे जटायु नाम से पुकारते थे।

7. जब लक्ष्मण रावण के द्वारा अदृश्य शक्ति से मूर्च्छित कर दिए गए थे, तब राजकुमारी विशल्या को समीप लाने पर लक्ष्मण स्वस्थ हो गये और वह शक्ति भाग गई। पश्चात् लक्ष्मण से विशल्या का विवाह कर दिया गया।

8. रावण-मंदोदरी के पुत्र इन्द्रजीत और मेघवाहन ने रावण वध के बाद अनन्तवीर्य महामुनि के पास दीक्षा ली और अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गए।

9. श्री रामचन्द्रजी की आयु 17000 वर्ष की थी एवं शरीर की ऊँचाई सोलह धनुष (64 हाथ=96 फीट) प्रमाण थी। त्रिखण्डाधिपति लक्ष्मण की आयु 12,000 वर्ष की थी एवं शरीर की ऊँचाई सोलह धनुष प्रमाण थी।

10. अनेक विद्याओं को धारण करने वाले, देवों के समान आकाश में गमन करने वाले, अनेक रूप धारण करने में सक्षम विद्याधर श्रेणी में रहने वाले मनुष्य विद्याधर कहलाते हैं, वे भी विद्याओं का त्यागकर मुनि बन सकते हैं एवं कर्म काट मुक्ति पा सकते हैं।

भक्तामर स्तोत्र

रक्तेक्षणं समदकोकिल-कण्ठ-नीलं, क्रोधोद्धतं फणिन-मुत्फण-मापतन्तम् ।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्कस् - त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंसः ॥41॥

अर्थ : (यस्य) जिस **(पुंसः)** पुरुष के **(हृदि)** हृदय में **(त्वन्नाम-नागदमनी)** आपके नाम रूपी नागदमनी-नागवशीकरण औषध [अस्ति] मौजूद है [सः] वह पुरुष **(रक्तेक्षणम्)** लाल-लाल आँखों वाले **(समद-कोकिल-कण्ठनीलम्)** मद युक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले **(क्रोधोद्धतम्)** क्रोध से उद्दण्ड और **(उत्फणम्)** ऊपर को फण उठाये हुए **(आपतन्तम्)** सामने आते हुए **(फणिनम्)** साँप को **(निरस्तशङ्कः 'सन्')** शङ्का रहित होता हुआ **(क्रमयुगेण)** दोनों पाँवों से **(आक्रामति)** लाँघ जाता है।

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद- माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम् ।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥42॥

अर्थ : (त्वत्कीर्तनात्) आपके यशोगान से **(आजौ)** युद्धक्षेत्र में **(वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जित-भीमनादम्)** उछलते हुए घोड़े और हाथियों की गर्जना से भयङ्कर हैं शब्द जिसमें ऐसी **(बलवताम्)** पराक्रमी **(भूपतीनाम् अपि)** राजाओं की भी **(बलम्)** सेना **(उद्यद्-दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धम्)** उगते हुए सूर्य की किरणों के अग्रभाग से वेधे गए **(तमः इव)** अन्धकार की तरह **(आशु)** शीघ्र ही **(भिदाम्)** विनाश को **(उपैति)** प्राप्त हो जाती है।

कुन्ताग्र- भिन्न- गज- शोणित- वारिवाह- वेगावतार- तरणातुर- योध- भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षास्- त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥43॥

अर्थ : (त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणः) आपके चरणरूप कमलों के वन का आश्रय लेने वाले पुरुष **(कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-वेगावतार-तरणातुर-योध-भीम)** भालों के अग्रभाग से विदारे गए हाथियों के खूनरूपी जल के प्रवाह को वेग से उतरने और तैरने में व्यग्र योद्धाओं के द्वारा भयंकर **(युद्ध)** युद्ध में **(विजित-दुर्जय-जेय-पक्षाः)** जीत लिया है कठिनाई से जीतने योग्य शत्रुओं के पक्ष को जिन्होंने ऐसे होते हुए **(जयम्)** विजय **(लभन्ते)** पाते हैं।

अम्भोनिधौ क्षुभित- भीषण- नक्र- चक्र, पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्- त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥44॥

अर्थ : (क्षुभितभीषण-नक्रचक्र-पाठीनपीठभय-दोल्वणवाड-वाग्नौ) क्षोभ को प्राप्त हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और मछलियों के द्वारा भय पैदा करने वाले तथा विकराल है बड़वानल जिसमें ऐसे **(अम्भोनिधौ)** समुद्र में **(रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थित-यानपात्राः)** चञ्चल लहरों के अग्रभाग पर स्थित है जहाज जिनका ऐसे मनुष्य **(भवतः)** आपके **(स्मरणात्)** स्मरण से **(त्रासम्)** भय को **(विहाय)** छोड़कर **(व्रजन्ति)** गमन/यात्रा करते हैं।

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्नाः, शोच्यां दशामुपगता-श्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध-देहा, मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥45॥

अर्थ : (उद्भूत-भीषण-जलोदर-भारभुग्नाः) उत्पन्न हुए भयंकर जलोदर रोग के भार से झुके हुए **(शोच्याम्दशाम्)** शोचनीय अवस्था को **(उपगताः)** प्राप्त और **(च्युतजीविताशाः)** छोड़ दी है जीवन की आशा जिन्होंने ऐसे **(मर्त्याः)** मनुष्य **(त्वत्पाद-पङ्कज्-रजोऽमृत-दिग्धदेहाः)** आपके चरण कमलों की धूलिरूप अमृत से लिप्त शरीर होते हुए **(मकरध्वजतुल्यरूपाः)** कामदेव के समान रूप वाले **(भवन्ति)** हो जाते हैं।

आपाद-कण्ठमुरु-शृंखल-वेष्टिताङ्गा, गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः ।
त्वन्नाम-मन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः, सद्यः स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति ॥46॥

अर्थ : (आपादकण्ठम्) पाँव से लेकर कण्ठपर्यन्त **(उरुशृङ्खल-वेष्टिताङ्गाः)** बड़ी-बड़ी साँकलों से जकड़ा हुआ है शरीर जिनका ऐसे और गाढं अत्यन्त कसकर बाँधी गईं **(बृहन्-निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घाः)** बड़ी-बड़ी बेड़ियों के अग्रभाग से

घिस गई हैं जाँघें जिनकी ऐसे (**मनुजाः**) मनुष्य (**अनिशम्**) निरन्तर (**त्वन्नाम-मन्त्रम्**) आपके नामरूपी मन्त्र को (**स्मरन्तः**) स्मरण करते हुए (**सद्यः**) शीघ्र ही (**स्वयम्**) अपने आप (**विगतबन्धभयाः**) बंधन के भय से रहित (**भवन्ति**) हो जाते हैं।

मत्त-द्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि- संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम् ।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥47॥

अर्थ : (**यः**) जो (**मतिमान्**) बुद्धिमान् मनुष्य (**तावकम्**) आपके (**इमम्**) इस (**स्तवम्**) स्तोत्र को (**अधीते**) पढ़ता है (**तस्य**) उसका (**मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-संग्राम-वारिधि-महोदर-बन्धनोत्थम्**) मत्त हाथी, सिंह, वनाग्नि, साँप, युद्ध, समुद्र, जलोदर और बन्धन आदि से उत्पन्न हुआ (**भयम्**) डर (**भिया इव**) मानो भय से ही (**आशु**) शीघ्र (**नाशम्**) विनाश को (**उपयाति**) प्राप्त हो जाता है।

स्तोत्र-स्त्रजं तव जिनेन्द्र गुणै-र्निबद्धां, भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम् ।
धत्ते जनो य इह कण्ठ-गतामजस्त्रं, तं 'मानतुङ्ग' मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥48॥

अर्थ : (**जिनेन्द्र!**) हे जिनेन्द्रदेव! (**इह**) इस संसार में (**यः जनः**) जो मनुष्य (**मया**) मेरे द्वारा (**भक्त्या**) भक्तिपूर्वक (**गुणैः**) प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि गुणों से [माला के पक्ष में-डोरे से] (**निबद्धाम्**) रची गई [माला पक्ष में-गूँथी गई] (**विविधवर्ण-विचित्रपुष्पाम्**) अनेक प्रकार सुन्दर वर्णरूपी विविध प्रकार के पुष्पों वाली [माला पक्ष में-अच्छे रंग वाले कई तरह के फूलों से सहित] (**तव**) आपकी (**स्तोत्रस्त्रजम्**) स्तोत्ररूपी माला को (**अजस्त्रम्**) हमेशा (**कण्ठगताम् धत्ते**) कण्ठ में धारण करता है (**तम्**) उस (**मानतुङ्गम्**) सम्मान से उन्नत पुरुष को [अथवा स्तोत्र के रचने वाले मानतुङ्ग आचार्य को] (**अवशा लक्ष्मीः**) स्वतन्त्र स्वर्ग-मोक्षादि की विभूति (**समुपैति**) प्राप्त होती है।

उड़ा जा रहा

उड़ा जा रहा है पंछी हरी-भरी डाल से,
रोको रे रोको कोई मुनि को विहार से।
सोचा न कभी हमने आके जगाओगे,
और जगा के हमें यूँ ही छोड़ जाओगे।
दान देना जीवन का फिर से पधार के।।
सरगम की तानें टूटी रूठ गई साँसें।
आके मनाओ गुरुवर, रो रही आँखें।
दीप जलाओ सम्यक दीवाली मनाय के,
पास जो तेरे रहके भजन मैंने गाए,
जीवन में उतने मैंने पुण्य कमाए।
पुण्य की वरषा करो नगर में पधार के,
कम्पित है मन की बगिया हरियाली आज है,
पतझड़ आ न जाए सूखा वृक्ष आज है।
कर्मों का पुण्य नहीं है, जाएँ गुरु आज रे,
गुरु और ऐलक, क्षुल्लक, माता कृपा करो
हो गई जो भी गलती हमको क्षमा करो,
मोह का बंधन हम पर, गिरे आँसू आज रे।

दर्शन - भावना

पुनः दर्शन- पुनः दर्शन-पुनः दर्शन मिले स्वामी।
यही है भावना स्वामी-यही है प्रार्थना स्वामी।।
तुम्हारे दर्श बिन स्वामी, कहाँ हम चैन पाएँगे।
प्रभुवर! याद आयेगी- नयन आँसू बहाएँगे।।
निकाली नीर से मछली, तड़पती चेतना स्वामी।
पुनः दर्शन- पुनः दर्शन-पुनः दर्शन मिले स्वामी।
बिना स्वाति की बूँदों के, पपीहा प्राण तज देगा।
कृपा के मेघ बरसा दो, जिनेश्वर नाम रट लेगा।।
निहारे चातका तुमको, यही रटना रटे स्वामी।
पुनः दर्शन- पुनः दर्शन-पुनः दर्शन मिले स्वामी।
विरह की वेदना स्वामी-तुम्हें कैसे सुनाएँ हम।
चाँद बिन ज्यों चकोरे सा-हमारा आज ये तन-मन।।
शिशु माता से बिछड़ा ज्यों, रुदन करता रहे स्वामी।
पुनः दर्शन- पुनः दर्शन-पुनः दर्शन मिले स्वामी।
नहीं सुर सम्पदा चाहूँ - नहीं मैं राजपद चाहूँ।
यही है कामना मेरी, प्रभु तुमसा ही बन जाऊँ
मिले निर्वाण न जौ लों, रहो नयनों के पथगामी।
पुनः दर्शन- पुनः दर्शन-पुनः दर्शन मिले स्वामी।।

मनुष्य के लिये जीवन में सफलता का रहस्य हर आने वाले अवसर के लिये तैयार रहना एवं निष्कपट गुण ग्राहकता है।

अभ्यास

अ. प्रश्नों के उत्तर लिखिए -

१. शाकाहार का क्या अर्थ है ?
२. वनस्पति भी जीव होने से क्या मांसाहार के समान है ?
३. षट्खण्डागम के छः खण्ड कौन-कौन से हैं ?
४. हिंसानन्द रौद्र ध्यान किसे कहते हैं ?
५. शुक्ल ध्यान के चार भेद कौन-कौन से हैं ?
६. ब्रह्मगुलाल मुनि क्यों बने ?
७. ग्यारह प्रतिमा कौन-कौन सी हैं ?
८. दर्शन प्रतिमा का क्या स्वरूप है ?
९. विशल्या ने पूर्व में कौन सा पुण्य किया था ?
१०. तीन मूढ़ता का नाम एवं स्वरूप बताइए ?
११. अगृहीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?
१२. निमित्त उपादान की मैत्री किसे कहते हैं ?
१३. अभिषेक और गन्धोदक किसे कहते हैं ?
१४. स्थापना का क्या अर्थ है वह कैसे की जाती है ?
१५. आठ द्रव्य और उसके चढ़ाने का क्या फल है ?
१६. जिनेन्द्र सिद्धान्त कोश में किस विषय का वर्णन है ?
१७. राजा दशरथ की कितनी रानियां और उनके कितने पुत्र थे ?
१८. हनुमान जी का वास्तविक परिचय क्या है ?

ब. श्लोक एवं छंदों को पूर्ण करो।

१. इत्थं .... विकाशिनोऽपि।
२. जलमल .... उपाई॥
३. पाप छोड़ .... देशना।
४. सेमर .... थाय ॥
५. जो ख्याति .... छीन ।
६. आपके .... अनित्य है॥
७. तत्वज्ञान .... बड़े उदार ।
८. सिंहासने................ सहस्र रश्मे॥
९. भद्रबाहु .... दृश्य भर दो।
१०. तीन बात .... आशीर्वाद॥

स. अर्थ लिखिये।

१. भक्तामर श्लोक नं. ३१, ३६, ४५ ।

द. हां या न में उत्तर दें।

१. मांस कभी भी प्रासुक नहीं होता।
२. दही अभक्ष्य है।
३. तत्त्वार्थ सूत्र में कुल ३५७ सूत्र हैं।
४. परलोक की चिंता निदान है।
५. पुण्य-पाप के फलों का चिंतन अपाय विचय धर्म ध्यान है।
६. ब्रह्म गुलाल ने वैराग्य होने पर दीक्षा ली थी।
७. दसवीं प्रतिमाधारी उत्कृष्ट श्रावक नहीं है।
८. मिथ्यात्व के समान अन्य कुछ कल्याणकारी नहीं है।
९. मिथ्यात्व के समान अन्य कल्याणकारी कोई नहीं है।
१०. रावण के दस सिर नहीं थे।

इ. अन्यत्र ग्रंथों से खोजें, ज्ञान बढ़ाएँ, पढ़ें और पढ़ाएँ।

१. राजसिक, तामसिक और सात्विक आहार किसे कहते हैं ?
२. अण्डा शाकाहारी नहीं है एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, क्यों ?
३. पशु से उत्पन्न होने पर भी दूध शाकाहारी है क्यों ?
४. दही भक्ष्य है वैज्ञानिक दृष्टि से सिद्ध करें ?
५. शाकाहार में प्रसिद्ध पुरुषों के नाम बताएं ?
६. पिण्डस्थ आदि चार ध्यान का स्वरूप बताएँ ?
७. आलोचना पाठ का अर्थ क्या है बताएँ ?
८. पूजा के अन्य भेद कौन-कौन से हैं ?
९. भक्तामर स्तोत्र की रचना का इतिहास क्या है ?
१०. सचित्त-अचित्त पूजा का क्या अर्थ है ?

**''सा...रे ग...म यानी
सभी प्रकार के दुःख
प...ध यानी पद - स्वभाव
और
नि यानी नहीं,
दुःख आत्मा का स्वभाव - धर्म
नहीं हो सकता।''** (पृ. 305)

पाठ्यक्रम - १९

१९ अ श्रमणों की चमत्कारिक शक्ति- चौसठ ऋद्धियाँ

ऋद्धि- तपश्चरण के प्रभाव से योगीजनों को चमत्कारिक शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उन्हें ऋद्धियाँ कहते हैं। मुख्य रूप से ऋद्धियाँ आठ होती हैं। उनके उत्तर भेद चौसठ होते हैं। ऋद्धियों के कार्य व शक्ति इस प्रकार हैं-

बुद्धि ऋद्धि

१. अवधिज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें बिना किसी बाह्य आलम्बन के मर्यादापूर्वक रूपी पदार्थों को जानने की शक्ति होती है।

२. मनः पर्ययज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें अवधिज्ञान बुद्धि ऋद्धि की तरह मर्यादापूर्वक दूसरों के मनोगत अर्थ को जानने की शक्ति होती है।

३. केवलज्ञान बुद्धि ऋद्धि - जिसमें समस्त द्रव्य और उनकी अनंत पर्यायों को वर्तमान पर्याय की तरह स्पष्ट जानने की शक्ति होती है।

४. बीज बुद्धि ऋद्धि - एक ही बीज पद को ग्रहण कर उस पद के आश्रय से सम्पूर्ण श्रुत का विचार करने वाली होती है।

५. कोष्ठ बुद्धि ऋद्धि - नाना प्रकार के ग्रन्थों में से विस्तारपूर्वक चिह्न सहित शब्द रूप बीजों को अपनी बुद्धि में ग्रहण कर उन्हें मिश्रण के बिना बुद्धि रूपी कोठे में धारण करने की शक्ति होती है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

लोक षट् द्रव्यात्मक है। 'सत् द्रव्य लक्षण' द्रव्य सत् स्वरूपी है। 'उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्' सत् उत्पाद व्यय ध्रौव्य से सहित है।

उत्पाद : नवीन पर्याय की उत्पत्ति

व्यय : पूर्व पर्याय का विनाश

ध्रौव्य : पूर्व पर्याय का विनाश व नवीन पर्याय का उत्पाद होने पर भी अपने अनादि स्वभाव को नहीं छोड़ना

उत्पाद : घट पर्याय का — **उत्पाद :** दही पर्याय की उत्पत्ति
व्यय : पिंड पर्याय का — **व्यय :** दूध का विनाश
ध्रौव्य : मिट्टी — **ध्रौव्य :** गोरस दोनों अवस्था में रहा

६. पदानुसारी बुद्धि ऋद्धि- ग्रन्थ के एक पद को ग्रहण कर संपूर्ण ग्रन्थ को ग्रहण करने वाली ऋद्धि है।

७. संभिन्न श्रोतृत्व बुद्धि ऋद्धि - श्रोतेन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र से संख्यात योजन बाहर स्थित दसों दिशाओं के मनुष्य एवं तिर्यन्चों की वाणी को एक साथ सुनकर प्रत्युत्तर देने वाली बुद्धि होती है।

८. १२. दूर स्पर्शत्व आदि पाँच बुद्धि ऋद्धियाँ- अपनी पृथक्-पृथक् स्पर्शनादि इन्द्रियों के उत्कृष्ट विषय से बाहर संख्यात योजन में स्थित तत्-तत् संबंधी विषयों को जान लेने की क्षमता को प्राप्त होने वाली बुद्धि का होना।

१३. दशपूर्वित्व बुद्धि ऋद्धि- दस पूर्वों का ज्ञान कराने वाली बुद्धि।

१४. चतुर्दश पूर्वित्व बुद्धि ऋद्धि - चौदह पूर्वों का ज्ञान कराने वाली बुद्धि। यह श्रुत पारंगत श्रुत केवलियों के होती है।

१५. अष्टांग महानिमित्त बुद्धि ऋद्धि- नभ, भौम, अंग, स्वर, व्यंजन, लक्षण चिह्न और स्वप्न इन आठ निमित्तों से त्रिकाल का ज्ञान कराने वाली बुद्धि।

१६. प्रज्ञाश्रमण बुद्धिऋद्धि- अध्ययन के बिना ही चौदह पूर्वों के अर्थ का निरूपण करने वाली बुद्धि।

१७. प्रत्येक बुद्धि ऋद्धि- गुरु के उपदेश के बिना ही संयम-तप में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि।

१८. वादित्व बुद्धि ऋद्धि - वाद के द्वारा इन्द्र के पक्ष को भी निरस्त कराने में समर्थ बुद्धि।

विक्रिया ऋद्धि

१. अणु के बराबर सूक्ष्म शरीर बनाने की क्षमता अणिमा विक्रिया ऋद्धि है।

२. मेरु के बराबर बड़ा शरीर बनाने की क्षमता महिमा विक्रिया ऋद्धि है।

३. वायु से भी हल्का शरीर करने की क्षमता लघिमा विक्रिया ऋद्धि है।

४. वज्र से भी भारी शरीर करने की क्षमता गरिमा विक्रिया ऋद्धि है।

सामायिक में तन कब और क्यों हिलता देखो

५. भूमि पर स्थित रहकर अंगुलि के अग्रभाग से सूर्य-चन्द्रमा, मेरु, शिखर आदि को स्पर्श करने की क्षमता प्राप्ति विक्रिया ऋद्धि है।

६. जल के समान पृथ्वी पर तथा पृथ्वी के समान जल पर गमन करने की क्षमता प्राकाम्य विक्रिया ऋद्धि है।

७. सब जगत् में प्रभुत्व बने, जिससे वह ईशित्व विक्रिया ऋद्धि है।
८. समस्त जीव समूह को वश में करने की क्षमता वशित्व विक्रिया ऋद्धि है।
९. शैल, वृक्षादि के मध्य में होकर आकाश के समान गमन करने की क्षमता अप्रतिघात विक्रिया ऋद्धि है।
१०. एक साथ अनेक रूप 'घोड़ा, गायादि' बनाने की क्षमता कामरूपित्व ऋद्धि है।
११. अदृश्य हो जाने की क्षमता अन्तर्धान विक्रिया ऋद्धि है।

क्रिया ऋद्धि

१. आसन लगाकर बैठे अथवा खड़े हुए भी आकाश में गमन करने की क्षमता नभस्तलगामित्वचारण क्रिया ऋद्धि है।
२. जलकायिक जीवों को बाधा न पहुँचाते हुए इच्छानुसार जल, कुहरा, ओस, बर्फादि में गमन करने की क्षमता जलचारणत्व क्रिया ऋद्धि है।
३. चार अंगुल प्रमाण पृथ्वी को छोड़कर आकाश में घुटनों को मोड़े बिना बहुत योजनों तक गमन करने की क्षमता जंघाचारण क्रिया ऋद्धि है।
४. फल , पत्र तथा पुष्पादि में स्थित जीवों अथवा उनके आश्रित जीवों की विराधना न करते हुए उनके ऊपर पैर रखकर चलने की क्षमता फल पत्र पुष्प चारण क्रिया ऋद्धि है।
५. अग्नि शिखा में स्थित जीवों की विराधना न करके उन पर चलने तथा धुएँ का सहारा ले ऊपर चढ़ने की शक्ति अग्नि धूम चारण क्रिया ऋद्धि है।
६. जलकायिक जीवों को बाधा पहुँचाए बिना मेघ पर तथा बरसती जलधारा पर चलने की क्षमता मेघ चारण क्रिया ऋद्धि है।
७. मकड़ जाल के तंतु अथवा वृक्ष के तन्तुओं पर जीवों को बाधा पहुँचाए बिना चलने व चढ़ने की क्षमता तन्तु चारण क्रिया ऋद्धि है।
८. सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह की किरणों का अवलम्बन ले योजनों तक गमन करने की क्षमता ज्योतिष चारण क्रिया ऋद्धि है।
९. वायु की पंक्ति के सहारे कोशों तक चलने की क्षमता मरुच्वाारण क्रिया ऋद्धि है।

तप ऋद्धि

१. दीक्षा उपवास को आदि कर मरण पर्यंत एक-एक उपवास अधिक करने की शक्ति उग्र तप ऋद्धि है। (जैसे- पारणा दो उपवास, पारणा तीन उपवास, पारणा चार उपवास इत्यादि क्रम से बढ़ाते जाना)
२. बहुत उपवास हो जाने के बाद भी शरीर सूर्य की किरणों के समान चमकता रहे ऐसी शक्ति दीप्त तप ऋद्धि है।
३. तपे हुए लोह पर गिरी जल बूँद के समान खाया हुआ अन्नादि सब क्षीण हो जाए अर्थात् मल-मूत्रादि रूप परिणमन न हो, ऐसी शक्ति तप्त तप ऋद्धि है।
४. सभी ऋद्धियों की उत्कृष्टता को प्राप्त करने वाले मंदर पंक्ति, सिंहनिष्क्रीड़ित आदि उपवास करने की क्षमता प्राप्त होना महातप ऋद्धि है।
५. अनशनादि बारह तपों का उग्रता से पालन, हिंसक जंतुओं से भरे जंगल में निवास, अभ्रावकाश आदि योग धारण की क्षमता का प्राप्त होना घोर तप ऋद्धि है।
६. अनुभव एवं वृद्धिगत तप से सहित, तीन लोक के संहार की शक्ति से युक्त, कंटक, शिला, अग्नि आदि बरसाने में समर्थ, समुद्र की जलराशि को सुखा देने में समर्थ घोर पराक्रम तप ऋद्धि है।
७. जिस ऋद्धि के निमित्त से दु:स्वप्न नष्ट हो जाते हैं, अविनश्वर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन हो, मुनि के रहने वाले क्षेत्र में चोरादिक की बाधाएँ, अकाल एवं महायुद्ध आदि न हों, अघोर ब्रह्मचारित्व तप ऋद्धि है।

बल ऋद्धि

१. एक मुहूर्त्त काल के भीतर अन्तर्मुहूर्त में संपूर्ण श्रुत का चिंतन करने की क्षमता मनोबल ऋद्धि है।
२. जिस ऋद्धि के प्रकट होने पर मुनि श्रम रहित अहीन कंठ होता हुआ मुहूर्त मात्र काल के भीतर संपूर्ण श्रुत को जानता व उच्चारण करता है। वह वचन बल ऋद्धि है।

३. जिस ऋद्धि के प्रभाव से चतुर्मासादिक रूप कायोत्सर्ग करते हुए भी श्रम रहितता हो तथा कनिष्ठ अंगुली मात्र से तीन लोक को उठाकर अन्यत्र स्थापित करने की क्षमता हो काय बल ऋद्धि है।

औषधि ऋद्धि

१. जिस ऋद्धि के प्रभाव से ऋषि के हाथ-पैर के स्पर्श मात्र से रोगी का रोग दूर हो जाए आमर्ष औषधि ऋद्धि है।

२. ऋषि के लार, कफ, थूक, आदि में रोग को दूर करने की क्षमता क्ष्वेल औषधि ऋद्धि है।

३. पसीने के आश्रय से शरीर में लिप्त मल जल्ल कहलाता है। उस जल्ल में रोग दूर करने की क्षमता जल्लौषधि ऋद्धि है।

४. जिस शक्ति के निमित्त से जिह्वा, ओंठ, दाँत, कर्ण एवं नासिका का मल रोग दूर करने का कारण बने मल औषधि ऋद्धि है।

५. जिस ऋद्धि से मल-मूत्र, रुधिर आदि रोग दूर करने में कारण बनें वह विप्रुष् औषधि ऋद्धि है।

६. जिस ऋद्धि के बल से मुनि से स्पर्शित जल तथा वायु सर्व रोग को हरने वाली हो सर्वौषधि ऋद्धि है।

७. जिस शक्ति के निमित्त से वचन मात्र द्वारा महाविष से व्याप्त व्यक्ति निर्विष हो जाए अथवा विष युक्त भोजन भी निर्विषता को प्राप्त हो मुखनिर्विष ऋद्धि कहलाती है।

८. रोग व विष से युक्त जीव जिस ऋद्धि के प्रभाव से झट देखने मात्र से ही नीरोगता व निर्विषता को प्राप्त हो जाये दृष्टि निर्विष ऋद्धि कहलाती है।

रस ऋद्धि

१. मर जाओ- ऐसा कहने पर जीव शीघ्र ही मर जाए ऐसी शक्ति आशीर्विष ऋद्धि है।

२. जिस ऋद्धि के बल से रोष युक्त ऋषि से देखा गया जीव, सर्प से काटे गए के समान तुरंत मर जावे वह दृष्टि विष ऋद्धि है।

नोट:- वीतरागी श्रमण ऐसा अपकार कभी नहीं करते। यहाँ केवल तप का प्रभाव बतलाया गया है।

३. ६ :- जिस ऋद्धि के प्रभाव से हाथ में रखा हुआ रूखा-सूखा अन्न भी दुग्ध, मधु, अमृत, तथा घृत रूप परिणाम को प्राप्त हो जावें अथवा जिनके वचनों को सुनकर तिर्यञ्च व मनुष्यों के दुःख शांत हो जावे, वे क्रमशः क्षीरस्रावि, मधुरस्रावि, अमृतस्रावि एवं सर्पिस्रावि रस ऋद्धियाँ हैं।

अक्षीण ऋद्धि

१. जिस ऋद्धि के प्रभाव से मुनि के आहार के पश्चात् शेष बचे भोजन में, चक्रवर्ती की पूरी सेना भी जीम ले तो भी थोड़ा-सा भोजन कम न पड़े वह अक्षीण महानस ऋद्धि है।

२. जिस ऋद्धि के प्रभाव से समचतुष्कोण चार धनुष प्रमाण क्षेत्र में असंख्यात मनुष्य व तिर्यञ्च बिना किसी व्यवधान के बैठ सकें, वह अक्षीण महालय ऋद्धि है।

जिन्दगी की डायरी में यह बात लिख दीजिए।
कि सफर लम्बा है मुकाम मत कीजिए।।

रास्तों के राहगीरों से रिश्ते हम बनाते नहीं।
साथ तो चलते हैं मगर साथ वो निभाते नहीं।।

रास्ता मिला है तो सफर मंजिल का करो।
रास्ते में पड़े रहना कचड़े की निशानी है।।

गुरु स्तुति

भो आचार्यः श्री विद्यासागरः भक्तित्रय सहितोऽहं, नमोऽस्तु कुर्वेहं।
बाल ब्रह्मचारिणः परमविरागिनः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।१।।
अनुपम ज्ञानिनः भेद विज्ञानिनः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।२।।
रहिताऽडम्बरः महादिगम्बरः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।३।।
मुनिगण नायकः दुरितविनाशकः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।४।।
भव्य शरीरिणः महामनीषिणः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।५।।
धर्मप्रभावकः धर्म प्रबोधकः भक्तित्रय सहितोऽहं।
नमोऽस्तु कुर्वेहं .... भो ....।।६।।

पाठ्यक्रम - १९

१९ ब | श्रावकों के बारह व्रत

पाँच पापों के एकदेश अर्थात् स्थूल रूप से त्याग को अणुव्रत कहते हैं। अणुव्रत पांच होते हैं- १. अहिंसाणुव्रत, २. सत्याणुव्रत, ३. अचौर्याणुव्रत, ४. ब्रह्मचर्याणुव्रत, ५. परिग्रहपरिमाणाणुव्रत।

१. अहिंसा अणुव्रत - हिंसा के स्थूल त्याग को अहिंसाणुव्रत कहते हैं। यह श्रावक संकल्पपूर्वक मन, वचन, काय से किसी भी प्राणी का घात अपने मनोरंजन एवं स्वार्थपूर्ति के लिए नहीं करता है तथा शेष तीन प्रकार की हिंसा को अपने विवेकपूर्वक कम करता है। आगम कथित मर्यादा के भीतर की ही खाद्य वस्तुओं का, पानी आदि का प्रयोग करता है। सभी प्राणियों को अपने समान मानकर ही व्यवहार करता है।

२. सत्याणुव्रत - झूठ के स्थूल त्याग को सत्याणुव्रत कहते हैं। जिस झूठ से समाज में प्रतिष्ठा न रहे, प्रामाणिकता खण्डित होती हो, लोगों में अविश्वास हो, राजदण्ड का भागी बनना पड़े, इस प्रकार के झूठ को स्थूल झूठ कहते हैं। सत्याणुव्रती ऐसा सत्य भी नहीं बोलता जिससे किसी पर आपत्ति आ जावे।

३. अचौर्य अणुव्रत - स्थूल चोरी का त्याग करने वाला अचौर्य अणुव्रती श्रावक कहलाता है। अचौर्याणुव्रती जल और मिट्टी के सिवा बिना अनुमति के किसी के भी स्वामित्व की वस्तु का उपयोग नहीं करता। लूटना, डाका-डालना, जेब काटना, किसी की धन-सम्पत्ति, जमीन हड़प लेना, गड़ा धन निकाल लेना स्थूल चोरी के उदाहरण हैं। यह श्रावक चोरों की सहायता नहीं करता, चोरी का माल नहीं खरीदता, राजकीय नियमों का उल्लंघन नहीं करता कालाबाजारी एवं मिलावट नहीं करता है।

४. ब्रह्मचर्य अणुव्रत - इसका दूसरा नाम स्वस्त्री संतोष व्रत भी है। अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त शेष स्त्रियों के प्रति माँ, बहन और बेटी का व्यवहार करना ब्रह्मचर्य अणुव्रत है। ब्रह्मचर्याणुव्रती अपने परिवार जन को छोड़कर अन्य जनों के विवाह-व्यवसाय नहीं करता और न कराता है। काम सम्बन्धी कुचेष्टाओं को नहीं करता, चारित्रहीन स्त्री-पुरुषों की संगति नहीं करता।

५. परिग्रह परिमाण व्रत - तीव्र लोभ को मिटाने के लिए परिग्रह की सीमा निर्धारित करना परिग्रह परिणाम व्रत है। धन धान्यादि बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व, मूर्च्छा या आशक्ति को परिग्रह कहते हैं, धन-धान्यादि बाह्य पदार्थों की सीमा बनाकर उसमें संतोष धारण करना परिग्रह परिमाणाणुव्रत है।

यह व्रती श्रावक दूसरों के लाभ में विषाद नहीं करता, लाभ-हानि में संक्लेशित नहीं होता। लोभ के वशीभूत हो नौकर आदि पर अधिक भार नहीं डालता। चूंकि इस व्रत के द्वारा वह अपनी अन्तहीन इच्छाओं को एक सीमा में बांध देता है। अतः इसे इच्छापरिमाण व्रत भी कहते हैं।

० जिससे अणुव्रतों में विकास होता है उन्हें **गुण-व्रत** कहते हैं, गुणव्रत तीन हैं - १. दिग्व्रत, २. देशव्रत तथा ३. अनर्थदण्ड त्याग व्रत।

६. दिग्व्रत - जीवन पर्यन्त के लिए दशों दिशाओं में आने-जाने की मर्यादा बना लेना दिग्व्रत है। जैसे कि मैं व्यापार आदि के निमित्त अमुक दिशा में वहाँ जाऊँगा उससे आगे नहीं।

७. देशव्रत- दिग्व्रत में ली गई जीवन भर की मर्यादा के भीतर भी अपनी आवश्यकताओं एवं प्रयोजन के अनुसार आवागमन को सीमित समय के लिए नियन्त्रित रखना देशव्रत है। जैसे कि एक माह तक इस नगर से, मोहल्ले से बाहर नहीं जाऊँगा। अथवा आज मैं घर से बाहर नहीं जाऊँगा इत्यादि।

८. अनर्थदण्ड त्याग व्रत - बिना प्रयोजन पाप के कार्य करने को अनर्थदण्ड कहते हैं। इनका त्याग करना अनर्थदण्ड त्याग व्रत है। यह व्रती खोटे व्यापार का उपदेश नहीं देता, अस्त्र शस्त्रादि, हिंसक उपकरणों का आदान-प्रदान नहीं करता, किसी ही हार, जीत, लाभ-हानि की व्यर्थ चिन्ता नहीं करता बिना मतलब पृथ्वी आदि नहीं खोदता, अप्रयोजनीय स्थावर जीवों की हिंसा नहीं करता, मन को विकृत करने वाले साहित्य, गीत, नाटक आदि कार्यक्रमों को न पढ़ता न सुनता और न देखता है तथा आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह भी नहीं करता है।

० शिक्षा व्रत – जिनसे मुनि बनने की शिक्षा / प्रेरणा मिले उन्हें शिक्षा व्रत कहते है वे चार हैं। १. सामायिक , २. प्रोषधोपवास, भोगोपभोग परिमाण तथा ३. अतिथि संविभाग।

९. सामायिक – समय आत्मा को कहते हैं आत्मा के गुणों का चिन्तन कर समता का अभ्यास करना सामायिक है। सामायिक में संसार, शरीर, भोगों के स्वरूप का चिन्तन, बारह भावनाओं का चिन्तन, चैत्य–चैत्यालयों की वन्दना, भक्ति आदि का पाठ तथा णमोकार मंत्र का जाप भी किया जा सकता है। प्रतिदिन दोनों संध्याओं में कम से कम २४ मिनट तक इसका अभ्यास करना चाहिए।

१०. प्रोषधोपवास – अष्टमी चतुर्दशी पर्व के दिनों में एकासन पूर्वक उपवास करना प्रोषधोपवास है। शरीर की शक्ति के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं जघन्य विधी से इसको धारण करना चाहिए। उपवास के दिन घर–गृहस्थी और व्यवसाय–धन्धे के समस्त कामों को छोड़कर धर्मध्यान पूर्वक दिन बिताना चाहिए।

११. भोगोपभोग परिमाण – भोग और उपभोग के साधनों का कुछ समय या जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करना भोगोपभोग परिमाण व्रत कहलाता है। इससे गृहस्थ अनावश्यक संग्रह, खर्च और आकुलता से बच जाता है।

१२. अतिथि संविभाग – जो संयम का पालन करते हुए देश–देशान्तर में भ्रमण करते हैं, उन्हें अतिथि कहते हैं। ऐसे अतिथियों को अपने लिए बनाए गए भोजन में से विभाग करके भोजन देना अतिथि संविभाग व्रत कहलाता है।

''सत्ता शाश्वत होती है, बेटा!
प्रति–सत्ता में होती हैं
अनगिन सम्भावनाएँ
उत्थान–पतन की,
खसखस का दाना–सा
बहुत छोटा होता है
बड़ का बीज वह!
समुचित क्षेत्र में उसका वपन हो
समयोचित खाद, हवा, जल
उसे मिलें
अंकुरित हो, कुछ ही दिनों में
विशाल काय धारण कर
वट के रूप में अवतार लेता है।
यही इसकी महत्ता है।
सत्ता शाश्वत होती है
सत्ता भास्वत होती है बेटा!
रहस्य में पड़ी इस गन्ध का
अनुमान करना होगा
आस्था की नासा से सर्वप्रथम
समझी बात...!''
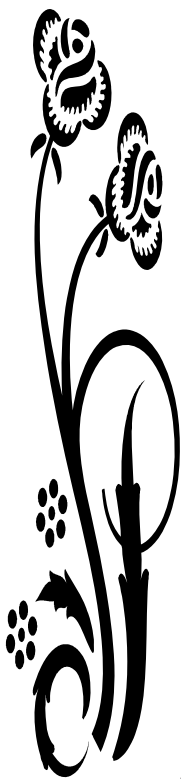
धीरे-धीरे चलो

धीरे-धीरे चलो जी मंदिर, भगवन के गुण गाने को।
बढ़ते चलो हजारों लोगों, वीतरागता पाने को।।

घर से मेरे भाव बने मैं, मंदिर जी में जाऊँगा।
पार्श्वप्रभु के दर्शन करके, मन ही मन हर्षाऊँगा।।
चेतनता के दर्शन करता, भव में पुण्य कमाने को।

भक्ति भाव से दर्शन करके, कूप से जल भर लाऊँगा।
दोनों हाथ में कलश को लेकर, भगवन को नहलाऊँगा।।
ऐसा भव्य जीव ही करते, पाप अनंत मिटाने को।।

थाल में अष्ट द्रव्य को लेकर, पूजन विधि को रचाऊँगा।
देवशास्त्रगुरु पूजन करके, भव-भव में सुख पाऊँगा।।
गुरु की प्रतिदिन पूजा करता, रत्नत्रय को पाने को।।

हे प्रभु आप तो केवलज्ञानी, तीन लोक विजेता हो।
हे प्रभु आप तो सिद्ध स्वरूपम्, मुक्तिपथ के नेता हो।।
राह सही मुझको बतला दो, मंजिल अपनी पाने को।।

सफलता के लिए मिलकर, सभी को काम करना है।
हमें आकाश से ऊँचा, पाठशाला का नाम करना है।।

- उत्तरदायित्व से महान बल प्राप्त होता है। जहाँ कहीं भी उत्तरदायित्व होता है वहीं विकास होता है।
- हताश न होना ही सफलता का मूल है।
- उद्यम स्वर्ग है आलस्य नरक।
- संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं।
- अध्ययन आनन्द का अलंकरण और योग्यता का काम करता है।
- अभागा वह है जो संसार में सबसे पवित्र धर्म कृतज्ञता को भूल जाता है।

छंद

तीसरी ढाल (नरेन्द्र/जोगीरासा)

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँहिं न तातैं, शिवमग लाग्यौ चहिये॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो॥१॥
परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई॥२॥
जीव-अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो॥३॥
बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥४॥
मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी॥
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥५॥
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता॥
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै॥६॥
चेतनता बिन सो अजीव हैं, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसु जाके हैं॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार काल परिमानो॥
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥८॥
ये ही आतम के दुःख कारण, तातैं इनको तजिए।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये॥
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि झरन निर्जरा , ताहि सदा आचरिये॥९॥
सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
येहु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो॥१०॥
वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेप हु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये-गहिये॥११॥
जिन-वच में शंका न धारि वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावैं, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर-औगुण ढांकै, वा निज धर्म बढ़ावैं।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निजपर को सु दिढ़ावैं॥१२॥
धर्मी सों गौ-वच्छ प्रीति सम, कर जिन-धर्म दिपावैं।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावैं॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय तो न मद ठानै।
मद न रूप को, मद न ज्ञान को, धनबल को मद भानै॥१३॥
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यहि दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत बिन कुगुरुादिक तिन्हें न नमन करै हैं॥१४॥
दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दर्श सजे हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥१५॥
प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नाहिं, उपजत समकित धारी॥
तीन लोक तिहूँ काल माँहिं नहिं, दर्शन सम सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुःखकारी॥१६॥
मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥१७॥

● न्याय से एक घर में भले ही दीपक प्रज्वलित हो, दूसरे घर में अंधेरा होने की संभावना रहती है। मात्र समझौते से सभी घरों में दीपक प्रकाशित होते हैं, हृदय में खुशियों की बहार आती है।

● जमीन में दफनाए हुए मुर्दे को उखाड़ने पर सिर्फ हड्डियों के दर्शन और दुर्गंध का ही अनुभव होता है, ठीक उसी प्रकार बीते हुए कटुकाल को बार-बार याद करते रहने से क्रोध की दुर्गंध, दुर्भावना का माँस और असमाधि की वेदना का ही अनुभव होता है।

● 'मैं ही हमेशा सही हूँ', ऐसे अहंकार भरे विचार को मन से हटाकर 'मैं सब की नजर में अच्छा बनना चाहता हूँ' इस विचार को मन के केन्द्र में विराजमान कर दो।

सुकुमाल मुनि

करोड़ों की धन-सम्पदा, बंगला, गाड़ी, नौकर-चाकर होते हुए भी सेठानी यशोभद्रा उदास एवं दुखी रहती थीं। कारण उनकी कोई संतान नहीं थी। बिना दीपक के मकान में अंधकार के समान ही उसके मन में अंधकार छाया रहता था। उसे खबर थी कि एक अवधिज्ञानी मुनिराज नगर के बाहर उपवन में पधारे हैं। अतः वह उनके दर्शन हेतु वहाँ गई एवं उसने मुनिराज से पूछा-हे प्रभु! मेरे संतान का सुयोग बनेगा या नहीं। तब मुनिराज बोले-तेरा पुत्र सुयोग होगा। वह अत्यन्त सुन्दर, धर्मात्मा और पापभीरु होगा। किन्तु पुत्र के जन्म की खबर सुनते ही पिता मुनिदीक्षा अंगीकार कर लेगा तथा तेरा पुत्र भी मुनि दर्शन कर अथवा उनके वचन सुनते ही घरवार त्याग कर दीक्षा धारण करेगा। यह बात सुनते ही रानी हर्ष और विषाद दोनों से युक्त हो गई।

कुछ ही दिनों में उसने गर्भ धारण किया तथा पति से इस बात को छुपाए रखा कि कहीं सुनते ही वे दीक्षा न ले लें। पुत्र जन्म के बाद एक दिन सेठ जी की कोठी के निकट तालाब में दासी को बालक के कपड़े धोते हुए देख एक ब्राह्मण ने सोचा सेठ जी के यहाँ पुत्र हुआ है अतः कुछ याचना करनी चाहिए। अतः उसने सेठ जी से निवेदन किया कि आपके आँगन में पुत्र उत्पन्न हुआ है अतः आप कुछ दान-दक्षिणा दें। तब सेठ को ज्ञात हुआ तब उसने पुत्र का मुख देखकर मुनि दीक्षा ग्रहण कर ली।

पति के वैराग्य से दुःखी सेठानी पुत्र का बड़े लाड़-प्यार से पालन-पोषण करने लगी एवं पुत्र के लिए स्वर्णमयी एक सर्वतोभद्र महल तैयार करवाया उसके चारों ओर बत्तीस महल तैयार करवाए तथा सुकुमाल को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो ऐसी सभी व्यवस्थाएँ महल के भीतर ही की गईं थीं। सुकुमाल के युवा होने पर नगर में सुन्दर-सुन्दर कन्याओं से उसका विवाह कर दिया गया।

एक दिवस एक व्यापारी रत्न कम्बल विक्रय के उद्देश्य से नगर राजा के पास पहुँचा। राजा ने अच्छा मूल्य सुन अपनी-अपनी असमर्थता व्यक्त की तब वह व्यापारी यशोभद्रा सेठानी के महल में पहुँचा। उसने वह कम्बल अपने सुकुमाल के लिए खरीद लिया। सुकुमाल को वह कम्बल चुभता था अर्थात् कठोर लगा। अतः यशोभद्रा ने उस कम्बल के छोटे-छोटे टुकड़े करवाकर अपनी बहुओं के लिए जूतियाँ बनवा दीं।

एक बार छत पर रखी जूती को कौवे ने खाद्य सामग्री समझकर मुँह में दबा लिया और उड़ता हुआ राजमहल के छत पर छोड़ दिया। राजा ने छत पर पड़ी जूती देखी तो वह उस पर लगे रत्न कम्बल को पहचान कर विचार करने लगा। यह जूती कहाँ से आयी, पूछने पर पता चला यह जूती सुकुमाल की स्त्री की है। तब राजा को यह बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे सुकुमाल से मिलने की इच्छा हुई और वह स्वयं सुकुमाल के घर की ओर चल पड़ा। यशोभद्रा को राजा के आगमन की सूचना मिलते ही वह उनके स्वागत हेतु तैयार हुई। माँ-बेटे दोनों ने अतिशय सत्कार किया। राजा के लिए स्वर्णमयी सिंहासन लगाया गया। प्रीतिवश उसने सुकुमाल को भी अपने साथ बिठा लिया। फिर राजा से निवेदन किया कि आप आज हमारे यहाँ ही भोजन करके जाएँ।

राजा की स्वीकृति मिली और राजा और सुकुमाल भोजन करने बैठे। इस मुलाकात में सुकुमाल की भिन्न-भिन्न चेष्टाएँ देखकर राजा ने उसकी माँ से कहा - लगता है सुकुमाल को कुछ व्याधि है। माँ ने पूछा - ऐसा आपने कैसे जाना? राजा बोला- सिंहासन पर बैठते समय स्थिर न बैठकर ये हिलडुल रहे थे, दूसरा जब आपने आरती की थी इसकी आँखों से अश्रु गिरने लगे थे तथा जब आपने खीर परोसी तो यह एक-एक चावल बीनकर खा रहा था इसलिए ऐसा प्रतीत हुआ। सेठानी मुस्कराई और बोली - राजाजी बात ऐसी है कि मेरा पुत्र अत्यन्त कोमल दिव्य गादी पर सोता एवं बैठता है। आज हमने मंगल स्वरूप जो सरसों के दाने डाले थे वे इसे चुभ रहे थे। इसकी कठोरता से इसका आसन चलायमान हो रहा था। आँखों से पानी आने का कारण यह है कि यह हमेशा रत्न दीपक के प्रकाश में ही रहता है प्रथम बार ही घी का दीपक इसके समक्ष आया था अतः उसकी लौ से उत्पन्न ताप को सहन न कर सका। तीसरी बात यह है कि प्रतिदिन कमल बंद होने के पूर्व ही चावलों को कमलों के बीच रख दिया जाता था। उसकी गर्मी से पके हुए चावलों को प्रातःकाल निकालकर उससे बनी खीर इसे खिलाई जाती थी।

आज आपके आने की सूचना मिलते ही उस खीर में कुछ सामान्य चावल मिला दिये गए सो यह बालक उन खीर के दानों को बीन-बीन कर खा रहा था। अतः राजन् आप जिसे कोई बीमारी समझ रहे हैं यह कोई

बीमारी नहीं है। राजा इन सब बातों को सुन बड़ा भारी आश्चर्य को प्राप्त हुआ। तब उसने राजकुमार का नाम अवन्ती सुकुमाल रखा और आनंदपूर्वक राजमहल की ओर चला गया।

एक दिन सुकुमाल के मामा यशोभद्र मुनि ने अवधिज्ञान से जान लिया कि सुकुमाल की आयु बहुत थोड़ी बची है। अतः उसे संयम पथ पर चलने का उपदेश देना चाहिए। किन्तु पहुँचे कैसे सेठानी ने मोह के कारण मुनि दर्शन से रोकने हेतु पूर्ण व्यवस्था जो कर रखी है। फिर भी कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए। ऐसा विचार कर चतुर्मास स्थापना के दिवस ही सेठानी के नगर के निकट बने चैत्यालय में रुक गए। जब सेठानी को मुनि आगमन की खबर लगी तो वह शीघ्र ही मंदिर पहुँची एवं मुनिराज से विहार का निवेदन किया।

तब मुनिराज बोले - आज तो स्थापना दिवस है आगे समय शेष नहीं है अतः मैं यहीं चतुर्मास स्थापना करूँगा। ऐसा कहकर वहीं प्रतिमायोग धारण कर बैठ गये। चतुर्मास पूर्ण होने पर सुकुमाल की आयु तीन दिन शेष जानकर उन्होंने 'तीन लोक प्रज्ञप्ति' का पाठ किया जिसमें स्वर्ग लोक का वर्णन सुन सुकुमाल को जातिस्मरण हो आया और उसने आत्मकल्याण हेतु संयम मग्न होने का मन बनाया तथा पत्नियों की साड़ियों की गाँठ बाँधकर उसकी रस्सी बनाकर नीचे उतरकर सीधे मुनिराज के पास पहुँचा। दीक्षा का निवेदन किया। तब मुनिराज बोले-तुमने ठीक ही विचार किया क्योंकि अब तुम्हारी आयु तीन दिन की शेष है। अतः दीक्षा लेकर घोर एकान्त वन में ध्यान लगाने हेतु गए।

वहीं पर उनकी पूर्व भव की भाभी, जो सियालनी बनी थी, पूर्व बैर का स्मरण आने पर उनका पैरों से भक्षण करने लगी। तब शरीर की अशुचिता और क्षणभंगुरता का ध्यान कर सुकुमाल मुनि आत्म ध्यान में लीन रहे और अंत में शरीर त्याग कर सर्वार्थसिद्धि विमान में जन्म लिया।

।। सूर्योदय दोहावली ।।

सीधे सीझे शीत हैं, शरीर बिन जीवन्त।
सिद्धों को मम नमन हो, सिद्ध बनूँ श्रीमन्त॥ 1॥
वचन-सिद्धि हो नियम से, वचन-शुद्धि पल जाए।
ऋद्धि-सिद्धि-परसिद्धियाँ, अनायास फल जाएँ॥ 2॥
प्रभु दिखते तब और ना, और समय संसार।
रवि दिखता तो एक ही, चन्द्र साथ परिवार॥ 3॥
भांति-भांति की भ्रांतियाँ, तरह-तरह की चाल।
नाना नारद-नीतियाँ ले जातीं पाताल॥ 4॥
मानी में क्षमता कहाँ, मिला सकें गुणमेल।
पानी में क्षमता कहाँ, मिला सके घृत तेल॥ 5॥
स्वर्गों में ना भेजते, पटके ना पाताल।
हम तुम सबको जानते, प्रभु तो जाननहार॥ 6॥
चमक-दमक की ओर तू, मत जा नयना मान।
दुर्लभ जिनवर रूप का, निशि-दिन करना पान॥ 7॥
चिन्तन से चिन्ता मिटे, मिटे मनो मल मार।
प्रसाद मानस में भरे, उभरें भले विचार॥ 8॥
रही सम्पदा आपदा, प्रभु से हमें बचाय।
रही आपदा सम्पदा, प्रभु में हमें रचाय॥ 9॥
कटुक मधुर गुरु वचन भी, भविक चित्त हुलसाय।
तरुण अरुण की किरण भी, सहज कमल विकसाय॥10॥
वेग बढ़े इस बुद्धि में, नहीं बढ़े आवेग।
कष्ट-दायिनी बुद्धि है, जिसमें ना संवेग॥ 11॥
शास्त्र पठन ना, गुणन से निज में हम खो जाय।
कटि पर ना, पर अंक में, माँ के शिशु सो जाय॥ 12॥
सुधी पहनता वस्त्र को, दोष छुपाने भ्रात।
किन्तु पहिन यदि मद करे, लज्जा की है बात॥ 13॥
आगम का संगम हुआ, महापुण्य का योग।
आगम हृदयंगम तभी, निश्छल हो उपयोग॥ 14॥
विवेक हो ये एक से, जीते जीव अनेक।
अनेक दीपक जल रहे, प्रकाश देखो एक॥ 15॥
खण्डन-मण्डन में लगा, निज का ना ले स्वाद।
फूल महकता नीम का, किन्तु कटुक हो स्वाद॥ 16॥
नीर-नीर को छोड़कर, क्षीर- क्षीर का पान।
हंसा करता भविक भी, गुण लेता गुणगान॥ 17॥
चिन्तन मन्थन मनन जो, आगम के अनुसार।
तथा निरन्तर मौन भी, समता बिन निस्सार॥ 18॥
पके पत्र फल डाल पर टिक ना सकते देर।
मुमुक्षु क्यों ? ना निकलता, घर से देर सबेर॥ 19॥
तव-मम, तव-मम कब मिटे, तरतमता का नाश।
अन्धकार गहरा रहा सूर्योदय ना पास॥ 20॥

पाठ्यक्रम - २०

२०अ | १४८ कर्म प्रकृतियाँ और उनका फल

संसार में अनेक प्रकार के सुख-दु:ख में कारणभूत कर्म कहे गये हैं। वे कर्म आठ होते हैं- १. ज्ञानावरण, २. दर्शनावरण, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय, ५. आयु, ६. नाम, ७. गोत्र और ८. अन्तराय। इन कर्मों का स्वभाव, फल, कर्म बंध के कारण इत्यादि का सामान्य कथन पूर्व में किया जा चुका है अब इन कर्मों के भेद-प्रभेद का कथन करते हैं।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मों को घातिया एवं अघातिया की अपेक्षा दो भागों में विभक्त किया गया है। जो आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि गुणों का घात करते हैं ऐसे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय एवं अन्तराय कर्मों की घातिया कर्म संज्ञा है। तथा जो आत्मा के गुणों का घात तो नहीं करते किन्तु आत्मा के रूप को अन्य रूप (शरीरादि आकार) कर देते हैं ऐसे वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्म की अघातिया कर्म संज्ञा है।

ज्ञानावरणीय कर्म के पाँच, दर्शनावरणीय कर्म के नौ, मोहनीय कर्म के अट्ठाइस, वेदनीय कर्म के दो, आयु कर्म के चार, नाम कर्म के ब्यालीस, गोत्र कर्म के दो एवं अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं। अत: आठ कर्मो के कुल प्रभेद 5+9+28+2+4+42+2+5 = 97 हो जाते हैं।

1. ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद- मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि ज्ञानावरण, मन: पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण हैं। ये कर्म क्रमश: मति, श्रुत, अवधि, मन: पर्यय एवं केवलज्ञान को आवृत करते हैं, ढाक देते हैं अर्थात ज्ञान होने नहीं देते। प्रथम चार कर्म ज्ञान को पूरा नहीं ढकते जबकि केवलज्ञानावरण, केवलज्ञान को पूर्ण रूप से ढक लेता है।

अभव्य जीव के भी मन: पर्यय ज्ञान एवं केवलज्ञान शक्ति रूप में रहता है अत: उसके भी इनका आवरण पाया जाता है।

सम्यग्ज्ञान

जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में बोध कराने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

अन्यूनमनतिरिक्तं यथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निसंदेहं वेदं यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिन:॥ ४२॥

अर्थ : जो ज्ञान वस्तु के स्वरूप को न्यूनता रहित, अधिकता रहित, विपरीतता रहित, संदेह रहित, जैसा का तैसा जानता है उस ज्ञान को श्रुतकेवली सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

८० को ८५ मानना यह है अधिक ज्ञान।
१६ X ५ जाने कितने होते हैं यह अनध्यवसाय ज्ञान।
८० को ७५ जानना यह है न्यून ज्ञान।
१६ X ५ = ९० होते हैं यह है विपरीत ज्ञान।
१६ X ५ न जाने कितने ८० होते हैं या ९० यह है संशय ज्ञान
१६ X ५ = ८० होते हैं यह है सम्यग्ज्ञान।

इसी प्रकार से आत्मा को आत्मा और शरीर को भी आत्मा मानना अधिक ज्ञान।
न जाने आत्मा क्या है- अनध्यवसाय।
मनुष्य पर्याय मात्र ही आत्मा है- न्यून ज्ञान।
शरीर को आत्मा जानना- विपरीत ज्ञान।
आत्मा शरीर है या इससे भिन्न है पता नहीं- संशय ज्ञान।
आत्मा को शरीर से भिन्न मानना- सम्यग्ज्ञान।

2. दर्शनावरण कर्म के नौ भेद - चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवलदर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि है। यद्यपि आवरण कर्म प्रथम चार हैं। फिर भी निद्रा आदि पाँच दर्शनोपयोग में बाधक बनते है अत: इनकी भी दर्शनावरण में गणना करने से नौ भेद कहे।

नेत्र इन्द्रिय को चक्षु कहते हैं इसके अलावा शेष चार इन्द्रिय व मन को अचक्षु कहते हैं। जो चक्षुज्ञान, अचक्षुज्ञान तथा अवधिज्ञान के पूर्व होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे ऐसे कर्म को क्रमश: चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण एवं अवधि दर्शनावरण कर्म कहते हैं। जो केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य अवलोकन को न होने दे उसे केवल दर्शनावरण कहते हैं।

मद, खेद और परिश्रम जन्य थकावट को दूर करने के लिए नींद लेना निद्रा है, निद्रावान पुरुष सुख पूर्वक जागृत हो जाता है। निद्रा पर पुन:-पुन: निद्रा लेना अथवा गहरी नींद लेना, बार बार उठाने पर बहुत कठिनता से जाग पाना निद्रा-निद्रा कर्म है। बैठे-बैठे सो जाना, कुछ जागृत रहना, नेत्र और शरीर में विकार लाने वाली ऐसी क्रिया जो आत्मा को चलायमान कर दे प्रचला

है। प्रचला की पुनः-पुनः आवृत्ति प्रचला-प्रचला है मुंह से लार बहने लगना, हाथ-पैर चलने लगना इस प्रचला-प्रचला के लक्षण है। जिसके निमित्त से जीव सोते समय भयंकर कार्य कर ले, शक्ति विशेष प्रगट हो जाए और जागने पर कुछ स्मरण न रहे स्त्यानगृद्धि कर्म है।

3. वेदनीय कर्म के दो भेद - सातावेदनीय और असातावेदनीय हैं। जिस कर्म के उदय से देवादि गतियों में शरीर और मन सम्बन्धी सुख की प्राप्ति होती है उसे सातावेदनीय कर्म कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शारीरिक-मानसिक अनेक प्रकार के दु:ख प्राप्त होते हैं वह असातावेदनीय कर्म है।

4. मोहनीय के अट्ठाईस भेद - अनन्तानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ, संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ ये सोलह कषाय, हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा पुरुष वेद-स्त्री वेद - नपुंसक वेद ये नौ नोकषाय एवं मिथ्यात्व-सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये तीन - कुल अट्ठाईस हैं।

० जो कषाय सम्यक्त्व को घातती है अथवा अनन्त मिथ्यात्व के साथ जिसका अनुबन्ध-सम्बन्ध हो उसे अनन्तानुबन्धी कहते है। जो अप्रत्याख्यान - एक देश चारित्र को प्रकट न होने दे उसे अप्रत्याख्यानावरण कहते हैं। जो प्रत्याख्यान - सकल चारित्र का घात करे उसे प्रत्याख्यानावरण कहते हैं एवं जो यथाख्यात चारित्र को प्रकट न होने दे तथा संयम के साथ प्रकाश मान रहे उसे संज्वलन कहते हैं। प्रत्येक के क्रोध-मान-माया-लोभ ये चार-चार भेद हैं कुल ये सोलह कषाय आत्मा को निरन्तर कषती रहती हैं- दु:खी करती रहती हैं इसलिए इन्हे कषाय वेदनीय भी कहते हैं।

० जिसके उदय से हँसी आवे, उसे हास्य कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री-पुत्र आदि में प्रीति रूप परिणाम होता है उसे रति कहते हैं। जिसके उदय से शत्रु आदि अनिष्ट पदार्थों में अप्रीति रूप परिणाम होते हैं उसे अरति कहते हैं। जिसके उदय से इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग में खेद रूप परिणाम होते हैं उसे शोक कहते हैं। जिसके उदय से भय रूप परिणाम होते हैं उसे भय कहते हैं। जिसके उदय से ग्लानि रूप परिणाम होता है उसे जुगुप्सा कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री से रमने के भाव होते हैं उसे पुरुषवेद कहते हैं। जिसके उदय से पुरुष से रमने के भाव होते हैं उसे स्त्रीवेद कहते हैं। जिसके उदय से स्त्री तथा पुरुष दोनों से रमने के भाव हों उसे नपुंसक वेद कहते हैं।

० जिसके उदय से जीव की अत्तत्व श्रद्धान रूप परिणति होती है उसे मिथ्यात्व कहते हैं। जिसके उदय से मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के मिश्रित परिणाम होते हैं उसे सम्यक् मिथ्यात्व कहते हैं। जिसके उदय से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन में चल, मलिन और अवगाढ़ दोष लगते हैं उसे सम्यक्त्व प्रकृति कहते हैं।

० सब तीर्थंकरों की समान शक्ति होने पर भी शान्तिनाथ शान्ति के कर्ता हैं पार्श्वनाथ रक्षा करने वाले हैं ऐसा भाव होना चल दोष कहलाता है। सम्यग्दर्शन में शंका-कांक्षा आदि अथवा तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोष लगने को मलिन दोष कहते हैं। एवं अपने द्वारा निर्मापित या प्रतिष्ठापित प्रतिमा आदि में यह मन्दिर मेरा है, यह प्रतिमा मेरी है इत्यादि प्रकार का भाव होना अवगाढ़ दोष कहलाता है।

5. आयु कर्म के चार भेद - नरकायु, तिर्यञ्च आयु, मनुष्यायु एवं देव आयु हैं। जिस कर्म के उदय से यह जीव निश्चित समय तक नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव की पर्याय में (शरीर में) रुका रहे उसे उस पर्याय सम्बन्धी आयुकर्म कहते हैं।

6. नाम कर्म के तिरानवे भेद- नाम कर्म के पिण्ड प्रकृति की अपेक्षा ब्यालीस भेद एवं सामान्य अपेक्षा से तिरानवे भेद होते हैं। गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्ष प्रकृतियों के साथ साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग-सुभग, दुस्वर-सुस्वर, अशुभ-शुभ, बादर-सूक्ष्म, अपर्याप्त-पर्याप्त, अस्थिर-स्थिर, अनादेय-आदेय, अयशः कीर्ति, यशः कीर्ति एवं तीर्थंकर ये ब्यालीस भेद हैं। गति आदि के उत्तर भेदों को मिलाने पर तिरानवे भेद हो जाते हैं।

० जिस कर्म के उदय से जीव भवान्तर को जाता है वह गति नाम कर्म है। यह चार प्रकार का - नरकगति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति एवं देव गति है। जिस कर्म के उदय से आत्मा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति में जन्म लेता है वह पाँच प्रकार का एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय व पञ्चेन्द्रिय जाति नाम कर्म है। जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर की रचना होती है वह शरीर नाम कर्म है। वह पाँच प्रकार का है - औदारिक शरीर नाम कर्म, वैक्रियक शरीर नाम कर्म, आहारक शरीर नाम कर्म, तैजस शरीर और कार्माण शरीर नाम कर्म है। इन शरीरों का वर्णन आगे के अध्याय में किया जाएगा। जिस कर्म

के उदय से अंग-उपांगों की रचना होती है उसे अंगोपांग नाम कर्म कहते हैं। इसके तीन भेद हैं :- औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियक शरीर अंगोपांग एवं आहारक शरीर अंगोपांग। जिस कर्म के उदय से शरीर में अंग उपांगों की यथा स्थान, यथा आकार रचना होती है उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं। शरीर नाम कर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्गलों का अन्योन्य प्रदेश संश्लेष (बन्धन रूप अवस्था) जिसके निमित्त से होती है, वह बन्धन नाम कर्म हैं। औदारिक शरीरादि की अपेक्षा इसके भी पाँच भेद हो जाते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के परमाणु परस्पर छिद्र रहित होकर मिले उसे संघात नाम कर्म कहते हैं। इसके भी औदारिक शरीर संघात आदि पाँच भेद हैं। जिसके उदय से शरीर की आकृति बनती है उसे संस्थान नाम कर्म कहते हैं। इसके 6 भेद हैं - 1. समचतुरस्त्र संस्थान, 2. न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, 3. स्वाति संस्थान, 4. कुब्जक संस्थान, 5. वामन संस्थान, 6. हुण्डक संस्थान। जिसके उदय से शरीर सुन्दर और सुडौल होता है उसे समचतुरस्त्र संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर वट वृक्ष की तरह नीचे से पतला और ऊपर से मोटा हो उसे न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर सर्पकी बाँबी की तरह नीचे मोटा (नाभि के नीचे) तथा ऊपर पतला हो उसे स्वाति संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से जीव का शरीर कुबड़ा हो उसे कुब्जक संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर बौना हो उसे वामन संस्थान कहते हैं। जिसके उदय से शरीर किसी खास आकृति का न होकर विरूप (टेढ़ा-मेढ़ा) हो उसे हुण्डक संस्थान कहते हैं। जिस कर्म के उदय से शरीर के अन्दर संहनन - हड्डी की रचना तथा अस्थियों का बन्धन विशेष होता है वह संहनन नाम कर्म है।

इसके 6 भेद हैं - 1. वज्रवृषभनाराच संहनन, 2. वज्रनाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4. अर्द्धनाराच संहनन, 5. कीलिक संहन, 6. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। जिस कर्म के उदय से वृषभ (वेष्टन) नाराच (कील) और संहनन (हड्डियाँ) वज्र की हों उसे वज्रवृषभनाराच संहनन कहते हैं। जिस कर्म के उदय से वज्र के हाड़, वज्र की कीलियाँ हो परन्तु वेष्टन वज्र का न हो वह वज्र नाराच संहनन है। जिस कर्म के उदय से सामान्य वेष्टन और कीली सहित हाड़ हो उसे नाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियों की संधियाँ अर्द्धकीलित हों उसे अर्द्धनाराच संहनन कहते हैं। जिसके उदय से हड्डियाँ परस्पर कीलित हों उसे कीलक संहनन कहते हैं। और जिसके उदय से जुदी-जुदी हड्डियाँ नसों से बंधी हुई हों, परस्पर कीलित नहीं हों उसे असंप्राप्ता सृपाटिका संहनन कहते हैं।

● उपदेश करने वाले के शब्द चाहे जितने रहस्य भरें हों पर यदि वह उपदेश स्वयं उपदेशक पर असर न करें, उसकी उस पर नजर न हो, तो कभी उसका असर दूसरों पर नहीं पड़ सकता।
● एक सफल व्यापारी से सफलता का कारण पूछा - उसने जबाव दिया, सही निर्णय (दो शब्द)। सही निर्णय लेने की शक्ति एक शब्द से अनुभव, अनुभव मिला दो शब्द से वे हैं 'गलत निर्णय'।

जिसके उदय से शरीर में स्निग्ध-रूक्ष आदि स्पर्श हो, उसे स्पर्श नाम कर्म कहते हैं। इसके आठ भेद हैं - 1. स्निग्ध, 2. रुक्ष, 3. कोमल, 4. कठोर, 5. हल्का, 6. भारी, 7. शीत और 8. उष्ण। जिसके उदय से शरीर में खट्टा-मीठा आदि रस हो उसे रस नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - 1. खट्टा 2. मीठा, 3. कडुआ, 4. कषायला और 5. चरपरा। जिसके उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न हो उसे गन्ध नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद हैं - 1. सुगन्ध, 2. दुर्गन्ध। जिसके उदय से शरीर में काला-पीला आदि वर्ण उत्पन्न हो उसे वर्ण नाम कर्म कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं - 1. काला, 2. पीला, 3. नीला, 4. लाल और 5. सफेद। जिसके उदय से विग्रह गति में आत्म प्रदेशों का आकार पिछले (छोड़े हुए) शरीर के आकार का हो, वह आनुपूर्व्य नाम कर्म हैं। इसके चार भेद हैं - नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य एवं देवगत्यानुपूर्व्य। जैसे कोई मनुष्य मरकर देवगति में जा रहा है तो देवगत्युानपूर्व्य कर्म के उदय से विग्रह गति में मनुष्य का आकार बना रहेगा। इसका उदय विग्रह गति में ही होता है। जिस कर्म के उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो लोहे के गोले के समान भारी और अर्क के तूल के समान हल्का न हो उसे अगुरुलघु नाम कर्म कहते हैं। जिससे उदय से अपना ही घात करने वाले अंगोपांग हों उसे उपघात नाम कर्म कहते है। जिसके उदय से दूसरों का घात करने वाले अंगोपांग हों उसे परघात नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल ठण्डा और प्रभा उष्ण हो उसे आतप नाम कर्म कहते हैं। इसका उदय सूर्य के विमान में रहने वाले बादर पृथ्वीकायिक जीवों के होता है। जिसके उदय से ऐसा भास्वर शरीर प्राप्त हो जिसका मूल और प्रभा दोनों शीतल हों उद्योत नाम कर्म कहलाता है। इसका उदय चन्द्र विमान में रहने वाले बादर पृथ्वीकायिक तथा जुगनू आदि के होता है। जिसके उदय से श्वासोच्छ्वास चलता है उसे उच्छ्वास नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से आकाश में गमन हो उसे विहायोगति नाम कर्म कहते हैं। इसके दो भेद प्रशस्त

विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति। इसका उदय मात्र पक्षियों के ही नहीं होता अन्य जीवों के भी होता है। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसका एक जीव ही स्वामी हो उसे प्रत्येक शरीर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जिसके अनेक स्वामी हों। इसका उदय वनस्पति कायिक जीव के ही होता है उसे साधारण शरीर कहते हैं। जिसके उदय से द्वीन्द्रियादि जाति में जन्म हो उसे त्रस नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से एकेन्द्रिय जाति में जन्म हो उसे स्थावर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से विशेष रूपादि गुणों से रहित होते हुए भी जीव अन्य जनों के प्रीति स्नेह का पात्र बनता है वह सुभग नाम कर्म है। जिसके उदय से रूपादि गुणों से सहित होते हुए भी अन्य जनों के प्रीति, स्नेह का पात्र न बन सके, लोग द्वेष ग्लानि करे वह दुर्भग नाम कर्म है। जिसके उदय से जीव को अच्छा स्वर प्राप्त होता है उसे सुस्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से अच्छा स्वर न हो उसे दु:स्वर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर हों उसे शुभ नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के अवयव सुन्दर न हों उसे अशुभ नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से ऐसा शरीर प्राप्त हो जो न किसी से रुके और न किसी को रोक सके उसे सूक्ष्म नाम कर्म कहते हैं। यह शरीर एकेन्द्रिय जीवों के ही होता है। जिसके उदय से ऐसा शरीर हो जो स्वयं किसी से रुके तथा किसी को रोक सके उस बादर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से आहार, शरीर, इंद्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इन छह पर्याप्तियों की यथायोग्य (पर्याय योग्य) पूर्णता हो उसे पर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो अर्थात् लब्ध्यपर्याप्तक अवस्था हो उसे अपर्याप्ति नाम कर्म कहते हैं। इसका उदय सम्मूर्च्छन जन्म वाले मनुष्य और तिर्यञ्च में होता है। जिसके उदय से शरीर के धातु-उपधातु स्थिर रहें अर्थात् विशेष तप आदि करने पर शरीर कृश न हो उसे स्थिर नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से शरीर के धातु-उपधातु स्थिर न रहें अर्थात् चलायमान होते रहे वह अस्थिर नाम कर्म है। जिसके उदय से शरीर विशिष्ट कांति से सहित होता है उसे आदेय नाम कर्म कहते है। जिसके उदय से शरीर विशिष्ट कान्ति रहित हो उसे अनादेय नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव की संसार में कीर्ति विस्तृत हो उसे यशस्कीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव का संसार में अपयश विस्तृत हो उसे अयशस्कीर्ति नाम कर्म कहते हैं। जिसके उदय से जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त होता है उसे तीर्थंकर नाम कर्म कहते हैं। यह प्रकृति सातिशय पुण्य-प्रकृति है।

7. गोत्र कर्म के दो भेद हैं - 1. उच्च गोत्र, 2. नीच गोत्र। जिसके उदय से लोक प्रसिद्ध उच्चकुलों में जन्म होता है, उच्च आचरण होता है उसे उच्चगोत्र कर्म कहते हैं। जिसके उदय से लोक निन्द्य नीच कुलों में जन्म होता है, नीच आचरण होता है उसे नीच-गोत्र कर्म कहते हैं।

8. अन्तराय कर्म के पाँच भेद हैं - 1. दानान्तराय, 2. लाभान्तराय, 3. भोगान्तराय, 4. उपभोगान्तराय और 5. वीर्यान्तराय। जिस कर्म के उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं दे पाता वह दानान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता वह लाभान्तराय कर्म है। जिसके उदय से भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता वह भोगान्तराय कर्म है। जिसके उदय से उपभोग की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं कर सकता वह उपभोगान्तराय कर्म है। जिस कर्म के उदय से उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता है वह वीर्यान्तराय कर्म है।

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह विनती है पल-पल क्षण-क्षण, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

चाहे बैरी कुल संसार बने, चाहे जीवन मेरा भार बने।
चाहे मौत गले का हार बने, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

चाहे अग्नि में मुझे जलना पड़े, चाहे काँटों पे मुझे चलना पड़े।
चाहे छोड़ के देश निकलना पड़े, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

जिह्वा पर तेरा नाम रहे, तेरा ध्यान सुबह और शाम रहें।
तेरी याद तो आठों याम रहे, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो, चाहे चारों ओर अंधेरा हो।
पर मन नहीं मेरा डगमग हो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

निशदिन मैं दीप जलाता हूँ, फिर भी मन में क्यों अंधेरा है। प्रभु ज्ञानदीप हमको दे दो, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा.......

प्रभु भव सिंधु के खिवैया तुम, इस भव से पार लगा दो तुम।
स्वीकार करो आरति मेरी, रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।।
मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान तुम्हारे चरणों में।

मेहनत की, अब भाग्य संवारो, कल देखा क्या ?

कल की चिंता, वर्तमान को खोया, खाली दो हाथ ।

पाठ्यक्रम - २०

२०ब | आत्मिक उन्नति के सोपान - दश धर्म

जो प्राणियों को संसार के दु:ख से उठाकर उत्तम सुख (वीतराग सुख) में धरता है उसे धर्म कहते हैं। यहाँ पर उत्तम क्षमादि रूप दश प्रकार का धर्म कहा गया है-

१. उत्तम क्षमा धर्म २. उत्तम मार्दव धर्म ३. उत्तम आर्जव धर्म ४. उत्तम शौच धर्म
५. उत्तम सत्य धर्म ६. उत्तम संयम धर्म ७. उत्तम तप धर्म ८. उत्तम त्याग धर्म
९. उत्तम आकिंचन्य धर्म १०. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म।

१. क्रोध उत्पन्न होने के साक्षात् बाहरी कारण मिलने पर तथा अपराधी के प्रति प्रतिकार करने की क्षमता होने पर भी क्रोध न करना, उस पर क्षमा भाव रखना **उत्तम क्षमा धर्म** है। क्षमा धर्म के पालनार्थ निम्न भावना भानी चाहिए-

अ. यदि अविद्यमान दोषों को कह रहा है तो वह अज्ञानी है अत: उस पर क्षमा धारण करना चाहिए।

ब. यदि विद्यमान दोषों को कह रहा है तो वह उपकारी है, वह मेरे दोष मुझे बताकर, दोष रहित होने की ओर प्रेरित कर रहा है।

२. मृदुता, नम्रता का होना मार्दव है, श्रेष्ठ कुल, जाति, रूप, तप, बुद्धि, व्रत, आज्ञा-ऐश्वर्यादि होने पर भी घमंड नहीं करना **उत्तम मार्दव धर्म** है। मार्दव धर्म के पालनार्थ निम्न भावना भानी चाहिए-

अ. मैं इस संसार में अनेक बार नीच कुल, नीच अवस्थाओं को प्राप्त कर चुका हूँ।

ब. मुझसे भी श्रेष्ठ कुल वाले, श्रेष्ठ रूपवान आदि लोग इस जगत में भरे पड़े हैं।

स. बाहरी वैभव, शरीरादि सब पूर्व पुण्य के उदय से प्राप्त हैं परन्तु ये सभी पदार्थ अनित्य, शीघ्र ही नष्ट होने वाले हैं।

द. मान कषाय इह लोक व परलोक सभी जगह दु:ख देने वाली है।

३. ऋजुता, सरलता का होना आर्जव है। कुटिलता पूर्वक मन, वचन, काय की प्रवृत्ति नहीं करना। छल-कपट नहीं करना, अपने दोष नहीं छिपाना **उत्तम आर्जव धर्म** है। आर्जव धर्म के पालनार्थ निम्न भावनाएँ भानी चाहिए-

अ. सैकड़ों उपाय कर के छुपाया दोष भी कालान्तर में प्रगट हो ही जाता है।

ब. यश, वैभव आदि छल-कपट से नहीं अपितु पूर्व पुण्य से प्राप्त होते हैं।

स. मायाचार दुर्गतियों का कारण है।

४. निर्लोभता, संतोष रूप परिणाम का होना **उत्तम शौच धर्म** है। समभाव और संतोष रूपी जल तृष्णा और लोभ रूपी मल को धोने वाला, भोजनादि के प्रति गृद्धता का अभाव रूप शौच धर्म है। शौच धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. पुण्य रहित मनुष्य को लोभ करने पर भी इच्छित वस्तु की प्राप्ति नहीं होती है।

ब. अनन्त बार ग्रहण कर धनादिकों का त्याग कर चुका हूँ अथवा वह स्वयं ही छूट चुका है।

स. यह लोभ सद्गुणों को दूर भगाने में कारण है तथा नरकादि दुर्गतियों में ले जाने वाला, अनेक दु:खों की बीज भूत है।

५. अच्छे पुरुषों के साथ साधु वचन बोलना अथवा दूसरों को कष्ट न हो ऐसे अपने व दूसरों का हित करने वाले वचनों को बोलना **उत्तम सत्य धर्म** है। यदि कदाचित सत्य वचन बोलने में बाधा प्रतीत हो तो मौन रहना उचित है। सत्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. सभी गुण, सम्पदाएँ सत्य वक्ता में प्रतिष्ठित होती हैं।

ब. झूठ के बोलने वाले का कोई मित्र नहीं होता, सभी जगह उसका तिरस्कार होता है।

स. असत्यवादी इस लोक में जिह्वा छेद आदि दु:खों को एवं परलोक अशुभ गति, मूकता आदि को प्राप्त होता है।

६. सम्यक् रूप से यम अर्थात् नियन्त्रण सो संयम है। पृथ्वीकायिक आदि पंचस्थावर एवं त्रस कायिक जीवों की विराधना, हिंसा नहीं करना तथा पाँच इन्द्रिय और मन को वश में रखना **उत्तम संयम धर्म** है। संयम धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. असंयमी निरन्तर हिंसा आदि व्यापारों में लिप्त होने से अशुभ कर्मों का संचय करता है।

ब. संयम के बिना स्वर्ग-मोक्ष आदि की संपदा नहीं मिल सकती है।

स. संयम योग्य पर्याय की दुर्लभता का चिंतन।

७. कर्म क्षय के लिए, अन्तरंग में समता भाव धारण करते हुए, विवेक पूर्वक (शक्ति के अनुसार) बाह्य -अभ्यन्तर तपों को धारण करना **उत्तम तप धर्म** है। तप धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. तप के द्वारा ही पूर्व संचित कर्म नष्ट हो सकते हैं।

ब. तप के द्वारा सहिष्णुता, परीषह जय आदि गुणों की प्राप्ति होती है।

स. अभ्यन्तर एवं बहिरंग शुद्धि का मूल कारण तप है।

८. आत्मा के विकारी भावों का परित्याग करने के लिए प्रयत्न करना एवं चौदह प्रकार के अंतरंग तथा दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का त्याग करना अथवा अपेक्षा रहित ज्ञान दानादि का देना **उत्तम त्याग धर्म** है। त्याग धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. त्याग ही समस्त आकुलता, संकल्प-विकल्प को नष्ट करने का साधन है।

ब. त्याग को स्वीकार किए बिना मुक्ति संभव नहीं।

स. विषय कषाय एवं परिग्रह का त्याग करने वाला बड़े-बड़े राजा महाराजा तथा इन्द्रों के द्वारा भी पूज्य हो जाता है।

९. शरीर एवं बाह्य पदार्थों के प्रति ममत्व न रखते हुए स्व तत्त्व (आत्म तत्त्व) में उपादेय बुद्धि रखना **उत्तम आकिंचन्य धर्म** है। आकिंचन्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. जब निरन्तर पाल-पोष कर पुष्ट किया यह शरीर भी मेरा नहीं है तो अन्य पदार्थ मेरे कैसे हो सकते हैं।

ब. जीव अकेला ही जन्मता-मरता, सुख-दुःख का भोक्ता होता है।

स. मैं शाश्वत्, अजर-अमर, सुख स्वभाव वाला हूँ।

१०. मानुषी, देवी, तिर्यञ्चनी और अचेतन (चित्र, काष्ठादि में निर्मित) इन चारों प्रकार की स्त्रियों के संसर्ग से सर्वथा मुक्त होकर, त्रिकाली, शुद्ध ज्ञान-दर्शन स्वभाव वाली निज आत्मा में रमण करना **उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म** है। ब्रह्मचर्य धर्म के पालनार्थ भावनाएँ-

अ. श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य ही सर्व ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला है।

ब. स्त्री संसर्ग से उत्पन्न दोष एवं शरीर की अशुचिता का चिंतन करें।

स. इन्द्रिय सुख की नश्वरता एवं अतीन्द्रिय सुख शाश्वतता का विचार करें।

चौथी ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्वपर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥१॥
सम्यक् साथै ज्ञान होय, पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान, दुहू में भेद अबाधौ॥
सम्यक् कारण जान, ज्ञान कारज है सोई।
युगपद् होते हूँ, प्रकाश दीपक तैं होई॥२॥
तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछि तिन माँहीं।
मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मन तैं उपजाहीं॥
अवधिज्ञान मनपर्जय, दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य क्षेत्र परिमाण लिये, जानैं जिय स्वच्छा॥३॥
सकल द्रव्य के गुन अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल प्रगट, केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन, जगत में सुख को कारण।
इह परमामृत जन्म-जरा-मृतु रोग निवारण॥४॥
कोटि जन्म तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माँहिं, त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥
मुनिव्रत धार अनन्त बार, ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम-ज्ञान बिना, सुख लेश न पायौ॥५॥
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै॥
यह मानुष परजाय, सुकुल सुनिवौ जिनवाणी।
इहविधि गये न मिले, सुमणि ज्यों उदधि समानी॥६॥
धन समाज गज बाज, राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै॥
तास ज्ञान को कारण, स्व-पर विवेक बखान्यो।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनो॥७॥

सावधान! यह दुनियाँ रो कर पूछती है
और हँसकर उड़ाती है।

जे पूरब शिव गये, जाहिं अब आगे जैहें।
सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहै हैं॥
विषय-चाह दव दाह, जगत-जन अरनि दझावै।
तास उपाय न आन, ज्ञान घनघान बुझावै॥८॥
पुण्य-पाप फल माँहिं, हरख बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसै फिर थाई॥
लाख बात की बात, यहै निश्चय उर लावो।
तोरि सकल जग-दन्द, फन्द, निज आतम ध्यावो॥९॥

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥
त्रसहिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
पर-वधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै॥१०॥

जल मृतिका बिन और, नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल, नारि सौं रहै विरत्ता॥
अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै।
दशदिशि गमन प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै॥११॥

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान, ठान अन सकल निवारा॥
काहू की धन-हानि, किसी जय-हार न चिन्तै।
देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतें॥१२॥

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥
राग-द्वेष करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड, हेतु अघ तिन्हैं न कीजै॥१३॥

धर उर समता भाव, सदा सामायिक करिये।
परव चतुष्टय माँहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥
भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहि अहारै॥१४॥

बारह व्रत के अतिचार, पन पन न लगावै।
मरण समय सन्यास धारि, तसु दोष नशावै॥
यौं श्रावक व्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँतैं चय नर जन्म पाय, मुनि ह्वै शिव जावैं॥१५॥

पाँचवीं ढाल (बारह भावना)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव-भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्त्यो अनुप्रेक्षा भाई॥१॥
इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिवसुख ठानै॥२॥

जोवन गृह गो धन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥३॥

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥४॥

चहुँगति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा॥५॥

शुभ-अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहि तेते।
सुत-दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी॥६॥

जल-पय ज्यों जिय तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा॥७॥

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहें घिनकारी, अस देह करै किम यारी॥८॥

जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे॥९॥

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥१०॥

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खपावै, सोई शिवसुख दरसावै॥११॥

किन हूं न कर्‌यो न धरैं को, षट्द्रव्यमयी न हरै को ।
सो लोक माहि बिन समता, दुःख सहै जीव नित भ्रमता॥१२॥

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ॥१३॥

जे भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै॥१४॥

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥१५॥

● बेटे के लिये गाड़ी के चार लाख बैंक में जमा कर देना, पर जब पेट्रोल खरीदने की क्षमता आ जाए तब गाड़ी दिला देना ।

रूपवान राजा

इन्द्र की सभा चल रही थी कि इन्द्र ने कहा अगर मनुष्यों में किसी का रूप सौन्दर्य देखना है तो सनत चक्रवर्ती का रूप देखो। उनके रूप के समक्ष हम देवों का भी रूप फीका लगने लगता है। इस बात को सुनने वाले दो देवों के मन में विश्वास नहीं हुआ। अत: उन्होंने सोचा क्यों न हम स्वयं धरती पर जाकर नेत्रों से साक्षात् चक्रवर्ती का रूप देख लें। ऐसा निर्णय कर दोनों राजा के राज्य में पहुँचे।

उस समय सनतकुमार व्यायामशाला में लाल मिट्टी में अभ्यास कर रहे थे। जैसे ही देवों ने रूप देखा तो सहज ही कह उठे - वास्तव में जैसा सुना था उससे कई गुना अधिक सुन्दर रूप धन्य है। यह शब्द जैसे ही चक्रवर्ती के कानों तक पहुँचे उसने पलटकर देखा तो पूछा आप लोग कौन हैं कहाँ से आए हैं ? उन देवों ने अपने आने का कारण बतला दिया। तब वह चक्री बोले अरे अभी तो मैं तालीम कर रहा हूँ यदि मेरा सही रूप देखना है तो दरबार में पहुँचना तब तक मैं स्नानादि कार्यों से निवृत्त हो वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर पहुँचता हूँ। देवों ने कहा ठीक है हम वहाँ भी शीघ्र ही पहुँचेंगे।

कुछ समय बाद राजदरबार में सिंहासन पर बैठे हुए सनतकुमार चक्रवर्ती को देखने पुन: देव पहुँचे, रूप देखा तथा नाक सिकोड़ते हुए, मुण्डी हिला दी और कहने लगे अब वह सौन्दर्य कहाँ जो पहले था। राजा ने पूछा क्यों क्या बात है ? क्या तुम्हें मेरा यह रूप पसंद नहीं आया? वे बोले राजन् अब वह सौन्दर्य कहाँ, पल-पल परिवर्तित होती सृष्टि में कुछ भी तो स्थिर नहीं है। आप एक स्वर्ण का थाल बुलवाएँ। थाल बुलवाया गया। देवों ने कहा-इसमें थूककर देखो। राजा ने थूका तो उस थूक में सैकड़ों कीड़े बिलबिलाने लगे। देवों ने कहा-हे राजन् यह काया कुष्ठ रोगों से ग्रसित हो गई है अब क्षण-क्षण यह सौन्दर्य नष्ट होता जा रहा है। ऐसा कहकर देव वहाँ से वापस चले गए और राजा विचारने लगा, अरे! अरे जिस देह को लेकर मैं अभिमान करता था, निरन्तर इसके पालन-पोषण में लगा रहता था, फिर भी यह देह रोगी हो गई। सही ही कहा है-''दुर्जन देह स्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे।''राजा विचार करने लगा मुझे कुछ ऐसा करना चाहिए जिससे देह में विराजित शाश्वत चेतना आत्मा का उद्धार हो सके। ऐसा विचार कर अपने पुत्र को राज्यभार सौंपकर उसने मुनि दीक्षा अंगीकार कर ली।

पुन: एक दिवस स्वर्ग में इन्द्र ने कहा-यदि साधु की निरीहता और तप की श्रेष्ठता का दर्शन करना हो तो सनतकुमार मुनिराज को देखना चाहिए। पुन: वहीं बैठे उन दोनों देवों के मन में आया इन्द्र जी कैसी बातें कर रहे हैं। समझ नहीं आता चलो धरती पर चलकर परीक्षा कर लेते हैं। अत: वे वैद्य का रूप बनाकर उस स्थान पर पहुँच गए जहाँ सनतकुमार मुनिराज ध्यान अवस्था में बैठे हुए थे। वे जोर-जोर से आवाज करने लगे दवाई ले लो, दवाई ले लो हर रोग की रामबाण औषधि, एक बार लगाओ, रोग दूर भगाओ। ऐसा बार-बार कहते हुए वे वहीं घूमने लगे। कुछ देर बाद मुनिराज ने आँखें खोली तो उन्हें वहीं वहीं घूमते देख पास बुला लिया। वे सोचने लगे हमारा काम तो हो गया। वे उनके पास रुक गए और कहने लगे हम वैद्य हैं आपके शरीर में कुष्ठरोग है ऐसा देखकर हम रुक गए, हमारे पास ऐसी दवा है जिसे लगाते ही क्षणभर में सारा रोग दूर हो जाएगा। आप कहें तो शीघ्र ही उपचार प्रारम्भ किया जावे। तब मुनिराज बोले-भैय्या दवा तो मुझे भी चाहिए लेकिन इस रोग की नहीं। दूसरा जो भयंकर रोग है उसकी हो तो बताओ। बताइये महाराज कौन-सा रोग ? हमारे पास तो सभी रोगों की दवाई है। तब मुनिराज बोले- अनादिकाल से हमारे साथ जन्म, जरा और मृत्यु रोग लगा है उसकी दवाई हो तो बताएँ। क्योंकि शरीर का रोग तो कर्माश्रित है और शरीर छूटते ही छूट जाएगा। किन्तु ये तीनों रोगों का नाश करने की दवा बताएँ तो अच्छा होगा। इतना सुनते ही दोनों देव हाथ जोड़कर खड़े हो गए और कहने लगे महाराज इस रोग की दवा तो आपके ही पास है हम जैसों के पास कहाँ। हमें क्षमा करें, हम आपकी परीक्षा लेने आए थे। धन्य हैं आप, आपकी निरीहता और आपका तप। ऐसा कहकर देव जय जयकार करते हुए वापस चले गए। आत्मसाधना में लीन होकर सनतकुमार मुनि ने कुछ ही दिनों में समस्त कर्मों को नाश कर मुक्ति का लाभ प्राप्त किया।